नक्षत्र) है, जहाँ मण्डल बराबर पूरा होता है। इस गुणग्राम (स्तुति) रूपी नक्षत्र-मण्डलमें राम नाम सोम भक्त-उर-व्योममें क्रमशः परिभ्रमण करता है।

वीरकविजी—हिंदी नवरत्नके लेखकोंने इस संवादके सम्बन्धमें तुलसीदासजीपर बड़ी अप्रसन्नता प्रकट की है। वे लिखते हैं कि—'लक्ष्मण-परशुरामसंवाद अवश्य ही बुरा है, इस महाकविने इस संवादको ऐसा उपहासके योग्य बनाया है कि जैसा करनेमें स्यात् कोई क्षुद्रकवि भी लज्जित होता। मानो एक ओर महाक्रोधी, निर्बल, अभिमानी और चिढ़नेवाला बुड्ढा खड़ा हो और दूसरी ओर एक बड़ा ही नटखट बिगड़ा हुआ, ठठोल लौंडा जिसे बड़े और छोटेका कुछ भी लिहाज न हो। यह वर्णन गोस्वामीजीके सहज गाम्भीर्यके बिलकुल ही अयोग्य है, इत्यादि।' इसका निर्णय विज्ञ पाठक ही करेंगे, किंतु हम मिश्रबन्धुओंसे इतना अवश्य कहेंगे कि यह कथन सर्वथा आप लोगोंकी योग्यताके विपरीत हुआ है। जैसा दोष इस प्रसङ्गमें आप लोगोंको दिखायी देता है, वैसा लेशमात्र भी नहीं है।

परशुराम-संवाद और भगवद्गीता

पं० विजयानन्द त्रिपाठी—परशुराम-संवाद और भगवद्‌गीतामें आपातदृष्टिसे कोई साम्य नहीं मालूम पड़ता, फिर भी निविष्टचित्तसे विचार करनेपर दोनोंका हृदय एक ही मालूम पड़ता है। भगवद्गीता अठारह अध्यायमें कही गयी है। महात्माओंका मत है कि उसके पहिले षट्कमें कर्मयोगका निरूपण है। दूसरेमें भक्तिका और तीसरे षट्कमें ज्ञानयोगका निरूपण है। अब विचारणीय बात यह है कि किसलिये इन तीनों योगोंका उपदेश अर्जुनको किया गया और इतना उपदेश देकर अर्जुनको किस पथपर आरूढ़ किया और इतने लंबे उपदेशसे कौन-सी विधिकी प्राप्ति हुई?

बात स्पष्ट है कि अपनी इच्छासे युद्धमें प्रवृत्त होनेवाले अर्जुनको समराङ्गणमें ठीक युद्धके समय अहिंसाका भाव उत्पन्न हुआ। उसे धर्ममें दोष दिखलायी पड़ने लगे। उसने देखा कि दोनों पक्षमें अपने ही सगे-सम्बन्धी हैं, जिनके मारे जानेपर स्वर्गके राज्यका मिलना भी हेय है। पुरुषोंके मारे जानेसे स्त्रियोंके अरक्षित होनेपर कुलमें वर्णसंकर उत्पन्न होंगे और पिण्डोदकके लुप्त होनेसे पूर्व पुरुषोंका पतन होगा, अतः मुझ निःशस्त्रको विपक्षी मार भी डालें तो भी भला है। उनसे युद्ध करना ठीक नहीं। लहूभरे भोगसे भिक्षा माँगकर जीवन व्यतीत करना ही श्रेष्ठ है। ऐसा निश्चय करके वह युद्धसे विरत हुआ। स्वधर्म-युद्धका परित्याग करके, उसने परधर्म भिक्षाको स्वीकार करना चाहा।

हमलोगोंको अर्जुनका तर्क युक्तियुक्त-सा प्रतीत होता है, पर भगवान् श्रीकृष्णने उसे क्षुद्र हृदयका दौर्बल्य बतलाया, क्योंकि क्षत्रियके लिये युद्धसे विरत होना पाप है—'**धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते**' [अर्थात् क्षत्रियके लिये धर्मरूप युद्धसे बढ़कर दूसरा कुछ भी कल्याणकारक नहीं है। (गीता २। ३१)] युद्ध तो उसका स्वधर्म है और तीनों योगोंका निरूपण करते हुए प्रत्येक षट्कमें '**युध्यस्व विगतज्वरः**' का ही उपदेश देते गये।

प्रथम षट्कमें तो क्षत्रियधर्मका उपदेश करते हुए '**तस्माद्युद्धस्व भारत**' '**तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः**' आदि वाक्य बार-बार कहा है। द्वितीय षट्कमें ऐश्वर्यरूप दिखलाते हुए भीष्म-द्रोणादिको अपने दाँतोंतले कुचला हुआ दिखलाया। कहने लगे कि इनको मैं पहले मार चुका हूँ, तू निमित्तमात्र हो जा। इस भाँति ढाढ़स बँधाया और तीसरे षट्कमें यह कहलाकर छोड़ा कि '**करिष्ये वचनं तव**' मैं आपकी आज्ञा मानूँगा।

यह तो हुई कृष्णावतारकी बात, पर उसी प्रभुने श्रीरामावतारमें परशुरामजीको युद्धसे विरत किया, क्योंकि वे ब्राह्मण थे। ब्राह्मणका स्वधर्म युद्ध नहीं है, इसीलिये '***नव गुण परम पुनीत तुम्हारे***' की चर्चा करते हुए उनके स्वधर्म '**शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च। ज्ञानविज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्॥**'

का स्मरण कराया और अस्त्र-विद्याको तदपेक्षया बहुत न्यून बतलाते हुए, उसे अपना बतलाया, यथा—'*नाथ एक गुण धनुष हमारे।*'

भावार्थ यह है कि आपका स्वधर्म शम-दमादि बहुत बड़ा है, यथा—'*कोटि कुलिस सम बचन तुम्हारा।*' सो आप उसकी उपेक्षा करके जो आपके लिये परधर्म है, अकिञ्चित्कर है, उसका बहुमान कर रहे हैं, यथा—'*मैं जस बिप्र सुनावहुँ तोही। चाप स्त्रुवा सर आहुति जानू॥*'......'*समरजज्ञ जप कोटिन्ह कीन्हे। मोर सुभाव बिदित नहिं तोरे। बोलेसि निदरि बिप्र के भोरे॥*' ब्राह्मणके नाते सरकार बहुत दबते हुए उत्तर देते थे। उस दबनेका अर्थ परशुरामजीने यह लगाया कि यह मेरे पराक्रमसे डर रहा है और कहने लगे कि '*बंधु कहइ कटु संमत तोरे। तूँ छल बिनय करसि कर जोरे॥ करु परितोष मोर संग्रामा। नाहि त छाँड़ कहाउब रामा॥ छल तजि समर करहि सिवद्रोही।*' इत्यादि। तब सरकारको स्पष्ट कहना पड़ा कि '*जौं हम निदरहिं बिप्र बदि सत्य सुनहु भृगुनाथ। तौ अस को जग सुभट जेहि भय बस नावहिं माथ॥ २८३॥ देव दनुज भूपति भट नाना। सम बल अधिक होउ बलवाना॥ जौं रन हमहि प्रचारै कोऊ। लरहिं सुखेन काल किन होऊ॥ बिप्र-बंस कै अस प्रभुताई। अभय होइ जो तुम्हहि डेराई॥*' इत्यादि। तब परशुरामजीकी आँखें खुलीं कि ये मुझे डर नहीं रहे हैं, अपने धर्मपर दृढ़ हैं। '*सापत ताड़त परुष कहंता। बिप्र पूज्य अस गावहिं संता॥*' के विचारसे ही मेरी कटु उक्ति सहन कर रहे हैं।

इस भाँति यह सिद्ध हुआ कि अर्जुनको परधर्मसे विरत करके स्वधर्मपर लानेके लिये अठारह अध्याय गीता कहा। अन्ततः अर्जुनने स्वधर्मपर आरूढ़ होकर युद्ध किया। इसी भाँति भगवान् श्रीरामने अठारह दोहा परशुराम-संवादद्वारा परशुरामजीको परधर्म युद्धसे विरत करके स्वधर्म शम-दमादिके पथपर आरूढ़ किया। अठारह अध्याय गीता और अठारह दोहा परशुराम-संवादसे निर्गलितार्थ विधि यह निकली कि '**स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभतेऽर्जुन।**' अपने-अपने कर्ममें लगे रहनेसे ही सिद्धि प्राप्त होती है।

इस दृष्टिको अपनाकर जो परशुराम-संवाद पढ़ेगा वही इसके मर्मको समझ सकेगा।

नोट—१८ दोहोंमें (अर्थात् दोहा २६२ की दूसरी चौपाईसे प्रारम्भ होकर दोहा २८५ की सातवीं चौपाईपर) यह परशुराम-गर्वहरण प्रकरण समाप्त हुआ।

'परशुरामगर्व-हरण-प्रसंग' इति

नोट—वाल्मीकीय आदि अनेक रामायणोंमें परशुरामजीका आगमन विवाहके पश्चात् बारात लौटते समय (मार्गमें) वर्णन किया गया है। '*कल्पभेद हरिचरित सुहाये*' के अनुसार श्रीशिवकृत मानसमें धनुर्भङ्गके पश्चात् ही जब दुष्ट राजाओंके व्यर्थ गल्प-गाल बजानेसे नगर-नरनारी शोचवश थे कि अब '*अब धौं बिधिहि काह करनीया*' उसी समय उनका आगमन हुआ—यहाँपर परशुरामजीका आगमन अत्यन्त योग्य है, जैसा पूर्व कहा जा चुका है। 'प्रसन्नराघव' और श्रीहनुमन्नाटकमें भी यही क्रम है। कुटिल राजा इनके पराजयसे ही पराजित हो गये, उनका दमन बिना श्रमके ही हो गया। दूसरे, 'धनुर्भंग' सुनकर आगमन हुआ इससे भी तुरत आना विशेष प्रसंगानुकूल है। या यों कहिये कि कविने सोचा कि विवाहके बाद मार्गमें उनके द्वारा हर्ष और मङ्गलमें विघ्न होना अच्छा नहीं, अभी तो यहाँ उपद्रव हो ही रहे हैं, यहीं सब अमङ्गलोंका एक साथ ही दमन कराके विवाहका पूर्णानन्द शृङ्गार-रससंयुक्त वर्णन करते हुए उस पूर्णानन्दको निर्विघ्न श्रीअवधतक पहुँचा दें। अतः, परशुरामका आगमन पूर्व ही कथन किया गया।

नोट—१ इसके (प्रथम संस्करणके) छपते समय हमें 'मानसहंस' की एक प्रति प्रोफेसर दीनजीसे मिली। इस प्रसंगपर आलोचना देखी। अपने विचारोंको पूर्णतया यहाँ देख हमें बड़ा हर्ष हुआ। अतः हम श्रीमंत यादवशंकर जामदार, सम्पादक 'मानसहंस' के विचार ज्यों-के-त्यों पाठकोंके लिये उद्धृत करते हैं—

'वाल्मीकि और अध्यात्मरामायणोंमें यह प्रसंग बारातके वापस आते समय मार्गमें ही दिखलाया गया है। प्रसन्नराघव नाटकमें यही प्रसंग विवाहके प्रथम ही धनुर्याग मण्डपमें बतलाया गया है और गोसाईंजीने

भी इसीका अनुकरण किया है। बहुत-सा भाषा सौष्ठव भी वहींसे लिया गया है। (प्रसन्नराघव नाटक, अङ्क दूसरा देखें)। परंतु इतने ही विवरणसे पूरा नहीं पड़ता।

हमारे मतसे इस प्रसंगको दिया हुआ स्थलान्तर कविकी असामान्य कल्पकता जतलाती है। परशुरामजीके सदृश अखिल क्षात्रसमूहको केवल एक-दो बार ही नहीं लगातार इक्कीस बार 'त्राहि भगवान्' कर दाँतोंमें तृण पकड़ानेवाली प्रखर मूर्तिका गर्वहरण किसी निर्जन स्थानमें हो तो वह कैसा, अथवा जिस क्षात्रसमूहकी पीठ परशुरामजीने नरम की थी प्रत्यक्ष उन्हींके सामने स्वयं परशुरामजीका ही नरम किया जाना, यह कैसा?

फिर भी खूबी देखिये। रामचन्द्रजीके धनुषभङ्गके कारण सीतादेवी हाथसे निकल गयीं। इसे राजसमूहने मानहानि और वस्तुहानि समझी। इसका परिणाम यह हुआ कि सब राजा क्रोधसे बिलकुल ही धुन्द होकर धनुर्यागमण्डपमें ही एक दिलसे राम-लक्ष्मणजीपर हमला करनेके लिये उद्यत हुए। ऐसे ऐन समय परशुरामजीका उसी स्थलपर आविर्भाव दिखलाना और अन्तमें राम-लक्ष्मणजीसे ही उनको परास्त करवाकर तथा सिर झुकवाकर मण्डपसे बाहर निकलवाना यह बात प्रधान मल्लनिबर्हण न्यायके अनुसार पृथ्वीके वीर्यशौर्यशाली क्षात्रवर्गद्वारा श्रीलक्ष्मणजीको अजेयपत्र समर्पण करनेके सदृश नहीं तो क्या है? कविकी ऊर्जित स्वयं स्फूर्ति दर्शित करनेवाला इससे बढ़कर अब और कौन-सा ढंग हो सकता है?

भाषा, रस और भावकी दृष्टिसे तुलसीकृत रामायणका परशुराम-गर्वहरण इतना सुलक्षण हुआ है कि उसको दूसरी उपमा नहीं दी जा सकती। भयंकर दु:खके पश्चात् ही सुखकी सच्ची इज्जत की जाती है, ठीक उसी तरह श्रीसीतारामजीके विवाहकी भी बात है। इस विवाहके आनन्दकी परिणतताका सच्चा कारण सूक्ष्मतासे और शान्ततासे देखा जाय तो परशुरामजीका गर्वहरण ही समझा जावेगा।

फिर भी एक और विशेषता देखने योग्य है। परशुराम-गर्वहरण नजदीक उतारनेसे रामजीका पक्ष प्रबल हुआ है। धनुर्भङ्गके पश्चात् उपस्थित सब राजाओंको राम-लक्ष्मणजीपर चढ़ाई करनेको आकांक्षा हुई। इससे स्पष्ट ही है कि राम-लक्ष्मणजीका बल उन्हें धनुर्भङ्गसे पूरा अनुमित नहीं हो सका। वह अनुमान परशुरामजीके पराभवने ही करा दिया। इसका तात्पर्य यही होता है कि लक्ष्मणजीके प्रभावकी छाप धनुर्भङ्गके पश्चात् जो अवशेष रही थी उसकी पूर्तता परशुराम-गर्वहरणके स्थलान्तरमें कैसे-कैसे अभिप्राय भरे हैं और वह कैसा तारतम्य भाववाला और कितना रस प्रसववाला हुआ है।

किसी भी प्रकारसे आलोचना हो, परशुराम-गर्वहरण राम-जानकी-परिणयकी प्रस्तावना समझी जायगी यह नितान्त सत्य है।'

नोट—२ परशुराम-गर्वहरण प्रसंगके विषयमें बहुधा लोगोंने आक्षेप किये हैं। इस विषयमें भी हम 'मानसहंस' से पूरी आलोचना उद्धृत करते हैं—

आक्षेप किया जाता है कि 'परशुराम-गर्वहरण अप्रगल्भ हुआ है।' ऐसे आक्षेप बहुधा प्रकृति-स्वभावानुसार ही होते हैं। परन्तु इस आक्षेपके सम्बन्धमें बोले बिना नहीं रहा जाता। कोई-कोई विद्वान् कहलानेवालोंने परशुराम-गर्व-हरणपर गोसाईंजीकी खूब ही खबर ली है और भावुक पाठकोंकी चित्त-वृत्तियोंको दुखाया है। अब हम इस प्रसंगका विचार खुले दिलसे परंतु काव्य-दृष्टिपर खयाल रखते हुए करेंगे।

सारे वर्णनका सच्चा हृदय गोसाईंजीने इस एक ही चौपाईमें भर दिया है—*'बहइ न हाथ दहइ रिस छाती। भा कुठार कुंठित नृप घाती॥'*

इससे यही निश्चित होता है कि परशुरामजी क्रोधके मारे जल रहे थे और उनकी बदला लेनेकी इच्छा बड़ी उग्र हो रही थी। परंतु कोई प्रत्यक्ष क्रिया कर दिखलानेमें वे सर्वथैव असमर्थ थे। परशुरामजीके इस शक्ति-ह्रासका मर्म आक्षेपकोंको प्रथम ढूँढ़ निकालना चाहिये, ऐसा न करके अप्रगल्भताका दोष लगाना स्वयं ही परशुराम बन जाना है।

राम-लक्ष्मणजीने कैसे भी ब्राह्मणका कभी अपमान नहीं किया तो फिर परशुरामजी-सरीखे ब्रह्मर्षिवर्यका

अपमान करनेकी इच्छा क्या उनके चित्तको कभी स्पर्श कर सकती थी? तो क्या *'हमरे कुल इन्ह पर न सुराई'* उनका केवल वाग्जाल ही समझा जाय?

सभ्य और शिष्ट स्त्री-पुरुषोंसे भरे हुए धनुर्यज्ञ-मण्डपमें लड़ाई-झगड़े करके वहाँकी बिछायतोंको खूनसे तर कर देनेपर बादमें परशुरामजीको होशमें लाना क्या श्रेयस्कर और शोभास्पद हुआ होता? यदि नहीं तो फिर परशुरामजीका गर्वदमन करनेके लिये सच्चा सरल मार्ग **'उष्णमुष्णेन शाम्यति'** के सिवा विश्वास करने योग्य और कौन-सा हो सकता था? विश्वास-योग्य कहनेका कारण यही है कि परशुरामजीका अवतार-कृत्य समाप्त हो चुका था और रामजीका प्रारम्भ हुआ था, परशुरामजीको इस बातकी विस्मृति हुई थी, परंतु रामजीको उसकी पूर्ण स्मृति थी।

इन सब बातोंका पूर्ण रीतिसे विचार करनेपर ही गोसाईंजीके वर्णनका सच्चा स्वरूप मालूम हो सकेगा। यह वर्णन हमारे मतसे गोसाईंजीकी राजनीति-निपुणताका एक प्रशंसनीय उदाहरण है। लक्ष्मणजीके आत्मविश्वास, निर्भीकता, विनोद और उपहासकी उष्णतासे परशुरामजीके साहसी अभिमानका पारा क्रमशः परंतु अमर्यादित, कैसा चढ़ गया और श्रीरामजीके मुखसे *'बिप्रबंसकै असि प्रभुताई'* इस चौपाईमें केवल *'असि'* (वक्षःस्थलका भृगुपति-चिह्न अंगुलीसे बताकर) इसी एक शब्दसे वह (पारा) एकदम कैसे झटसे नीचे उतर गया यह बतलाना ही कविका ध्येय था, इसी कारण उन्हें यहाँपर विशेष प्रखर योजना करनी पड़ी। क्या ऐसी भी योजना अश्लील कही जा सकती है।

नोट—३ स्वामी प्रज्ञानानन्द सरस्वतीका लेख प्रकरणके प्रारम्भमें आ चुका है।

अपभय कुटिल* महीप डेराने। जहँ तहँ कायर गवँहिं पराने॥ ८॥

दो०—देवन्ह दीन्ही दुंदुभी प्रभु पर बरषहिं फूल।
हरषे पुर नर-नारि सब मिटी † मोहमय‡ शूल॥ २८५॥

अर्थ—कुटिल राजा अपने मनःकल्पित अकारणके व्यर्थ भयसे डरे। वे कायर गँवसे जहाँ-तहाँ भाग गये॥ ८॥ देवताओंने नगाड़े बजाये और प्रभुपर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे। नगरके सब स्त्री-पुरुष प्रसन्न हुए। उनका मोहमय (अज्ञानजनित, अज्ञानसे भरा हुआ) शूल मिट गया॥ २८५॥

टिप्पणी—१ (क) *'अपभय कुटिल……'* इति। *'अपभय'* कहकर जनाया कि श्रीरामजीकी ओरसे राजाओंको भय (की बात) नहीं है (अर्थात् श्रीरामजी उनसे बदला थोड़े लेते) पर वे कुटिल हैं, अपनी कुटिलता समझकर वे अपने ही ओरसे डर रहे हैं कि हमने इनको बाँधनेको कहा, सीताजीको छीन लेनेको कहा, अतएव ये हमें अब अवश्य मार डालेंगे। उपक्रममें कहा है कि *'अति डरु उतरु देत नृपु नाहीं। कुटिल भूप हरषे मन माहीं॥'* (२७०। ५) और उपसंहारमें लिखते हैं कि *'अपभय सकल महीप डेराने।'* तात्पर्य कि कुटिल लोग दूसरोंको भय प्राप्त होनेपर प्रसन्न हुए थे सो उन्हें अपने ही भयकी प्राप्ति हुई। (ख) *'जहँ तहँ'* अर्थात् जो जहाँ था वहींसे वह मारे भयके भागा, किसीका किसीने साथ नहीं किया। (ग) *'कायर'*— ये वही हैं जिनके बारेमें पूर्व लिखा है कि *'उठि उठि पहिरि सनाह अभागे। जहँ तहँ गाल बजावन लागे॥'* (२६६। २) कायर लोग गाल बजाते हैं, यथा—*'बिद्यमान रन पाइ रिपु कायर कथहिं प्रतापु।'* (२७४) (घ) *'गवँहिं पराने'* इति। ('कुटिल राजाओंने सोचा कि परशुरामजीने इनसे पराजय पायी, कहीं अब ये यह न कहें कि कौन-कौन बोलता था, अब उनको

* 'सकल' १७०४, को० रा०, ना० प्र०। 'कुटिल'—१६६१, १७२१, छ०, भा० दा०।

† 'मिटा'—१७०४, को० रा०, ना० प्र०। 'मिटी'—१६६१, १७२४, १७६२, छ०।

‡ भय-पाठान्तर। 'मोह' रामजीकी सुकुमारताका, भय कुटिल राजाओंका, शूल परशुरामका। 'मोहमय सूल' कहनेका भाव यह कि मोह शूलकी जड़ है, उससे शूल होता ही है, यथा—'मोह मूल बहु सूल प्रद त्यागहु तम अभिमान' (सं०)। अतः इन सबको दुःख हुआ था।

मारना चाहिये। अतएव अभी गँव है, चुपकेसे चल देनेका मौका है। मौका यह है कि जब परशुरामजी आये तब सब राजा खड़े हो गये थे, यथा—*'देखत भृगुपति बेष कराला। उठे सकल भय बिकल भुआला॥'* (२६९। १) तबसे) सब राजा खड़े ही हैं, परशुराम अब चले गये, इसी बीचमें सब कायर यह सोचकर निकल भागे कि हमें जाते हुए कोई न देखेगा (अभी निकल भागनेसे लोग समझेंगे कि अपने-अपने आसनोंपर बैठने जाते हैं। यही 'गँव' से भागना है)।

टिप्पणी—२ *'देवन्ह दीन्ही दुंदुभी'*……' इति। (क) नगाड़े बजाये, मङ्गलाचार किया। फूल बरसाना मङ्गल है, यथा—*'बरषहिं सुमन सुमंगल दाता।'* यहाँ देवताओंका मङ्गल करना कहकर आगे मनुष्योंका बाजा बजाना और मङ्गल-साज सजाना लिखते हैं। यथा—*'अति गहगहे बाजने बाजे……।'* दुंदुभी बजाने और फूल बरसानेसे सिद्ध हुआ कि परशुरामजीके चले जानेसे वे हर्षित हुए। आगे उत्तरार्धमें मनुष्योंका हर्षित होना कहते हैं—*'हरषे पुर नर नारि सब'* (*'हरषे'* देहलीदीपक-न्यायसे दोनोंमें लगता है।) (ख) *'प्रभु'* इति। *'प्रभु'* शब्द देकर जनाया कि इनका सामर्थ्य देखकर कि परशुरामजी बातों-ही-बातोंमें पराजित हो गये, उन्होंने श्रीरामजीके विजयके नगाड़े बजाये। [(ग) पं० रा० च० मिश्रजी लिखते हैं कि यहाँ *'प्रभु पर'* पद देकर कवि ईश्वरताका भी बोध करा रहे हैं। परशुरामका पराजित होना तथा शार्ङ्गधनुषका स्वतः चढ़ जाना देखकर देवताओंने उन्हें पूर्णावतार समझ अपना प्रभु जानकर उनपर पुष्प-वृष्टि की।] (घ) *'मोहमय शूल'* इति। भाव कि यह शूल (पीड़ा) अज्ञानकी ही थी कि परशुरामजी श्रीरामजीको मारेंगे। यह मोहमय शूल पूर्व कह आये हैं, यथा—*'सुर मुनि नाग नगर नर नारी। सोचहिं सकल त्रास उर भारी॥'* (२७०। ६) सोच और त्रास सब मोह-(अज्ञान-) से हैं। (ङ) *'मिटी मोहमय शूल'* अर्थात् सबको ज्ञान हुआ कि श्रीरामजी ब्रह्म हैं (परशुरामजीके भी अवतारी हैं)।

नोट—१ *'देवन्ह दीन्ही दुंदुभी'*……' इति। यहाँपर देवताओंने पहले नगाड़े बजाये। नगरवासी धनुर्भंगके समय पिछड़ गये थे, इससे उन्होंने जयमालके समय पहले बजाया था, अबकी देवताओंकी बारी आयी। वे जयमालके समय पिछड़े थे, इससे अबकी प्रथम ही अवसर पाते ही बजाने लगे। इससे दोनों ओरका उत्साह लक्षित होता है।

अति गहगहे बाजने बाजे। सबहि मनोहर मंगल साजे॥ १॥
जूथ जूथ मिलि सुमुखि सुनयनी। करहिं गान कल कोकिल बयनी॥ २॥
सुख बिदेह कर बरनि न जाई। जन्म दरिद्र मनहु निधि पाई॥ ३॥
बिगत त्रास भइ सीय सुखारी। जनु बिधु उदय चकोर कुमारी॥ ४॥

अर्थ—खूब धमाधम बाजे बजने लगे। सभीने सुन्दर मङ्गल साजे (सँवारकर रखे)॥ १॥ सुन्दर मुखवाली, सुन्दर नेत्रोंवाली और सुन्दर कोकिलके समान मधुर बोलनेवाली स्त्रियाँ झुंड-की-झुंड मिल-मिलकर सुन्दर मधुर गान कर रही हैं॥ २॥ विदेह (राजा जनकजी) का सुख वर्णन नहीं किया जा सकता। (वह ऐसा है) मानो जन्मका दरिद्री निधि पा गया हो॥ ३॥ श्रीसीताजीका डर दूर हुआ, वे सुखी हुईं, मानो चन्द्रमाके उदयसे चकोरकुमारी प्रसन्न हुई हो॥ ४॥

टिप्पणी—१ *'अति गहगहे बाजने'*……' इति। (क) *'अति गहगहे'* का भाव कि जब धनुष टूटा तब *'गहगहे'* बाजे बजे थे, यथा—*'बाजे नभ गहगहे निसाना॥'* (२६२। ४) और जब परशुरामजीका पराजय हुआ, जब उनको जीता तब *'अति गहगहे'* बाजे बजे। तात्पर्य कि जैसे-जैसे सुख अधिक हुआ वैसे-ही वैसे बाजे विशेष जोरसे बजे। धनुष टूटनेपर सुख हुआ था, यथा—*'देखि लोग सब भये सुखारे॥'*……' (२६२) परशुरामजीको जीतनेपर उससे अधिक सुख हुआ। (ख) *'सबहिं मनोहर मंगल साजे'* इति। मङ्गलसाज तो तभी साजना चाहिये था जब धनुष टूटा और जयमाल पहनाया गया था, परंतु परशुरामजीके आगमनके कारण मङ्गल सजाना रुक गया था, जब वे चले गये, तब सब कोई मङ्गल

सजाने लगे। (ग) *'बाजने बाजे'* बहुवचन है। सब बाजे, देवताओं एवं मनुष्योंके बंद हो गये थे, अब सबोंके बाजे बजने लगे। मङ्गल साज एवं गान बंद था सो सब होने लगा। (घ) *'सबहि'* का भाव कि सबको दुःख हुआ था, अब सबको सुख हुआ, इसीसे सभी कोई मङ्गल सजाने लगे।

टिप्पणी—२ *'जूथ जूथ मिलि सुमुखि सुनयनी.......'* इति। (क) *'जूथ जूथ'* कहकर यहाँ स्त्रियोंके समुदायकी शोभा कही। *'सुमुखि सुनयनी'* से (उनके मुख और नेत्र) अङ्गकी, *'गान कल'* से गानकी तथा *'कोकिल बयनी'* से स्वरकी शोभा कही। [(ख) श्रीरामयशगानके सम्बन्धसे *'सुमुखि'* और श्रीरामदर्शनसम्बन्धसे *'सुनयनी'* कहा] गानके सम्बन्धसे कोकिलबयनी कहा; कोकिलके स्वरसे गान कर रही हैं। (ग) परशुरामजीके आगमनसे जिनको दुःख हुआ, परशुरामजीके जानेपर उन्हींका सुख वर्णन करते हैं। यथा—

दुःख (दोहा २७०)	सुख (दोहा २८५, २८६)
सुर मुनि नाग नगर नर नारी। सोचहिं सकल त्रास उर भारी॥	१ *देवन्ह दीन्ही दुंदुभी प्रभु पर बरषहिं फूल। हरषे पुर नर नारि सब मिटी मोहमय सूल॥*
अति डरु उतरु देत नृपु नाहीं।	२ *सुख बिदेह कर बरनि न जाई। जन्म दरिद्र मनहु निधि पाई॥*
भृगुपति कर सुभाउ सुनि सीता। अरध निमेष कलप सम बीता॥	३ *बिगत त्रास भइ सीय सुखारी। जनु बिधु उदय चकोर कुमारी॥*
मन पछिताति सीय महतारी। बिधि अब सवरी बात बिगारी॥	४ यहाँ स्पष्टरूपसे श्रीसुनयना अम्बाजीका सुख वर्णन नहीं किया गया; *'सुनयनी'* शब्दसे उनका भी सुख सखियोंके साथ-साथ वर्णन कर दिया है।

मा० पी० प्र० सं०—पूर्व धनुष टूटनेपर तीनका दुःखीसे सुखी होना था। यथा—*'सखिन्ह सहित हरषीं अति रानी। सूखत धान परा जनु पानी॥' 'जनकु लहेउ सुख सोच बिहाई। पैरत थके थाह जनु पाई॥' 'सीय सुखहि बरनिय केहि भाँती। जिमि चातकी पाइ जल स्वाती॥'* (२६३। ३, ४, ६)। पर यहाँ दोहीका कहा। (सखियोंको अलग लें तो चारमेंसे तीनका सुख कहा गया है) रानीका नहीं कहा। जैसे पूर्व सखियोंसहित रानीका हर्ष कहा गया है, वैसे ही यहाँ भी सखियोंके साथ ही रानीका भी सुख अवश्य होना चाहिये। कविने यहाँ *'सुनयनी'* श्लिष्ट शब्द देकर उससे महारानी *'सुनयना'* अम्बाजीका भी सुखी होना कह दिया है *'सुमुखि'* से सखियोंको ले लेना चाहिये। *'जूथ जूथ मिलि'* अर्थात् अपनी-अपनी अवस्था, प्रकृति, जाति और भाव इत्यादिके अनुकूल झुंड बनाकर।

टिप्पणी—३ *'सुख बिदेह कर बरनि न जाई.......'* इति। (क) जनक महाराज बहुत डर गये थे। श्रीरामजीको बचानेके लिये वे उत्तर नहीं देते थे, यथा—*'अति डरु उतरु देत नृप नाहीं॥'* अब परशुरामके चले जानेपर *'निधि'* समान पा गये। (ख) *'जन्म दरिद्र'* इति। यहाँ परशुरामका आगमन दरिद्रताका आगमन है। दारिद्र्यके समान दुःख नहीं है, यथा—*'नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं॥'* इस दरिद्रताने 'राम' धनको हर लिया, इसके बराबर कोई दुःख नहीं। जब वे चले गये तब *'निधि'* पा गये, इसके बराबर सुख नहीं। (ग) *'निधि पाई'* इति। *'पाई'* कहकर सूचित करते हैं कि जनकजीको संदेह था कि परशुरामजी श्रीरामजीको मारेंगे, अब ये न बचेंगे। इसी भावसे उनके चले जानेपर मानो निधि पा गये यह कहा। [श्रीरामजी परशुरामजीसे न बचेंगे यह जो डर जनकमहाराजको था यही मानो उनका जन्मसे दरिद्र हो जाना था, सो उन्हें मानो *'निधि'* मिल गयी।'—(मा० पी० प्र० सं०)]

टिप्पणी—४ *'बिगत त्रास भइ सीय सुखारी.......'* इति। (क) सूर्यके उदयसे चकोरीको ताप होता है। यहाँ परशुरामागमन सूर्योदय है। यथा—*'तेहि अवसर सुनि सिवधनु भंगा। आयेउ भृगुकुलकमल पतंगा॥'* (२६८। २) इसी प्रकार सीताजीको परशुरामागमनसे ताप हुआ यथा—*'भृगुपति कर सुभाउ सुनि सीता। अरध निमेष कलप सम बीता॥'* (२७०। ८) परशुरामजीका हारकर चले जाना सूर्यका अस्त होना है।

उनके हारकर जानेपर श्रीरामजीका उदय हुआ, यही चन्द्रका उदय है जिसे देखकर श्रीसीताजी चकोरकुमारीकी तरह सुखी हुईं। (ख) श्रीरामजीको प्रथम देखनेसे जो सुख श्रीसीताजीको हुआ था—*'अधिक सनेह देह भै भोरी। सरद ससिहि जनु चितव चकोरी॥'* (२३२। ६) वही सुख परशुरामजीके चले जानेपर हुआ। मानो श्रीरामजी पुनः प्रथम मिले, यह भाव जनानेके लिये दोनों जगह चन्द्रचकोरीका दृष्टान्त दिया। (ग) *'बिगत त्रास'* का भाव कि त्रास विशेष गत हो गया। परशुरामजी हारकर चले गये हैं, अतः अब पुनः उनके लौटकर आने और वैर करनेकी चिन्ता न रह गयी। अतः 'बि-गत' कहा।

नोट—*'सुख बिदेह कर'*— विदेहका भाव यह कि जब विदेहहीका सुख वर्णन नहीं हो सकता तो देहवालोंकी क्या कथा? *'चकोर कुमारी'*—यह वात्सल्य-द्योतक उपमा है। (रा० च० मिश्र)

धनुषयज्ञ-जयमालस्वयंवर तदन्तर्गत परशुराम-पराजय-
प्रकरण समाप्त हुआ

(श्रीसीतारामचन्द्रार्पणमस्तु)

(यो नित्यमच्युतपदाम्बुजयुग्मरुक्मव्यामोहतस्तदितराणि तृणाय मेने।
अस्मद्गुरोर्भगवतोऽस्य दयैकसिन्धोः श्रीरूपकलाब्जचरणौ शरणं प्रपद्ये॥)

श्रीसिय-रघुवीर-विवाह-प्रकरण

जनक कीन्ह कौसिकहि प्रनामा। प्रभु प्रसाद धनु भंजेउ रामा॥५॥
मोहि कृतकृत्य कीन्ह दुहु भाई। अब जो उचित सो कहिअ गोसाई॥६॥
कह मुनि सुनु नरनाथ प्रबीना। रहा बिबाहु चाप आधीना॥७॥
टूटतहीं धनु भयेउ बिबाहू। सुर नर नाग बिदित सब काहू॥८॥

अर्थ—श्रीजनकजीने विश्वामित्रजीको प्रणाम किया (और बोले—) हे प्रभो! आपकी कृपासे श्रीरामजीने धनुष तोड़ा॥ ५॥ दोनों भाइयोंने मुझे कृतार्थ किया। हे गोसाईं! अब जो (करना) उचित हो सो कहिये॥ ६॥ मुनि बोले—हे चतुर नृपति! सुनिये। विवाह धनुषके अधीन था॥ ७॥ (यद्यपि) धनुषके टूटते ही विवाह हो गया। (यह बात) देवता, मनुष्य, नागदेव सब किसीको विदित है॥ ८॥

टिप्पणी—१ *'जनक कीन्ह……'* इति। (क) जब धनुष टूटा था तभी प्रणाम करना और यह बात कहनी चाहिये थी, वही ठीक समय था, परन्तु तुरत ही परशुरामजी आ गये, इससे समय न रह गया था, जब वे चले गये तब प्रणाम आदिका अवसर मिला। जब जनक महाराजको निधि पाकर बड़ा सुख हुआ, यथा—*'सुख बिदेह कर बरनि न जाई। जन्म दरिद्र मनहु निधि पाई॥'*; तब उन्होंने (उपकारकी कृतज्ञता सूचित करनेके लिये) विश्वामित्रजीको प्रणाम किया कि यह सुख आपकी कृपासे प्राप्त हुआ। यथा—*'बार बार कौसिक चरन सीस नाइ कह राउ। येह सब सुख मुनिराज तव कृपाकटाच्छ पसाउ॥'* (३३१) (जैसे दशरथजी महाराजने पुत्रोंका विवाह हो जानेपर परम आनन्द पाकर कृतज्ञता सूचित करनेके लिये प्रणाम किया और कहा है, वैसे ही श्रीजनकमहाराजने किया।) [यहाँ *'प्रनामा'* बहुवचन है। इससे जनाया कि अनेक बार प्रणाम किया। इस भावसे कि *'मो पहिं होइ न प्रतिउपकारा। तव पद बंदउँ बारहिं बारा॥'* (प० प० प्र०)] (ख) *'प्रभु प्रसाद धनु भंजेउ रामा'* इति। यह सब माधुर्यके अनुकूल कहते हैं। भाव यह कि श्रीरामजी अत्यन्त कोमल बालक हैं, धनुष वज्रसे भी अधिक कठोर था, उसे तृणके समान तोड़ डाला, यह सब आपका प्रसाद है। ऐसा श्रीदशरथजी तथा कौसल्या अम्बाने

भी कहा है। यथा—'*राम लखन कै कीरति करनी। बारहिं बार भूप बर बरनी॥ ६॥ मुनि प्रसाद कहि द्वार सिधाए।*' (२९५। ७) '*मुनि प्रसाद बलि तात तुम्हारी। ईस अनेक करवरें टारी।*......*सकल अमानुष करम तुम्हारे। केवल कौशिक कृपा सुधारे॥*' (१। ३५७) [श्रीरामजीका परम पुरुषार्थ देखनेपर भी राजाने अपनपौके साथ दूल्हे लाड़ला वात्सल्यभावकी उमंगसे '*प्रभु प्रसाद*' कहकर मुनिका गौरव और अपनायी हुई वस्तुका लाघव दिखाया—यह नीतिकी सीमा है। (रा० च० मिश्र)]

टिप्पणी—२ '*मोहि कृतकृत्य कीन्ह*......' इति। (क) प्रथम धनुष तोड़ना कहा, अब कृतकृत्य होना कहते हैं। इस क्रमसे यह जनाया कि धनुष टूटनेसे हम कृतकृत्य हुए। (ख)—श्रीरामजीने धनुष तोड़कर कृतकृत्य किया, पर यहाँ दोनों भाइयोंका कृतकृत्य करना कहते हैं, यह क्यों? उत्तर यह है कि श्रीजनक महाराज बुद्धिमान् हैं, इसीसे वे दोनों भाइयोंका कृतकृत्य करना कहते हैं। केवल श्रीरामजीको कहनेसे श्रीलक्ष्मणजीका अनादर होता और श्रीरामजी अप्रसन्न होते। क्योंकि जब समस्त उपस्थित तथा पूर्व आये हुए राजाओंसे धनुष न टूटा और जनकमहाराज व्याकुल हुए, यथा—'*नृपन्ह बिलोकि जनक अकुलाने। बोले बचन रोष जनु साने॥*' (२५१। ६) तब लक्ष्मणजीने अपना पुरुषार्थ कहा जिससे जनकजीको बड़ा धैर्य हुआ, उनके वचनोंहीने श्रीरामजीद्वारा धनुष तोड़े जानेका संयोग लगा दिया, फिर जब श्रीरामजी धनुष तोड़नेको हुए तब उन्होंने चरणसे ब्रह्माण्डको दबाया और भूधरोंको पृथ्वी धारण करनेकी आज्ञा दी। दोनों भाइयोंने पुरुषार्थ किया, इसीसे दोनों भाइयोंका उपकार कहते हैं। तात्पर्य कि जो जनकजीकी प्रतिज्ञा थी वह दोनों भाइयोंके पुरुषार्थसे पूरी हुई। (परशुराम-पराजयमें भी श्रीलक्ष्मणजीका बड़ा भारी भाग था) अतएव उनके द्वारा भी अपना परम उपकार समझ उसका निर्देश करते हुए '*दुहुँ भाई*' कहा। [लक्ष्मणजीके प्रतापसे ही परशुराम हतबलगर्व हो गये थे, यथा—'*बहइ न हाथ दहइ रिस छाती। भा कुठार कुंठित नृपघाती॥*' '*फिरेउ सुभाऊ*', '*हृदय कृपा*' यहाँतक दर्पहरण लक्ष्मणजीने ही किया है। '*रघुपति कीरति बिमल पताका। दंड समान भयउ जस जाका॥*' यह शक्ति यहाँ यथार्थ हो गयी है। (प० प० प्र०)] (ग) '*अब जो उचित सो कहिअ गोसाईं*' इति। श्रीजनकजीके इस वाक्यके उत्तरमें विश्वामित्रजीने दो बातें कहीं। एक तो यह कि धनुष टूटते ही विवाह हो गया, दूसरे यह कि तथापि तुम (लोक, कुल एवं वेदरीतिके अनुसार भी विवाह करो। इससे जान पड़ा कि राजाने मुनिसे यही पूछा था कि धनुष टूटनेपर अब विवाह हो या न हो।) '*गोसाईं*' सम्बोधन बड़ोंके लिये होता है। इससे जनाया कि आप बड़े हैं, आप जैसी आज्ञा दें वैसा मैं करूँ।

नोट—१ विश्वामित्रजीने विचारा कि जनकपुरवासियोंको तो आनन्द हुआ ही, अब अवधवासियोंको भी सुख देना चाहिये। बारात आवेगी तो दोनों समाजोंको परमानन्द होगा। दूसरे वे त्रिकालज्ञ हैं, जानते हैं कि शेष दोनों भाइयोंका भी विवाह होना है; अत: आगे दूतोंको भेजकर बारातसहित राजाको बुलवा भेजनेकी आज्ञा देते हैं। मयंककार लिखते हैं कि राजाने विचारा कि रघुकुलका और निमिकुलका एक गोत्र है; पुन: वे चक्रवर्ती महाराज हैं, अयोध्या छोड़कर बारात ले जाकर किसीके यहाँ विवाह करने नहीं गये, अत: सम्भव है कि वे मेरे यहाँ न आवें। अथवा, ज्योतिषियोंकी गणनामें कदाचित् कोई अन्तर पड़े वा यह वीर्यशुल्क स्वयंवर था, श्रीरामजी धनुष तोड़कर वीर्यशुल्का जानकीको प्राप्त कर चुके, उनको अधिकार है कि वे उनको घर ले जाकर वहीं कुलरीतिसे विवाह कर लें, इसमें मेरा क्या वश है—इन सन्देहोंके उत्पन्न होनसे राजाने मुनिसे पूछा कि जो उचित हो वह आज्ञा दीजिये, मैं वैसा प्रबन्ध करूँ। स्वामी प्रज्ञानानन्दजी कहते हैं कि पूछनेमें भाव यह है कि 'दोनों भाइयोंको माता-पितासे बिछुड़े हुए बहुत दिन हो गये, कदाचित् वे अब अधिक न रुक सकें'।

नोट—२ अ० रा० में यहाँ श्रीजनकजीको '**सर्वशास्त्रविशारद**' और वाल्मी० १। ६७ में '**वाक्यज्ञो**' विशेषण दिया गया है। पर इन दोनोंमें राजाने स्वयं विश्वामित्रजीसे अपनी इच्छा प्रकट की है कि यदि आज्ञा हो तो मेरे मन्त्री श्रीअवध जाकर विनय करके राजा दशरथको यहाँ ले आवें; आप उनको पत्र

भेजें। और, मानसके श्रीजनकजीने 'जो उचित' हो आप वह आज्ञा मुझे दें ऐसा कहा है। इन शब्दोंमें कितनी नम्रता भरी हुई है, मानसके जनकके भाव कितने उत्कृष्ट हैं, पाठक स्वयं विचार कर लें। मानसकविका कौशल भी देखिये कि 'जो उचित' को 'जो चित' करके अर्थ करनेसे वाल्मीकीय आदिका भाव भी खिंचकर आ सकता है। अर्थात् जो मेरे चित्तमें है वह कीजिये। क्यों पूछा? इसका उत्तर '**सर्वशास्त्रविशारद**' में आ गया कि वे जानते हैं कि शास्त्ररीति यही है कि वेदरीतिसे विवाह हो। वाल्मी० २। ११८ में श्रीसीताजीने अनसूयाजीके पूछनेपर स्वयंवरकी कथा जो कही है, उसमें यह भी कहा है कि धनुषके टूटनेपर सत्यप्रतिज्ञ मेरे पिता उत्तम जलपात्र लेकर श्रीरामचन्द्रको मुझे संकल्प कर देनेको उद्यत हुए, पर श्रीरामजीने अपने पिताका अभिप्राय जाने बिना मेरा दान लेना स्वीकार न किया। तब मेरे पिताने मेरे श्वशुरको निमन्त्रित किया। यथा—'**ततोऽहं तत्र रामाय पित्रा सत्याभिसंधिना। उद्यता दातुमुद्यम्य जलभाजनमुत्तमम्॥ ५०॥ दीयमानां न तु तदा प्रतिजग्राह राघवः। अविज्ञाय पितुश्छन्दमयोध्याधिपतेः प्रभोः॥ ५१॥ ततः श्वशुरमामन्त्र्य वृद्धं दशरथं नृपम्।**'—यह भी कारण विश्वामित्रजीसे कहनेका लिया जा सकता है, यद्यपि मानस-कथाका यह प्रसंग वाल्मीकीय आदिकी कथासे भिन्न और विलक्षण है।

टिप्पणी—३ '*कह मुनि सुनु नरनाथ प्रबीना।*······' इति। (क) '*नरनाथ*' सम्बोधनका भाव कि आप मनुष्योंके नाथ हैं, उनके उचित और अनुचितको समझकर न्याय करते हैं, लोककी बातें जानते हैं। (ख) राजाने उचित पूछा है, इसीपर मुनि कहते हैं कि आप 'प्रवीण' हैं, क्या उचित है यह आप सब जानते हैं। पुनः प्रवीण कहकर परमार्थके ज्ञाता भी जनाया। 'नरनाथ' लौकिक परिपाटीकी स्वीकारताका और 'प्रबीन' विशेषण वैदिक शैलीका समर्थक है। (रा० च० मिश्र)। 'प्रवीण' से सर्वशास्त्र-विशारद जनाया, यथा—'**ततोऽब्रवीन्मुनिं राजा सर्वशास्त्रविशारदः।**'(अ० रा० १। ६। ३२) स्वामी प्रज्ञानानन्दजीका मत है कि नरनाथसे नीति-निपुण और '*प्रबीना*' से व्यवहार-कुशल जनाया।

टिप्पणी—४ '*टूटतहीं धनु भयेउ बिबाहू।*······' इति। (क) पिछले चरणमें कहा कि विवाह चापके अधीन था, इसीसे कहते हैं कि धनुष टूटते ही विवाह हो गया। यहाँ कारण और कार्य दोनों साथ ही सिद्ध हुए। धनुष कारण है, विवाह कार्य है, धनुषके टूटते ही विवाह हो गया। तात्पर्य कि प्रतिज्ञास्वयंवरमें और कुछ कृत्य नहीं करना पड़ता; प्रतिज्ञाका पूर्ण होना ही कृत्य है। (ख) '*सुर नर नाग बिदित सब काहू*' इति। सुरसे स्वर्गलोक, नरसे मर्त्यलोक और नागसे पाताललोक, इस तरह तीनों लोकोंके निवासियोंका जानना कहा, क्योंकि इस स्वयंवरमें सब लोकोंके वीर आये थे, यथा—'*देव दनुज धरि मनुज सरीरा। बिपुल बीर आए रनधीरा॥*' (२५१। ८) पुनः भाव कि पन (प्रतिज्ञा)—विवाह सुर-नर-नाग सभीमें होता है, इसीसे सब जानते हैं कि धनुष टूटते ही (प्रतिज्ञा पूर्ण होते ही) विवाह हो गया।

दो०—तदपि जाइ तुम्ह करहु अब जथा बंस ब्यवहारु।
बूझि बिप्र कुलबृद्ध गुर बेद बिदित आचारु॥ २८६॥

अर्थ—तो भी अब आप जाकर जैसा वंशका व्यवहार है, उसे ब्राह्मणों, कुलके बड़े-बूढ़ों और गुरुसे पूछकर जैसा वेदविदित (वेदोंमें प्रसिद्ध—वेदोंमें कहा हुआ) व्यवहार है, वैसा कीजिये॥ २८६॥

टिप्पणी—१ (क) '*तदपि*' अर्थात् यद्यपि प्रतिज्ञा-रीतिसे विवाह हो गया तो भी कुलरीति और वेद-रीतिसे विवाह करना उचित है, निषेध नहीं है। (ख) '*जाइ*' जानेको कहा, क्योंकि रंगभूमिमें प्रतिज्ञा-विवाह हो चुका, अभी सब रंगभूमिमें ही हैं। लोकरीति, वंश-व्यवहार और वेदरीति घरमें होगी। अतः घर जानेको कहा। (ग) '*अब*' का भाव कि बिना धनुष टूटे वंश-व्यवहार एवं वेद-व्यवहार नहीं हो सकते थे, प्रतिज्ञा पूरी हो गयी, अतः अब उसे जाकर करो। (घ) '*जथा बंस ब्यवहारु*' कहनेका भाव कि वंश-व्यवहार सबका एक सा नहीं है। अनेक वंश हैं और उनके (भिन्न-भिन्न) अनेक तरहके व्यवहार हैं, इसीसे कहते हैं कि जैसा तुम्हारे वंशका व्यवहार हो वैसा करो। (ङ) '*बूझि बिप्र*······' इति।

ब्राह्मणोंसे पूछो, वे विवाहका मुहूर्त बतावेंगे। कुलवृद्धोंसे पूछो, वे कुलकी रीति बतावेंगे। गुरुसे पूछो, वे वेद-व्यवहार बतावेंगे। (च) *'बेद बिदित आचारु'* इति। भाव कि वंशव्यवहार विदित नहीं है, उसे वंशके कुलवृद्ध जानते हैं और वेदमें जो आचार हैं वह सब वेदज्ञ गुरुजन जानते हैं। [इससे धर्मकार्यकी मर्यादा बतायी कि कुलाचार और वेदाचार दोनों करने चाहिये और निज-निज मति-अनुसार नहीं किन्तु विप्र, कुल-वृद्धादिकी सम्मतिसे करे। (प० प० प्र०)]

दूत अवधपुर पठवहु जाई। आनहिं* नृप दसरथहि बोलाई॥ १॥
मुदित राउ कहि भलेहि कृपाला। पठए दूत बोलि तेहि काला॥ २॥

अर्थ—जाकर अवधपुरीको दूत भेजिये। वे जाकर श्रीदशरथजीको बुला लावें॥ १॥ राजाने प्रसन्न होकर कहा—हे कृपालो! बहुत अच्छा। और उसी समय दूतोंको बुलाकर (श्रीअयोध्यापुरीको) भेज दिया॥ २॥

टिप्पणी—१ *'दूत अवधपुर……'* इति। बिना दशरथ महाराजके आये विवाहकी शोभा न होगी और राजा जनकजी उनको बड़ा समझके (क्योंकि वे चक्रवर्ती राजा हैं) बुला नहीं सकते, जैसा—*'अपराध छमिबो बोलि पठए बहुत हौं ढीठ्यों कई।'* (३२६) उनके इस वाक्यसे स्पष्ट है। इसीसे चक्रवर्ती महाराजके बुलानेकी आज्ञा विश्वामित्रजी दे रहे हैं। [पुनः 'दशरथजी महाराजको बुलानेका भाव यह है कि यदि कहते कि तुम विवाहका प्रबन्ध करो तो दोनों तरफका खर्च इन्हींको लगेगा, इसमें शोभा नहीं होगी, गरीबका-सा लड़का व्याहा जायगा। और चक्रवर्तीजीके आनेसे धूम-धामसे विवाह होगा। पुनः यदि आज्ञा नहीं देते हैं तो राजा संकोचवश उनको बुलावेंगे नहीं। अतएव ऐसी आज्ञा दी। (मा० पी० प्र० सं०)]

टिप्पणी—२ *'मुदित राउ कहि……'* इति। (क) *'मुदित'* होनेका भाव कि विश्वामित्रजीने जनक महाराजके मनकी बात कही, इसीसे ये प्रसन्न हुए। जो लालसा राजाके मनमें थी वह इस आज्ञासे पूर्ण हो गयी। जो संकोच उनके मनमें था कि हम यदि चक्रवर्ती महाराजको अपनी ओरसे बुलावें तो उनका अपमान होगा, वह मुनिकी आज्ञा होनेसे जाता रहा। यथा—*'मंत्री मुदित सुनत प्रिय बानी। अभिमत बिरव परेउ जनु पानी॥'* (२। ५), *'नृपहि मोदु मुनि सचिव सुभाषा। बढ़त बौंड़ जनु लही सुसाखा॥'* (२। ५) सत्योपाख्यानमें भी ऐसा उल्लेख है कि श्रीजनक महाराजने विश्वामित्रजीसे प्रार्थना की कि आप आज्ञा दें कि दूत जाकर श्रीदशरथजीको सेनासहित ले आवें। उसपर मुनिने आज्ञा दी—'**एवं भवतु भो राजन् गच्छन्तु त्वरितं हयैः॥ २॥ आगमिष्यति राजा तु पुत्राभ्यां सैनिकैः सह।**' (उत्तरार्ध ९। ७४) अर्थात् ऐसा ही हो, तुरंत शीघ्रगामी घोड़ोंपर दूत जायँ और राजाको पुत्रों और सेनासहित ले आवें। (ख) *'भलेहि'*—यह कहकर मुनिकी आज्ञाकी स्वीकारता जनायी। (ग) *'कृपाला'* कहकर जनाया कि आपने मुझपर बड़ी कृपा की जो चक्रवर्ती महाराजको बुलानेकी आज्ञा दी, क्योंकि मैं उनको बुलानेके योग्य नहीं था। [पुनः *'कृपाला'*—क्योंकि इनका मनोरथ पूरा किया। दूसरे यह कि इस आज्ञाद्वारा दोनोंका पुराना टूटा हुआ सम्बन्ध आप पुनः जोड़ रहे हैं। पुनः *'कृपाला'* इससे कि मुनिने अपनी ओरसे आज्ञा दी, राजाको कुछ कहना न पड़ा। विजयदोहावलीमें इस प्रसंगपर यह कहा है—*'स्त्रवन बधेके पाप हैं दीन्ह अंध रिषि साप। सो दसरथ बाहर रहे जनक न नेवते आप॥ स्वयं ब्रह्म अवतरे जहँ सब बिधि पूरन आप। तुलसी बिनय बिदेहकी चूक पाछिली माफ॥'* (मा० पी० प्र० सं०)] (घ)—*'पठए दूत बोलि तेहि काला'* इति। मुनिने तो आज्ञा दी थी कि घर जाकर दूतोंको भेजो, पर राजा इतने आनन्द-विभोर हैं कि वे मुनिके *'पठवहु जाई'* के *'जाई'* वाली आज्ञाको भूल ही गये, वहीं दूतोंको बुलाकर उसी समय उन्होंने भेज दिया। (दूसरे, दूत वहाँ रंगभूमिमें ही उपस्थित रहे होंगे, इससे मुनिके सामने ही अपने पास बुलाकर वहींसे भेजा, जिसमें दूतोंका भेजा जाना मुनिकी ही आज्ञासे निश्चित हो। प० प० प्र० का मत है कि जनक महाराज मुनिके *'तदपि जाइ तुम्ह'* और *'पठवहु जाई'* दो बार जानेकी आज्ञाका उल्लङ्घन करें यह असम्भव है। *'भलेहि'* से सूचित कर दिया कि वे घर गये और वहाँसे दूत भेजे। मिलान

* आनो—१७०४।

कीजिये—'*चलहु बेगि सुनि गुर बचन भलेहि नाथ सिर नाइ। भूपति गवने भवन*……।' (२९४) (प० प० प्र०) अ० रा० में दूतोंने दशरथजीसे कहा है कि विश्वामित्रसहित राजाने यह संदेश भेजा है, यथा—'**अब्रवीच्च महाराज विश्वामित्रेण संयुतः।**' (सत्योपाख्यान)] (ङ)—यहाँ पत्रिका लिखकर दूतोंको देना नहीं लिखा, क्योंकि आगे अवधपुरी पहुँचनेपर पत्रिकाका हाल कहेंगे। दोनों जगह लिखनेसे विस्तार हो जाता।

बहुरि महाजन सकल बोलाए। आइ सबन्हि सादर सिर नाए॥ ३॥
हाट बाट मंदिर सुरबासा*। नगर सँवारहु चारिहु पासा॥ ४॥
हरषि चले निज निज गृह आए। पुनि परिचारक बोलि† पठाए॥ ५॥
रचहु बिचित्र बितान बनाई। सिर धरि बचन चले सचु पाई॥ ६॥

अर्थ—फिर सब महाजनोंको बुलाया। सबोंने आकर आदरपूर्वक मस्तक नवाया (प्रणाम किया)॥ ३॥ (राजाने उनसे कहा कि) बाजार, रास्ते, मन्दिर-देवताओंके निवास-स्थान और नगरको चारों ओर सजाओ॥ ४॥ सब प्रसन्न हो (खुश-खुश) वहाँसे चले और अपने-अपने घर आये। फिर (राजाने) परिचारकों (टहलुवों, सेवकों) को बुला भेजा॥ ५॥ (और उन्हें आज्ञा दी कि) विचित्र मण्डप सँवारकर रचो। वे सब आज्ञाको शिरोधार्यकर सुख पाकर चले॥ ६॥

टिप्पणी—१ (क) '*बहुरि*' का भाव कि मुनिकी आज्ञाका प्रतिपालन प्रथम कर दिया तब अपनी ओरसे जो करना उचित समझते थे उसकी आज्ञा अपनी ओरसे देनेमें तत्पर हुए। '*पठए दूत बोलि तेहि काला*' तक मुनिकी आज्ञा कही, अब राजाकी आज्ञा कहते हैं। अतः बीचमें '*बहुरि*' पद दिया। ('*बहुरि*' का अर्थ यहाँ 'दुबारा' नहीं है किंतु 'तत्पश्चात्, उसके बाद' है।) (ख)—'*महाजन*' महात्मा और धनिक दोनोंको कहते हैं, पर यहाँ धनी लोगोंका ही ग्रहण है। महाजनोंको बुलानेमें भाव यह है कि काम भारी है। नगरको चारों ओर सजाना है, इसलिये '*सकल*' (सभी) महाजनोंको बुलाया। (ग) '*आइ सबन्हि सादर सिर नाए*'— सबका आना और सादर प्रणाम करना कहनेसे पाया गया कि राजाकी आज्ञामें सबकी भक्ति है। इससे सबका स्वामिभक्त होना दिखाया। प्रथम कहा कि '*महाजन सकल बोलाए*' इसीसे आनेमें '*आइ सबन्हि*' कहा। यदि यहाँ '*सबन्हि*' न कहते तो समझा जाता कि सब नहीं आये थे, कुछ ही आये थे। [इससे जनाया कि राजाके यहाँ सबके नामादिका रजिस्टर रहता था '*सादर*' शब्द जनाता है कि इनसे राजाका सम्बन्ध कितने प्रेमका था। प० प० प्र०]

टिप्पणी—२ '*हाट बाट मंदिर*……' इति। (क) मंदिर=मकान, घर। यथा—'*गयउ दसानन मंदिर माहीं*', '*मंदिर मंदिर प्रति करि सोधा*', '*मंदिर महुँ न दीखि बैदेही*' (५। ५), '*पुनि निज भवन गवन हरि कीन्हा॥ कृपासिंधु जब मंदिर गए। पुरनर नारि सुखी सब भए॥*' (७। १०) (स्वामी प्रज्ञानानन्दजीका मत है कि '**मंदिर**' शब्द मानसमें चौवालीस बार आया है। इसका प्रयोग शिवजी, रामजी अथवा हनुमान्‌जीके निवासस्थानोंके लिये ही किया गया। यहाँ मन्दिरसे जनकवंशियोंका शिव-मन्दिर अभिप्रेत है। कहा ही है कि '*इन्ह सम काहु न शिव अवराधे*'।)(ख)—जब राजा दशरथजीके बुला लानेकी आज्ञा दी तभी नगर सँवारनेकी आज्ञा दी। मङ्गल-समयमें हाट-बाट-मन्दिर आदि सँवारनेकी रीति है। यथा—'*सुनि सुभ कथा लोग अनुरागे। मग गृह गली सँवारन लागे॥*' (ग) '*नगर सँवारहु*' इति। सजाना मङ्गलका चिह्न है। नगर तो पूर्वसे ही सुन्दर बना हुआ है, यहाँ '*सँवारने*' से विशेष रचना करनेकी आज्ञा अभिप्रेत है। यथा—'*जद्यपि अवध सदैव सुहावनि। रामपुरी मंगलमय पावनि॥ तदपि प्रीति कै रीति सुहाई। मंगल रचना रची बनाई॥*' (२९६। ५-६) (नगर-रचना तो पूर्वसे ही अलौकिक है, यथा—'*बनै न बरनत नगर निकाई। जहाँ जाइ मन तहँइ लोभाई॥*' (१। २१३) यहाँ सँवारनेसे बन्दनवार, पताका, केतु आदिका लगाना जनाया। यह प्रीतिकी रीति दिखाते हैं) पुनः, श्रीजनकजी अब निश्चय जान गये कि ये 'राम' ब्रह्म हैं

* चहुँ पासा-१७०४। † निकर बोलाये-१७०४।

और उधर उनके पिता दशरथजी चक्रवर्ती महाराज हैं; अतः उनके स्वागतके लिये *'तसि पूजा चाहिय जसि देवता'*, इस नियमके अनुसार विशेष ऐश्वर्यसे सजावट करनेकी आज्ञा दी। (प० प० प्र०)]

टिप्पणी—३ *'हरषि चले निज निज गृह आए।'*...... इति। (क) राजा जनक आदि सब सभाके लोग हर्षपूर्वक अपने-अपने घर आये। राजा जनकने दूतों और महाजनोंको स्वयं बुलाया, यथा—*'पठए दूत बोलि तेहि काला'*, *'बहुरि महाजन सकल बोलाए'*; क्योंकि महाजन और दूत वहीं विद्यमान हैं। राजाने घरपर जानेके पश्चात् सेवकोंको बुलवाया, क्योंकि सेवक भी बुलानेके समय अपने-अपने घरमें हैं—*'हरषि चले निज निज गृह आए'*। इसीसे उनको *'बोलि पठाए'* अर्थात् बुलावा भेजा ऐसा लिखा। *'पुनि'* से भी राजाका ही बुलवाना सिद्ध होता है। यदि यह अर्थ करें कि महाजन अपने-अपने घर आये और उन्होंने सेवकोंको बुलाया तो *'तिन्ह परिचारक बोलि पठाए'* ऐसा पाठ होता। जैसा आगे *'पठए बोलि गुनी तिन्ह नाना'* में है! यदि महाजनोंको वितान बनानेकी आज्ञा देते तो पाया जाता कि राजाने अपने धनसे वितान नहीं बनवाया, किंतु महाजनोंसे बनवाया।

'हरषि चले'......'—'यह चौपाई धोखेकी है, क्योंकि इसे सब टीकाकारोंने महाजनोंमें लगाया है। परंतु महाजनोंमें इसे लगाना नहीं बनता है, क्योंकि आगे वितान बनवाना कहा है, और वितान बनानेकी एक तो महाराजने आज्ञा ही नहीं दी, दूसरे यदि कोई कहे ही कि महाराजने वितानकी आज्ञा दी तो भी ठीक नहीं जँचता, क्योंकि श्रीजनकजीको क्या कमी है कि महाजनोंसे अपना वितान बनवायेंगे। अतएव यहाँ यह अर्थ हुआ कि महाजनोंको जो आज्ञा दी वह पूर्व लिखी गयी कि *'हाट बाट मंदिर सुरबासा। नगर सँवारहु'*......'। रङ्गभूमिमें सबका आना कहा था, अतः यहाँ उन्हीं सबोंका जाना कहकर सभाका बरखास्त होना सूचित किया। सब अपने-अपने घर गये। राजा भी घर आये। तब राजाने परिचारकोंको बुला भेजा। यदि यहाँ रङ्गभूमिसे सबका जाना नहीं कहा गया तो फिर आगे तो कहीं जानेकी चर्चा है ही नहीं, तब क्या सब रङ्गभूमिमें ही बैठे हैं? (स्वामी प० प० प्र० का मत है कि 'महाजनोंने परिचारकोंको बुलवाया।' वे कहते हैं कि यहाँ 'आये' से केवल आनेकी क्रिया सूचित की है न कि 'जाने' की। *'सचु पाई'* से दिखाया कि सेवकोंकी भावना कितनी सात्त्विकी थी।)

टिप्पणी—४ *'रचहु बिचित्र बितान बनाई'*........' इति। (क) नगर सँवारनेको कहा और वितान विचित्र रचनेको कहते हैं, क्योंकि वितानके नीचे विवाह होनेको है, सब कोई वहाँ आवेंगे और विचित्र रचनाको देखेंगे। *'बिचित्र'* कहकर जनाया कि इसमें अनेक प्रकारके रङ्ग-विरङ्गके मणि लगाओ। *'रचहु बनाई'* अर्थात् इसमें बहुत विशेष कारीगरी दिखाओ। (ख) *'सिर धरि बचन'* बचनको शिरोधार्य करना सेवकका परम धर्म है। यथा—*'सिर धरि आयसु करिय तुम्हारा। परम धरम यह नाथ हमारा॥'* (ग) *'चले सचु पाई'* इति। (*'चले'* बहुवचन है। इससे जनाया कि बहुत-से सेवकोंको बुलाया था, जिसमें एक-एकको एक-एक काम सौंप दें, इस तरह काम शीघ्र हो जायगा।) *'सचु पाई'* सुख प्राप्त हुआ, क्योंकि सेवकको स्वामीकी आज्ञा होना सेवकका परम सौभाग्य है, आज्ञा परम सेवा है, इसके समान दूसरी सेवा नहीं, सेवक स्वामीकी आज्ञाका लालायित रहता है। यथा—*'आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा। सो प्रसादु जन पावै देवा॥'* (२। ३०१), *'प्रभु मुख कमल बिलोकत रहहीं। कबहुँ कृपाल हमहिं कछु कहहीं॥'* (७। २५)

पठए बोलि गुनी तिन्ह नाना। जे बितान बिधि कुसल सुजाना॥ ७॥
बिधिहि बंदि तिन्ह कीन्ह अरंभा। बिरचे कनक कदलि के खंभा॥ ८॥

दो०—हरित मनिन्ह के पत्र फल पदुमराग के फूल।
रचना देखि बिचित्र अति मनु बिरंचि कर भूल॥ २८७॥

शब्दार्थ—गुनी (गुणी)-गुणवान् कारीगर। कदलि=केला। पदुमराग (पद्मराग)=माणिक्य या लाल नामक

रत्न। यह माणिक्यकी वह जाति है जिसका रङ्ग अरुणकमल पुष्पके समान होता है। **भूलना**=धोखेमें आ जाना, चकित होना, लुभा जाना, गुम होना।

अर्थ—उन्होंने अनेक गुणवान् कारीगरोंको बुलवा भेजा जो मण्डप-रचनाकी विधिमें निपुण और सुजान थे॥ ७॥ उन्होंने ब्रह्माजीकी वन्दना करके (कार्य) प्रारम्भ किया और सोनेके केलेके खम्भे विशेष रचकर बनाये॥ ८॥ हरे मणियोंके पत्ते और फल तथा पद्मरागके फूल ऐसे रचकर बनाये कि उस अत्यन्त विचित्र रचनाको देखकर ब्रह्माका मन भुलावेमें पड़ गया अर्थात् वे चकित हो गये॥ २८७॥

टिप्पणी—१ *'पठए बोलि गुनी तिन्ह नाना।'* इति। (क) बहुत परिचारकोंको आज्ञा दी गयी है, इससे सूचित होता है कि मण्डपमें बहुत काम है और बारात आनेके पूर्व ही मण्डप तैयार हो जाना चाहिये। मण्डपका एक-एक काम एक-एक परिचारकको सौंपा गया। प्रत्येकने एक-एक काम बनवाया। प्रत्येक काममें बहुत गुणियोंका काम है। इसीसे प्रत्येक परिचारकने अपने-अपने कामके लिये अनेक गुणी कारीगरोंको बुलाया। यदि सब काम न्यारे-न्यारे न होते तो एक ही कामदार अनेक गुणवानोंको बुला सकता था। मण्डपका काम भारी है, अनेक कामदारोंको सौंपा गया है। अत: *'तिन्ह'* पद दिया। (ख)—'कुशल' अर्थात् वितान बनानेमें प्रवीण हैं। विधि जाननेमें सुजान हैं। क्रियामें कुशल हैं और जाननेमें सुजान हैं, काम करनेमें कुशल हैं और कारीगरीकी विधिमें सुजान हैं, भली प्रकार पढ़े-गुणे हैं। सब बात सब नहीं जानते, इससे नाना गुणी बुलाये गये।

नोट—१ जो इस बातमें चतुर हैं कि बता सकें कि यहाँ कैसी रचना उत्तम होगी, पर बनानेकी बुद्धि नहीं रखते, वे भी कामके नहीं और जो केवल बनानेमें होशियार हैं, पर कहाँ कैसा होना चाहिये यह बुद्धि नहीं रखते वे भी कामके नहीं, अतएव यहाँ कुशल और सुजान दोनों कहकर पक्के गुणवान् सूचित किये।

टिप्पणी—२ *'बिधिहि बंदि'*"""' इति। (क) ब्रह्माजी रचनाके आचार्य हैं (ये सृष्टिके रचयिता हैं, कैसी विचित्र सृष्टि इन्होंने रची है? रचना करनेमें इनसे बढ़कर दूसरा नहीं), इससे उनकी वन्दना करके कार्यका आरम्भ किया, जिसमें वितानकी रचना उत्तम हो। (यहाँ ब्रह्माका *'बिधि'* नाम दिया, क्योंकि 'विधि' से ही मण्डप बनाना है। पुन: पूर्वके *'जे बितान बिधि कुसल सुजाना'* की जोड़में यहाँ *'बिधि'* नाम दिया।) *'बिधि'* की वन्दना करनेसे विधि सर्वप्रकारेण सुन्दर बनी। [(ख) शंका—ब्रह्माजी तो शापित हैं, अपूज्य हैं, तब उनकी वन्दना कैसे की गयी? समाधान—यह बात शापसे पहलेकी है। वाल्मीकीयमें भी ब्रह्माजीका पूजन और नमस्कार पाया जाता है, यथा—'**पूजयामास तं देवं पाद्यार्घ्यासनवन्दनैः। प्रणम्य विधिवच्चैनं पृष्ट्वा चैव निरामयम्॥**' (१। २। २५) अर्थात् ब्रह्माजीको देखकर वाल्मीकिजीने पाद्य, अर्घ्य, आसन और स्तुतिद्वारा उनकी पूजा की और विधिवत् प्रणाम करके उनसे कुशल-प्रश्न किया। दूसरे, यहाँ तो पूजा नहीं किंतु वन्दनामात्र की गयी है। पूजा भले ही बंद हो, पर नमस्कार तो बंद नहीं है। सभी ऋषीश्वर उनको प्रणाम करते हैं। अत: रचनाके आचार्यके नाते कार्यारम्भमें उनको नमस्कार करना योग्य ही है? दोहा १४ *'बंदउँ बिधिपदरेनु'*"""' में विस्तारसे यह विषय लिखा जा चुका है, वहीं देखिये।] (जिस कार्यमें जिस देवी-देवताका वन्दन, पूजनादि शास्त्राविधि हो उसे करना ही चाहिये, नहीं तो विघ्न उपस्थित होते हैं। जैसे अयोध्याकाण्डमें नगर सँवारनेमें वन्दन न होनेसे राज्याभिषेकमें विघ्न हुआ। प० प० प्र०) (ग) मण्डपमें प्रथम खम्भे गाड़े जाते हैं, पीछे वह छाया जाता है (प्रथम खम्भे रचे, क्योंकि वितान इन्हींके आश्रित रहता है। केलेका वृक्ष माङ्गलिक है, मङ्गल-कार्योंमें केलेके खम्भे लगाये जाते हैं। अत: गुणियोंने मङ्गल रचनासे ही प्रारम्भ किया)। केलेका खम्भा पीतवर्ण होता है और स्वर्ण भी पीतवर्ण है, अत: स्वर्णके खम्भे बनाये। और कोई स्वर्ण हरित होता है, उसके खम्भे बनाये। मंडपके चारों कोनोंमें केलेके खम्भे गाड़े जाते हैं, इसीसे इन्होंने चारों (कोनोंमें देखनेमें केला ही जान पड़नेवाले) खम्भे रचे।

टिप्पणी—३ *'हरित मनिन्ह के पत्र फल'*"""' इति। (क) केलेके पत्ते और फल हरे होते हैं, इसीसे

हरित मणियोंके पत्ते और फल बनाये। फूल लाल होता है, इसीसे लाल मणि पद्मरागके फूल बनाये। पत्र और फल एक हरितमणिसे नहीं बन सकते, उसमें बहुत मणि लगते हैं, इसीसे *'मनिन्ह'* बहुवचन शब्द दिया। (ख) शंका—यहाँ प्रथम फल कहते हैं तब फूल (परंतु वृक्षमें प्रायः फूल पहले होते हैं तब फल) यहाँ क्रमभङ्ग क्यों हुआ? समाधान—(यह रीति अन्य वृक्षोंमें है, केलेमें नहीं।) केलेकी बालीमें ऊपर फल रहता है नीचे फूल। [केलेमें प्रथम पत्ते होते हैं, तब जैसे-जैसे फल-फूल बढ़ते हैं उसी क्रमसे यहाँ लिखा। इसमें फल-फूल साथ-ही-साथ होते हैं (मा० पी० प्र० सं०)] उसी क्रमसे यहाँ प्रथम पत्र-फल तब फूल कहे अथवा, साक्षात् केलेमें फूल-फलका क्रम होता है और ये तो बनाये हैं (बनानेमें जो भाग प्रथम बनाना ठीक होगा वही प्रथम बनेगा, जो पीछे ही ठीक बन सकता है वह पीछे बनाया गया। अतः बनानेमें क्रमभङ्ग आवश्यक था)। (ग) अनेक रङ्गोंकी वस्तु विचित्र कहलाती है। यहाँ खम्भे पीत रङ्गके हैं, पत्र और फल हरित हैं, फूल लाल हैं। इसीसे *'बिचित्र'* कहा। मङ्गल-समयमें सफल वृक्ष लगानेका विधान है, यथा—*'सफल पूगिफल कदलि रसाला। रोपे बकुल कदंब तमाला॥'* (३४४।७), *'सफल रसाल पूगफल केरा। रोपहु बीथिन्ह पुर चहुँ फेरा॥'* (२।६।६) (घ) *'बिरंचि'* का भाव कि ये विशेष रचना करनेवाले हैं, सो इनका भी मन भूल गया, इनको भी भ्रम हो गया कि ये कदली कृत्रिम हैं या साक्षात् (असली) हैं अथवा रचना देखकर मन उसीमें मग्न हो गया। इससे मण्डपकी विशेषता (उसकी अलौकिकता) दिखायी। [(ङ) जब सृष्टि-कर्त्ताका मन भूल गया तो यदि मनुष्य भूल जायँ, तो क्या आश्चर्य। आगे कवि भी अपनी भूल स्वीकार करते हैं—वह यह कि इस दोहेके आगे सात ही चौपाईपर दोहा रख गये हैं, नहीं तो आठ तो रखते ही आ रहे थे। क्यों न हो, यह भूलहीका प्रकरण है!! इसी प्रकार (भागवतदासकी पोथीके अनुसार) चार जगह (अर्थात् १। १२३, २। ८,२। १७३, ७। ७५ में) और भी भूले हैं, नहीं तो अन्य किसी ठौर आठसे कम चौपाइयोंपर दोहा नहीं लगाया गया। (रा० मिश्र) (च) स्वामी प्रज्ञानानन्दजी रा० च० मिश्रके मतका विरोध करते हैं। वे कहते हैं कि नाटकमें भले ही श्रोतृगण भूल जायँ पर नटको नहीं भूलना चाहिये, यदि वह स्वयं ही भूल जायगा तो श्रोताओंको भुलानेमें समर्थ नहीं हो सकेगा। कवि कहीं नहीं भूला, प्रत्युत वह स्थान-स्थानपर बताता जाता है कि मैं अपनी दीनता और दास्य-भावको नहीं भूला हूँ। जैसे कि दोहा २०२ के विश्वरूप दर्शनके वर्णनमें *'देखी भगति जो छोरै ताही'* बता रहा है कि गोस्वामीजी विस्मयवंत नहीं हुए, और दोहा १९६ में *'तुलसीदासके ईस'* शब्द बता रहे हैं कि कविका *'जो जेहि बिधि आवा'* में भूलसे सम्मिलित हो जाना सम्भव था पर ऐसा नहीं हुआ। रामभक्त भगवान्से विषयोंकी याचना नहीं करते—इस मर्यादाको गोस्वामीजी नहीं भूले इत्यादि। मंडपरचनाकी अलौकिकता और ब्रह्माका चकित होना आगे दिखाया गया है, यथा—*'चितवहिं चकित बिचित्र बिताना। रचना सकल अलौकिक नाना॥'*······*'बिधिहि भयेहु आचरजु बिसेषी। निज करनी कछु कतहुँ न देखी॥ सिव समुझाए देव सब जनि आचरज भुलाहु।'* (३१४)]

बेनु हरित मनिमय सब कीन्हे। सरल सपरब* परहिं नहिं चीन्हे॥ १॥
कनक कलित अहिबेलि बनाई। लखि नहिं परै सपरन सुहाई॥ २॥
तेहि के रचि पचि बंध बनाए। बिच बिच मुकुता दाम सुहाए॥ ३॥

शब्दार्थ—**बेनु** (वेणु=बाँस। **सरल**=सीधा; जो टेढ़ा नहीं है। **सपरब** (सपर्व। सं० पर्वन्)=पोर वा गाँठसहित। **पर्व**=संधिस्थान; वह स्थान जहाँ दो चीजें, विशेषतः दो अङ्ग जुड़े हों जैसे कुहनी, गन्ने वा बाँसमेंकी गाँठ। **कलित**=सुसज्जित सजायी हुई, सुन्दर। **अहिबेलि**=नागबेलि=पानकी लता या वेलि। **सपरन** (सपर्ण)=पत्तोंके समेत। **रचिपचि**-कारीगरीसे सजाकर। **पचि**—एक पदार्थको दूसरेमें पूर्णरूपसे लीन कर देने, खपा देनेको 'पचाना' कहते हैं। ***रचि पचि***—खूब युक्ति और कारीगरीसे बनाकर, पच्चीकारी करके। **बंध**=बन्धन। **दाम**=माला।

* सपर्व—१७०४। सपरन—को० रा०।

अर्थ—सब बाँस हरी-हरी मणियोंके सीधे और पोरों (गाँठों) सहित ऐसे बनाये कि पहचाने नहीं जा सकते (कि बनाये हुए हैं, सचमुच बाँस ही जान पड़ते हैं)॥ १॥ सुवर्णसे रचित सुन्दर पानोंकी लता बनायी जो पत्तोंसे युक्त होनेसे पहचानी नहीं जा सकती और सुन्दर है॥ २॥ उस (नागबेलि) के रचकर और पच्चीकारी करके बन्धन बनाये जिनके बीच-बीचमें मुक्ताकी मालाएँ अर्थात् झालरें शोभा दे रही हैं (अर्थात् बनायी गयी हैं)॥ ३॥

नोट—१ इस मण्डपकी रचना कैसी सर्वोत्कृष्ट है, यह उस समयकी कौशलशक्तिका नमूना है। दीनजी कहते हैं कि हिंदी-साहित्य-संसारमें इस कमालका रचना-वर्णन किसी कविसे नहीं हुआ है, यह कमाल गोस्वामीजीहीके हिस्सेमें पड़ा है।

नोट—२ '***बेनु हरित मनिमय सब कीन्हें।*********' इति। विवाह-मण्डप बाँससे छाया जाता है, यह रीति है। इसीसे गोस्वामीजीने बाँसका बनाया जाना कहा। '***सब***' का भाव यह कि और जितनी वस्तुएँ केला आदि बनायी गयीं उनमें नाना प्रकारके मणि लगे हैं—हरे, लाल, पीले; पर बाँस सब हरे मणिके हैं; क्योंकि बाँसकी शोभा हरे ही रंगकी है, हरे ही बाँस माङ्गलिक समझे जाते और मण्डपमें लगाये जाते हैं; पीले सूखे नहीं। अतएव '***बेनु हरित मनिमय***' कहा। बाँस सीधे हैं क्योंकि टेढ़ाईसे शोभा जाती रहती और पर्वसहित हैं। बाँस मणिमय बनाये गये, यदि उनमें गाँठें न हों तो वे लाठी-से जान पड़ेंगे, इसीसे उनका '***सपरब***' होना कहा गया। हरित मणिके होनेसे यहाँ बराबर हरे ही बने रहेंगे, शोभा एकरस बनी रहेगी।

टिप्पणी—१ (क) हरे बाँसोंका मण्डप शोभित होता है, इसीसे सब बाँस हरित मणियोंके बनाये। सूखे बाँस उजले या पीले होते हैं, उनमें शोभा नहीं होती। सीधे बाँसोंका मण्डप अच्छा होता है, इसीसे सीधे बनाये। बाँसमें पर्व होते हैं अतएव 'पर्व' भी बनाये। (ख) '***परहिं नहिं चीन्हे***' इस कथनसे गुणी लोगोंके गुणकी प्रशंसा और बड़ाई हुई। खम्भोंपर बाँस रखे जाते हैं। फिर सुतली या मूँजकी रस्सी (बाँधी) से बाँधे जाते हैं। इसीसे बन्धन आगे कहते हैं।

टिप्पणी—२ (क) (सुवर्णके केलेके खम्भे बना चुके, उनपर अब स्वर्णकी नागबेलि चढ़ायी) पानकी पुराने होनेपर अर्थात् पक जानेपर शोभा है। पके हुए पान पीले होते हैं। अतः पानोंकी लता सोनेकी बनायी। हरित मणियोंके पत्रमें हरित मणिके बाँस रखे और कनकके खम्भोंमें कनककी बेलि चढ़ायी। '***अहिबेलि***' नाम देकर जनाया कि अहि (सर्प या नाग) की तरह बेलि चली। (ख) '***लखि नहिं परै***' इति। मण्डप अत्यन्त विचित्र बनाया है, इसीसे बारंबार लिखते हैं कि लख नहीं पड़ता। यथा—'***रचना देखि बिचित्र अति मन बिरंचि कर भूल***', '***सरल सपरब परहिं नहिं चीन्हे***' '***लखि नहिं परै सपरन सुहाई***'। (ग) '***सपरन***' अर्थात् पत्तोंसे युक्त होना कहकर जनाया कि पानके पत्तोंसे मण्डप छाया गया है। [(घ) '***सुहाई***' सपरनका विशेषण नहीं है। नागबेलि शोभा दे रही है, एवं सुन्दर है। '***सुहाई***' स्त्रीलिंग है।]

टिप्पणी—३ '***तेहि के रचि पचि बंध बनाए।**********' इति। (क) '***रचि पचि***' कहनेसे बन्धन बनानेमें परिश्रम सूचित किया। मोतियोंकी मालाएँ लटकानेसे मण्डपमें बहुत शोभा हुई। बन्धनोंके बीचमें शोभा उत्पन्न करनेके लिये मुक्तामाल लटकाये गये। (बाँस बिना बन्धनके एक ठिकाने नहीं रह सकते; इसलिये नागबेलिकी बौंड़ीसे अच्छी तरह पच्चीकारी करके पतले चमकदार बन्धन रचे। '***रचि पचि***' कहकर जनाया कि बन्धन बड़े सुन्दर बनाये थे। इनसे बन्धनोंमें बड़ी शोभा है। बन्धनोंके बीचमें जगह पड़ी है। जहाँ-जहाँ बंध बँधे हैं वहाँ-वहाँ दो-दो गाँठों (बन्धनों) के बीचमें एक-एक मुक्तादाम लटकाये हैं। मुक्तादाम सचमुचके हैं। इससे इनके विषयमें '***लखि नहिं परइ***' न कहा और बाँस, केला तथा नागबेलि इत्यादि कृत्रिम हैं अर्थात् दूसरी वस्तुओंके नकली बनाये गये हैं, इससे उनके बारेमें कहा कि '***परहिं नहिं चीन्हे***' '***लखि नहिं परै।***'

मानिक मरकत कुलिस पिरोजा। चीरि कोरि पचि रचे सरोजा॥४॥
किए भृंग बहु रंग बिहंगा। गुंजहिं कूजहिं पवन प्रसंगा॥५॥

शब्दार्थ—**मानिक** (माणिक्य)=एक लाल रंगका रत्न। **मरकत** (सं०)=पन्ना; यह गहरे हरे रंगका एक रत्न है जो स्लेट और ग्रेनाइटकी खानोंसे निकलता है। **कुलिस** (कुलिश)=हीरा; यह श्वेत रंगका रत्न है। **पिरोजा** (फीरोजा)=हरापन लिये हुए नीले रंगका एक रत्न। **चीरि**=चीरकर। बीचसे आरी आदिद्वारा दो फाँक करना चीरना कहलाता है। **कोरि**=कोलकर, खरोदकर। गहराईतक रेती आदिसे करोदकर वा खोद-खोदकर बीचका भाग निकाल डालना कोरना वा कोड़ना कहलाता है। **प्रसंगा**=सहारे; संचारसे, संगति या सम्बन्धसे।

अर्थ—माणिक्य, मरकत, कुलिश और फीरोजाको चीरकर और कोलकर (अर्थात् दलका आकार बनाकर) तथा उसमें पच्चीकारी करके कमल बनाये॥ ४॥ भौंरे और बहुत रंगके पक्षी बनाये जो पवनके संचारसे गुंजार करते और चहचहाते हैं॥ ५॥

टिप्पणी—१ '*मानिक मरकत*……' इति। (क) संत श्रीगुरुसहायलालजी कहते हैं कि कमल चार प्रकारके होते हैं, लाल, नीले, पीले और श्वेत। यथा—'*बालचरित चहुँ बंधुके बनज बिपुल बहुरंग।*' (१। ४०) (१। ४० में इसपर विस्तारसे लिखा गया है वहाँ देखिये)। वैसे ही यहाँ माणिक्य (लाल), मरकत (नीलम), कुलिश (श्वेतमणि, हीरा) और फीरोजा (पीत) चार रंगके रत्न हैं। पं० रामकुमारजीने भी '*पिरोजा*' को पीत रंगका मणि मानकर चार प्रकारके कमलोंका बनाना लिखा। और फिर लिखा है कि 'अथवा, कमल तीन प्रकारके बनाये अर्थात् माणिक्य, मरकत और हीरेके बनाये। अमरकोशमें कमल तीन प्रकारके लिखे हैं—नीलोत्पल, पुण्डरीक और कल्हार। ('*छंद सोरठा सुंदर दोहा। सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा॥*' (१। ३७। ५) में छन्द, सोरठा और दोहा कहकर तीन रंगके कमलोंका उल्लेख किया गया है)। और सभी कमलोंके ऊपरकी पंखड़ियाँ (जो हरी होती हैं) फीरोजेकी बनायी गयीं; क्योंकि पंखड़ियोंका रंग फीरोजके रंगसे मिलता है (इसमें नीलेपनके साथ हरापन भी होता है)। (ख) केलेके फूल पद्मरागसे बनाये और कमलके फूल माणिक्यसे बनाये, क्योंकि दोनोंकी ललाईमें भेद है। (ग) कमल पुरइनसे फूलता है, पर यहाँ पुरइनसे कमलको नहीं फुलवाया। कारण कि पुरइनकी गिनती मङ्गलद्रव्योंमें नहीं है, और पानकी गणना मङ्गलोंमें है, यथा—'*पान पूगफल मंगलमूला।*' (१। ३४६) और यहाँ मङ्गलका ही प्रकरण है, मण्डपमें केवल मङ्गल पदार्थोंका वर्णन हो रहा है। केला, पान और फूल ये सब मङ्गल-द्रव्य हैं। इन्हीं विचारोंसे पुरइनकी चर्चातक नहीं की गयी। पानोंमेंसे ही कमल फुलवाये गये। यह भी कोई लख नहीं पाता।

टिप्पणी—२ '*किए भृंग*……' इति। (क) कमल कहकर अब कमलके स्नेहियोंको कहते हैं। भ्रमर और जलपक्षी कमलके स्नेही हैं, यथा—'*बालचरित चहुँ बंधु के बनज बिपुल बहुरंग। नृप रानी परिजन सुकृत मधुकर बारि बिहंग॥*' (४०) इत्यादि। भृङ्ग बहुत रंगके नहीं होते, पर विहंग बहुत रंगके होते हैं, इससे '*बहुरंग*' का अन्वय '*बिहंग*' के साथ होगा। कमल फूलके पश्चात् 'भृङ्ग, विहंग' को कहनेसे पाया गया कि जलपक्षी बनाये गये, क्योंकि ये ही कमलके स्नेही हैं। हंस आदि विहंग बनाये गये हैं। (ख) कमलके बनानेमें माणिक्यादिका उल्लेख किया गया, पर भृङ्ग और विहंगोंके बनानेमें मणियोंके नाम नहीं लिखे। पता नहीं लगता कि किस वस्तुके भृङ्ग और विहंग बनाये गये, प्रसङ्गसे इनकी रचना समझी जा सकती है। जैसे ऊपर कहा था—'*तेहिके रचि पचि बंध बनाये*' वैसे ही यहाँ भी समझना चाहिये कि जो पूर्व कहा था कि '*मानिक मरकत कुलिस पिरोजा*' इन मणियोंसे कमल बनाये गये। उन्हींसे अनेक रंगके पक्षी और भ्रमर भी बनाये गये। ये ऐसे विचित्र बने हैं कि उनमें न कुञ्जी लगानेकी जरूरत न कल या पेंच घुमाने-कसने इत्यादिकी, वे केवल वायुके संचारसे ही चलते हैं; इसीसे साक्षात्

भृङ्ग और पक्षियोंका भ्रम होता है, यह नहीं जान पड़ता कि बने हुए हैं। यदि कुञ्जी लगाने, चाबी देने आदिसे भ्रमर गुंजार और पक्षी कूज करते तो प्रकट हो जाता कि ये कृत्रिम हैं।

सुर प्रतिमा खंभन्ह गढ़ि काढ़ीं। मंगल द्रब्य लिये सब ठाढ़ीं॥ ६॥
चौकैं भाँति अनेक पुराईं। सिंधुरमनि मय सहज सुहाईं॥ ७॥
दो०—सौरभ पल्लव सुभग सुठि किए नीलमनि कोरि।
हेम बौरु मरकत घवरि लसति पाटमय डोरि॥ २८८॥

शब्दार्थ—**प्रतिमा**=मूर्तियाँ। **गढ़ि**=गढ़कर। काट-छाँट करके सुडौल बनाना, रचना या सुघटित करना 'गढ़ना' है। **काढ़ी**=निकालना, रचना। **द्रब्य**=पदार्थ। **चौकैं**=मङ्गल अवसरोंपर आँगन या और किसी समतल भूमिपर आटे, अबीर आदिके रेखाओंसे बना हुआ चौखुंटा क्षेत्र जिसमें कई प्रकारके खाने और चित्र बने रहते हैं, इसके ऊपर देवताओंका पूजन होता है। **पुराई**=बनायीं। चौकोंका बनाना 'पूरना' कहा जाता है। **सिंधुरमनि**=गजमुक्ता। **सौरभ**=आम। **बौरु**=आमकी मंजरी। **घवरि**=घौर, घौद, फलोंका गुच्छा। **पाट**=रेशम।

अर्थ—खम्भोंमें देवताओंकी मूर्तियाँ गढ़कर निकाली गयी हैं। वे सब मूर्तियाँ सब मङ्गल-पदार्थ लिये खड़ी हैं॥ ६॥ अनेक प्रकारकी चौकें पुरायी गयीं जो गजमुक्तामय और सहज ही सुन्दर हैं॥ ७॥ नीलमको कोलकर अत्यन्त सुन्दर आमके पत्ते बनाये, सोनेकी बौर, पन्नाके घौर वा गुच्छे रेशमकी डोरसे बँधे हुए शोभा दे रहे हैं॥ २८८॥

टिप्पणी—१ *'सुर प्रतिमा खंभन्ह ······'* इति। (क) चौ० ५ तक मण्डपके ऊपरी भागका वर्णन किया। अब यहाँसे नीचेका वर्णन करते हैं। मङ्गल वस्तु केला-पानादि कहकर अब मङ्गलकी मूर्तिको कहते हैं। देवता मङ्गलकी मूर्ति हैं। (ख)—मङ्गल वस्तु मङ्गलहीसे निकलती है। केला माङ्गलिक है अतः केलेके स्तम्भों (खम्भों) में ही गढ़कर मङ्गलमय देवताओंकी मूर्तियाँ निकालीं, तात्पर्य कि मङ्गल वस्तुसे देवताओंकी मूर्तियोंका आविर्भाव हुआ जो मङ्गल-द्रव्य लिये खड़ी हैं। ये मङ्गलद्रव्य साक्षात् (सचमुचके) नहीं हैं (साक्षात् सचमुचके होते तो विवाहके समयतक सब सूख जाते, अतएव ये भी मणियोंके बनाये हुए कृत्रिम हैं पर ऐसे हैं कि लख नहीं पड़ते, पहचाने नहीं जाते)। (ग) मङ्गल-द्रव्य; यथा—*'हरद दूब दधि पल्लव फूला। पान पूगफल मंगलमूला॥ अच्छत अंकुर लोचन लाजा। मंजुल मंजरि तुलसि बिराजा॥'* (१। ३४६) (मङ्गल-द्रव्य थालोंमें सजाये हाथोंपर लिये हुए हैं, यथा *'कनक थार भरि मंगलन्हि कमल करन्हि लिये मात।'* (३४६)। (घ) *'ठाढ़ी'* इति। खड़ी हुई प्रतिमा बनानेका भाव यह है कि श्रीरामचन्द्रजी इस मण्डपमें आयेंगे, उस समय उनके आगमनपर सबको उठकर खड़ा होना चाहिये। (यदि ये चैतन्य रहते तो ये भी उठकर खड़े हो जाते। पर पत्थरमें गढ़ी हुई प्रतिमा कैसे उठेगी और न उठ सकनेसे उसका धर्म जायगा तथा सब लोग जान जायँगे कि ये कृत्रिम हैं) इसीसे खड़ी हुई प्रतिमाएँ बनायीं। बैठी बनाते तो अनुचित होता और उस अनौचित्यका दोष बनानेवालोंके सिर मढ़ा जाता।—खड़ी बनानेसे गुणियोंकी सुजानता प्रकट होती है।

टिप्पणी—२ *'चौकैं भाँति अनेक पुराईं।·······'* इति। (क) अन्य वस्तुओंमें मणियाँ अनेक प्रकारकी हैं, कदलीमें सुवर्ण, हरितमणि और पद्मराग; बाँसोंमें हरितमणि; बन्धनमें सुवर्ण और मुक्ता; कमलमें माणिक्य, मरकत, कुलिश और फीरोजा; भृङ्गमें नीलमणि, पीतमणि; पक्षी जितने रंगके उनमें उतने ही प्रकारके मणि; और सुरप्रतिमाओंमें अनेक प्रकारकी मणियाँ देहमें, दाँतोंमें, नेत्रोंमें, नखों इत्यादि अङ्गोंमें हैं। परंतु चौकोंमें केवल गजमणि हैं। चौकें अनेक हैं और जितनी हैं उतने ही प्रकारकी हैं, पर हैं वे सब गजमुक्ताहीकी। यहाँ गजमुक्ताका ही नियम किये जानेसे यह पाया गया कि गजमुक्ता सब मुक्ताओंसे श्रेष्ठ है। पुनः (चौकें श्वेत पूरी जाती हैं) केवल गजमुक्ताकी चौकें कहकर जनाया कि सब चौकें श्वेत हैं। (ख)—*'सहज सुहाईं'* कथनका भाव कि अनेक प्रकारकी मणियोंका कोई प्रयोजन नहीं है, स्वच्छ मुक्ताओंकी चौकें स्वयं अपनेहीसे शोभित हैं, वे अपनी शोभाके लिये अन्य मणियोंकी सहायता नहीं चाहतीं।

टिप्पणी—३ *'सौरभ पल्लव·······'* इति। (क) इसका अन्वय आगेके *'रचे रुचिर बर बंदनवारे'* तक है। पल्लव, बौर, घौर और डोरी बनाकर उनके बन्दनवार बनाये गये। (ख)—[*'किए'* क्रिया चारों वस्तुओंके साथ है। यहाँ आमका 'सौरभ' नाम दिया, क्योंकि इनको न जाने कैसे बनाया है कि इनमेंसे, *'सुरभि'* सुगंध भी निकल रही है] पल्लव, बौर और घौरमें सुगन्ध है। *'सुरभि'* (सुगन्ध) के भावका नाम *'सौरभ'* है। [(१) 'कृत्रिम फूलोंमें सुगन्ध पैदा करना किसीको भी असम्भव है, अतः *'सौरभ'* शब्दसे यह भाव निकालना क्लिष्ट कल्पना है।' ऐसी शङ्काओंका समाधान करनेके लिये ही कविने आगे स्वयं कह दिया है—*'बसइ नगर जेहि लच्छि करि कपट नारि बर बेषु। तेहि पुरके सोभा कहत सकुचहि सारद सेषु॥'* (२८९) श्रीसीताजी प्रत्यक्ष *'जग जननि जानकी'*, *'आदि सक्ति जेहि जग उपजाया'*, ब्रह्मसे अभिन्न उनकी परम शक्ति हैं। जब वे यहाँ निवास कर रही हैं तब क्या असम्भव है? (२) मार्गशीर्ष मासमें विवाह होनेको था। उस ऋतुमें आम्रमञ्जरीका निकलना हिमालय तलहटीमें यद्यपि असम्भव है तथापि जहाँ *'बसंत रितु रही लोभाई।'* (२२७। ३) वहाँ तो ऐसा होना सम्भव ही नहीं बल्कि योग्य ही है। वसन्त-ऋतुके प्रारम्भमें ही आम्रकुसुमप्राशनकी विधि है। इसीसे तो *'निज करनी कछु कतहुँ न देखी'* यह स्थिति विधिकी हो जाती है। (प० प० प्र०)। शंकाकार विचार करें कि आजसे ४० वर्ष पूर्व जो अपने पूर्वजोंको मूर्ख कहते थे और विमानों, अग्निबाणों, चन्द्रलोकादिको जाना इत्यादि कपोलकल्पित समझते थे, आजकलके प्रारम्भिक विज्ञानने उनकी आँखें खोल दीं। (३) *'सौरभ'* शब्द देकर प्रत्येक पत्तेके बगलमें आमके पुष्पोंके गुच्छोंका होना जनाया। इनकी डंडी पीली होती है, वह कनककी बनायी गयी। (प० प० प्र०)] (ग)—बन्दनवार पल्लवके होते हैं और पल्लव नीला होता है, इसीसे पल्लव नीलमणिके बनाये। *'सुभग सुठि'* कहकर जनाया कि पत्तोंके बनानेमें बड़ी कारीगरी की गयी है। बौर पीत होता है, इसीसे उसे सुवर्णका बनाया। फलोंका घौर नीले रंगका होता है, इसीसे वे मरकतमणिके बनाये गये। (मरकतसे पन्ना समझना चाहिये।)

आमके पत्ते तो हरे होते हैं, यहाँ नीले कैसे कहा? बात यह है कि जिस पल्लवाग्रसे आम्रकुसुम-मञ्जरी निकलती है उसमेंसे नये पत्ते नहीं निकलते। वे पत्र कम-से-कम एक वर्षके पुराने होनेपर श्यामवर्ण होते हैं और 'श्याम' शब्दके लिये 'नील' शब्दका प्रयोग मानसमें ही उपलब्ध है। यथा—*'नील पीत जलजाभ सरीरा।'*, *'श्याम तामरस दाम सरीरम्'*, *'केकीकण्ठाभनीलम्'*, *'तनु घनस्यामा'*, *'नील नीरधर श्याम।'* गहरे हरे वर्णक होनेसे उनमें श्यामवर्णकी छटा झलकती है। [*'सौरभ पल्लव·······'* यह वर्णन कविकी सूक्ष्मदृष्टि-निरीक्षणका सूचक है (प० प० प्र०)]

रचे रुचिर बर बंदनिवारे। मनहुँ मनोभव फंद सँवारे॥ १॥
मंगल कलस अनेक बनाए। ध्वज पताक पट चमर सुहाए॥ २॥
दीप मनोहर मनिमय नाना। जाइ न बरनि बिचित्र बिताना॥ ३॥

शब्दार्थ—**बन्दनिवारे** (वन्दनवार)=फूल, हरे पत्तों, दूब आदिकी वह माला जो मङ्गलोत्सवोंके समय द्वार आदिपर लटकायी जाती है। **फंद**=फन्दा, फँसानेका जाल। **चमर** (चँवर, चामर)=सुरा गायकी पूँछके बालोंका गुच्छा जो काठ, सोने, चाँदीकी डाँड़ीमें लगा रहता है। यह देवताओं या रईस, राजाओं और दूलहके सिरपर डुलाया जाता है।

अर्थ—सुन्दर उत्तम श्रेष्ठ वन्दनवार बनाये गये (जो ऐसे जान पड़ते हैं) मानो कामदेवने फन्दे सजाये हैं॥ १॥ अगणित मङ्गल कलश और सुन्दर ध्वजा, पताका, पाटाम्बर और चँवर बनाये॥ २॥ (उसमें) अनेकों सुन्दर मणिमय मनके हरनेवाले दीपक (बने) हैं। उस विचित्र मण्डपका वर्णन नहीं किया जा सकता॥ ३॥

टिप्पणी—१ *'रचे रुचिर बर बंदनिवारे।·······'* इति। (क) ऊपर दोहेमें पल्लव, बौर, घौर और डोरका

बनाना कहा, अब यहाँ उनके बनानेका प्रयोजन कहते हैं कि इन सबोंके वन्दनवार बनाये। (*'रचे'* से जनाया कि पत्ते दो-दो हैं उन्हींके बीचमें कहीं बौर लगाये हैं और कहीं घौर तथा कहीं फल लगे हैं), पल्लव, बौर और रेशमकी डोरमें पंक्तिसे बाँधकर मण्डपके चारों ओर घेरा देकर बाँधे गये हैं। (ख) *'मनहुँ मनोभव फंद सँवारे'* इति। आम कामका बाण है, इसीसे आमके पल्लव, बौर और घौरको कामका फंदा कहा। *'फंद सँवारे'* कहकर जनाया कि चारों ओर घेरा देकर बन्दनवार बाँधे गये हैं, क्योंकि फन्दा चारों ओरसे लगा रहता है। फन्दा (जाल) पक्षी आदिके फाँसनेके लिये बनाये जाते हैं। यहाँ किसको फाँसना है? यह *'मनोभव'* शब्द देकर सूचित कर दिया है; अर्थात् मनको फन्देसे (फाँसकर) बाँधता है। *'मनहुँ मनोभव फंद सँवारे'* (मानो कामदेवने फन्दे सँवारे हैं) कहनेका तात्पर्य यह कि बन्दनवार अत्यन्त सुन्दर है, जो कोई देखता है, उसका मन बँध (फँस) जाता है, देखनेवाले मुग्ध हो एकटक देखने लगते हैं, उनके मन हर जाते हैं, यथा—*'मंडप बिलोकि बिचित्र रचना रुचिरता मुनि मन हरे।'* (३२०) जब मुनियोंके ही मन हर जाते हैं तब साधारण मनुष्योंकी तो बात ही क्या? (ग) जब श्रीअयोध्याजीकी सजावट कही गयी है तब वहाँ *'मंजुल मनिमय बंदनिवारे। मनहुँ पाकरिपु चाप सँवारे॥'* (३४७। ३) ऐसा कहा है, और यहाँ बंदनवारको *'मनोभव फंद'* कहा है। यह भेद भी सहेतुक है। श्रीअयोध्याजीकी सजावटमें वर्षाका रूपक बाँधा गया है, यथा—*'धूप धूम नभु मेचकु भयेऊ। सावन घन घमंडु जनु ठयेऊ॥'''''''' ।'* (३४७। १) इसीसे वहाँ बन्दनवारको इन्द्रधनुषकी उपमा दी। और यहाँ शोभावर्णनका प्रकरण है, इसलिये यहाँ कामके फन्देकी उपमा दी। (शोभाहीसे सबके मन वशीभूत हो जाते हैं)।

टिप्पणी—२ *'मंगल कलस अनेक''''''''* इति। (क) ताँबे, पीतल, चाँदी, सोने आदि सभी धातुओंके कलश (घट) होते हैं। पर जिनमें गणेशादि मङ्गल देवताओंकी स्थापना हो और पल्लव, यव आदि रखे होवें, वे 'मङ्गल कलश' कहलाते हैं। पूर्व कह चुके कि *'चौकैं भाँति अनेक पुराईं'* और प्रत्येक चौकमें कलश रखे जाते हैं। अतः कलश भी अनेक बनाये। *'मंगल'* विशेषण ध्वज, पताका आदि सभीके साथ है। क्योंकि इन सबोंकी गणना मङ्गल-रचनामें है। यथा—*'तदपि प्रीति कै रीति सुहाई। मंगल रचना रची बनाई'* ॥ ६। *ध्वज पताक पट चामर चारू। छावा परम बिचित्र बजारू* ॥ ७। *कनक कलस तोरन मनि जाला। हरद दूब दधि अच्छत माला* ॥ ८। *मंगलमय निज निज भवन लोगन्ह रचे बनाइ। बीथीं सींचीं चतुर सम चौकें चारु पुराइ॥'* (२९६) इत्यादि। (ख) *'पट'* से ध्वजा और पताकाके वस्त्र अभिप्रेत हैं। *'चमर'* सोनेके हैं, इसीसे *'सुहाए'* हैं। (ग) *'सुहाए'* विशेषण भी सबका है। कलश भी *'सुहाए'* हैं, यथा—*'छुहे पुरट घट सहज सुहाए। मदन सकुन जनु नीड़ बनाए॥'* (३४६। ६) ये सब सोनेके हैं और उनमें माङ्गलिक मूर्तियाँ आदि गढ़ी हुई हैं।

टिप्पणी—३ *'दीप मनोहर मनिमय नाना।''''''''* इति। (क) *'नाना'* (अनेक) दीपकोंका बनाया जाना कहकर जनाया कि दीपावली धरी है। (प्रत्येक कलशपर एक-एक दीपक रहता ही है और कलश अनेक हैं, अतः दीपक भी अनेक हैं। फिर ऊपर और नीचे भी मण्डपके चारों ओर दीपावली है। कलशके पास नीचे भी दीपक रखा जाता है)। (ख) *'मनोहर'* हैं, अर्थात् उनमें बड़ी कारीगरी की है। (ग) श्रीजनक महाराजने विचित्र वितान बनानेकी आज्ञा दी थी, उसका यहाँतक वर्णन हुआ। अब इति लगाते हैं। *'रचहु बिचित्र बितान बनाई।'* (२८७। ६) उपक्रम है और *'बरनि न जाइ बिचित्र बिताना'* पर उसका उपसंहार है। (घ) वितानका वर्णन तो कर ही दिया गया, वर्णन करनेसे रह ही क्या गया जिसके लिये कहते हैं कि *'जाइ न बरनि ?'* उत्तर यह है कि यहाँ जो कुछ वर्णन हुआ वह तो केवल कुछ वस्तुओंका बनानामात्र है, जो वस्तुएँ बनीं उनका नाममात्र यहाँ लिखा गया है। (कि अमुक मङ्गल पदार्थ बना और किसी-किसी पदार्थके विषयमें यह भी कह दिया कि वह अमुक वस्तुसे बनाया गया), वस्तुका बनाव नहीं कह सके। एक-एक वस्तुमें जो कारीगरीका काम किया गया है, यदि उसका वर्णन करें तो वह

स्वतः एक भारी ग्रन्थ हो जाता। (जैसा वह मण्डप रचा गया है, जैसी उसकी शोभा है, वह अकथनीय है)। *'बिचित्र बितान'* कहकर वर्णन न हो सकनेका यह भी एक हेतु बताया।

जेहि मंडप दुलहिनि बैदेही। सो बरनै असि मति कबि केही॥ ४॥
दूलहु रामु रूप गुन सागर। सो बितानु तिहुँ लोक उजागर॥ ५॥

अर्थ—जिस मण्डपमें विदेहनन्दिनी श्रीजानकीजी (दुलहिनरूपसे विराजनेवाली) हैं, उसका वर्णन करें, ऐसी बुद्धि किस कविकी है? (किसीकी भी ऐसी बुद्धि नहीं है)॥ ४॥ जो मण्डप रूप और गुणके समुद्र दूलह श्रीरामचन्द्रजीका है। (जिसमें वे दूलहरूपसे विराजेंगे), वह तो तीनों लोकोंमें विख्यात है एवं त्रैलोक्यसे अधिक प्रकाशमान है, तथा तीनों लोकोंका प्रकाशक है, तीनों लोक प्रकाश्य हैं॥ ५॥

टिप्पणी—१ *'जेहि मंडप दुलहिनि·········'* इति। (क) वितानके वर्णन न हो सकनेका एक हेतु ऊपर बताया कि वह विचित्र है (लोकोत्तर है, अलौकिक है), अब यहाँ दूसरा हेतु बताते हैं कि *'जेहि मंडप···'*। [(ख)—*'बैदेही'* कहनेका भाव कि ये विदेहराजके सुकृतोंकी मूर्ति हैं, यथा—*'जनक सुकृत मूरति बैदेही॥······· इन्ह सम कोउ न भयेउ जग माहीं। है नहिं कतहूँ होनेउ नाहीं॥'* (३१०) अतः इनका मण्डप भी सुकृतमूर्तिके अनुकूल ही लोकोत्तर ही हुआ चाहे।] (ग)—*'सो बरनै असि मति कबि केही।'* इति। *'बरनि न जाइ बिचित्र बिताना'* कहकर कविने प्रथम अपना असामर्थ्य दिखाया, अब समस्त कवियोंकी असमर्थता दिखाते हैं। अर्थात् हम ही नहीं कह सकते हों सो बात नहीं है, कोई भी कवि नहीं कह सकता। (घ) *'असि मति'* का भाव कि मति (बुद्धि) श्रीजानकीजीके देनेसे मिलती है, यथा—*'जनकसुता जग जननि जानकी। अतिसय प्रिय करुना निधान की॥'* (७) *ताके जुग पद कमल मनावउँ। जासु कृपा निर्मल मति पावउँ॥'* (१। १८) जब श्रीजानकीजी जिस कविको मति दें तब वह वर्णन करे। ऐसा कौन कवि है जिसे इस वितानके वर्णन करनेकी बुद्धि मिली हो। (अर्थात् किसीको भी नहीं मिली। इसीसे किसी संस्कृत या भाषाके ग्रन्थमें मण्डपका वर्णन नहीं मिलता। यदि कहीं कुछ मिले तो वह श्रीजानकीजीकी देन होगी।) पुनः भाव कि मतिकी देनेवाली श्रीवैदेहीजी हैं; उस बुद्धिसे जगत्का वर्णन हो सकता है, वैदेहीके मण्डपका वर्णन नहीं हो सकता। जैसे, नेत्रके प्रकाशसे जगत् देख पड़ता है, नेत्र नहीं देख पड़ता। (ङ) श्रीगोस्वामीजीको 'मति' श्रीजानकीजीसे मिली, उसी बुद्धिसे उन्होंने यत्किंचित् उसका वर्णन किया है।

रा० च० मिश्र—*'असि मति कबि केही'* अर्थात् वर्णन तब होगा जब देहाध्यासरहित मति हो। किंच जब ऐसी मति होगी तब वक्तृता कैसे बनेगी ? अतः वैखरी वाणीमें नहीं किन्तु पश्यन्तीद्वारा विचारशक्तिमें अनुभव होता है।

टिप्पणी—२ *'दूलहु रामु·······'* इति। (क) श्रीजनकपुरमें श्रीजानकीजीकी प्रधानता है। (कन्याके पिताके यहाँ कन्याकी प्रधानता होती ही है, इसीसे प्रथम वैदेहीके मण्डपको कहा और) इसीसे प्रथम वैदेहीको दुलहिन कहा तब श्रीरामजीको दूलह कहा। [*'टूटत ही धनु भएउ बिबाहू'* के अनुसार वैदेहीजी अब दुलहिन हो गयीं। शक्तिका नाम शक्तिमान्के पूर्व लिखनेकी शास्त्रविधि है ही। (प० प० प्र०) दूसरे ये तो रात-दिन वहाँकी खेलनेवाली हैं, अतः इन्हींको पहले कहा।] (ख)—*'रूप गुन सागर'* इति। [उजागरता दो प्रकारसे हो सकती है—रूपसे या गुणसे। सो ये दोनोंके सागर हैं तो फिर भला जिस मण्डपमें ये हों उसके उजागर होनेमें क्या आश्चर्य? अतः पहले *'रूप गुन सागर'* कहकर तब *'उजागर'* कहा। मण्डपका पूरा स्वरूप यहाँ वर्णन हुआ। क्योंकि यदि सब कह जाते और दूलह-दुलहिनिको न कहते तो मण्डप बिना उसके अधिष्ठातृ देवताके किस कामका होता। (मा० पी० प्र० सं०)] ☞(ग) *'सो बितानु तिहुँ लोक उजागर'* इति। *'उजागर'* (सं० उद्=ऊपर; अच्छी तरह। जागर=जाज्वल्यमान, प्रकाशित, जलता हुआ—'उद्बुद्ध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहीथ')=सर्वोपरि प्रकाशमान।=जगमगाता हुआ।—विख्यात। यथा—*'सोइ बिजई बिनई गुन सागर। तासु सुजसु त्रैलोक उजागर।'* (५। ३०)] मण्डपके न वर्णन हो सकनेका एक हेतु

यहाँ कहा कि इस मण्डपमें श्रीराम-जानकीजीका प्रभाव है। (जो समस्त जगत्के प्रकाशक हैं, जब वे ही वहाँ विराजमान हैं तब वह मण्डप त्रैलोक्य-उजागर क्यों न हो? प्रकाश्य भला प्रकाशकका वर्णन कैसे कर सकता है?) [श्रीरामजीसे सम्बन्धित प्रत्येक वस्तु उन्हींके सदृश, पावन, रुचिर, मङ्गलमूल, सुहावनी होती है। प्रमाण मानसमें भरे पड़े हैं। यथा—*'रामपुर पावन' 'पावन पुरी रुचिर यह देसा' 'मंगलमूल लगन दिनु' 'मंगल मूल सगुन' 'रुचिर चौतनी सुभग सिर'* इत्यादि (प० प० प्र०)] (घ) मण्डपकी सुन्दरता कहकर बड़ाईकी शोभा कही—*'जेहि मंडप दुलहिनि········॥'* वितानकी शोभा कहकर अब वितानकी सफलता कहते हैं कि मण्डपतले श्रीसीताराम दुलहिन-दूलह हैं। इस कथनसे मण्डपकी पूर्ण शोभाका कथन हो गया। यथा—*'जेहि बिरंचि रचि सीय सँवारी। तेहि स्यामल बर रचेउ बिचारी॥'* (१ । २२३), *'राम सरिस बरु दुलहिनि सीता। समधी दसरथु जनकु पुनीता॥'* (१ । ३०४), *'गावहिं सुंदरि मंगल गीता। लै लै नाम राम अरु सीता॥'*

जनक-भवन कै सोभा जैसी। गृह गृह प्रति पुर देखिय तैसी॥ ६॥
जेहि तेरहुति तेहि समय निहारी। तेहि लघु लगहि* भुवन दसचारी॥ ७॥
जो संपदा नीच गृह सोहा। सो बिलोकि सुरनायक मोहा॥ ८॥

शब्दार्थ—तेरहुति=मिथिलापुरी; जनकपुर।

अर्थ—जैसी शोभा राजा जनकजीके महलकी है, वैसी ही (शोभा) नगरके प्रत्येक घर-घरमें देख पड़ती है॥ ६॥ जिसने उस समय मिथिलापुरीको देखा, उसे चौदहों भुवन तुच्छ लगते हैं॥ ७॥ जो सम्पत्ति (ऐश्वर्य) नीच (जातिवालों) के घरमें [वा, जिस सम्पदासे नीचका घर) शोभित है, उसे देखकर सुरेश इन्द्र (भी) मोहित हो जाते हैं॥ ८॥

टिप्पणी—१ *'जनक-भवन कै सोभा'* इति। (क) मण्डप बननेसे श्रीजनकजीके भवनकी शोभा अधिक हुई, इससे पाया गया कि घर-घर ऐसे ही मण्डप बने हैं। (ख)—*'गृह गृह प्रति·········'* इति। राजमहलकी शोभा कहकर उसी 'अहड' (पलड़े) से घर-घरकी शोभा 'जोख' (तोल) दी। *'देखिय'* कहनेका भाव कि जनकभवनकी शोभाके साथ-ही-साथ सबोंके भवनोंकी शोभा तैयार हो गयी, जैसी राजमहलकी शोभा वैसी ही घर-घरकी शोभा। जब जनकपुर सँवारा गया तब वहाँ भी मणियोंके मण्डप घर-घर बने, इसीसे जनकभवनकी ऐसी शोभा सबके घरमें देख पड़ी, नहीं तो जनकभवनके समान बड़े लोगोंके घर थे, यथा—*'सूर सचिव सेनप बहुतेरे, नृप गृह सरिस सदन सब केरे॥'* (२१४। ३) (ग)—श्रीराम जन्मोत्सवमें *'सर्बस दान दीन्ह सब काहू॥'* (१। १९४) वैसे ही श्रीजानकीजीके विवाहोत्सवमें *'जनकभवन कै सोभा जैसी। गृह गृह प्रति पुर देखिय तैसी॥'* कहकर दोनों उत्सव समान बताये।

नोट—१ पूर्व राजाने महाजनोंको जो आज्ञा दी थी कि *'नगर सँवारहु चारिहुँ पासा॥'* (२८७। ४) उसीको यहाँ चरितार्थ किया। आज्ञानुसार सब नगर सजाया गया। पूर्व श्रीरामचन्द्रजीके नगर-प्रवेशसमय कहा था कि *'सूर सचिव सेनप बहुतेरे। नृप गृह सरिस सदन सब केरे॥'* (२१४। ३) और इस समय सभीको एक-से कहे। श्रीजनकमहाराजके मण्डपको दूलह-दुलहिनि-सहित कहा है जो मण्डप घर-घर बने उन्हें व्यर्थ न समझना चाहिये; क्योंकि किसी-किसी रामायणमें ऐसा उल्लेख है कि जितने कुमार श्रीअयोध्याजीसे गये, उन सबोंका विवाह जनकपुरमें हुआ। इस बातको गोस्वामीजीने *'गृह गृह प्रति·······'* में गुप्त रूपसे जना दिया। (प्र० सं०)

टिप्पणी—२ *'जेहि तेरहुति·······'* इति। (क) 'जिसने ही देखा उसे' इसमें शंका होती है कि किसने चौदहों भुवन देखे हैं जिसे वे लोक तुच्छ लगे?' समाधान यह है कि विवाहसमय (ब्रह्मा-विष्णु-

* लाग—१७०४, १७२१, १७६२, छ०, को० रा०। १६६१ में मूलमें 'लगति' है पर हाशियेपर 'हि' है।

महेश और) इन्द्र (आदि समस्त लोकपाल) वहाँ उपस्थित हुए थे। इन्होंने चौदहों लोक देखे हैं (इन सबोंको लघु लगे)। इन्द्रको लघु लगना तो आगे उनके मोहसे स्पष्ट है—*'सो बिलोकि सुरनायक मोहा॥'* सब देवता भी देखकर मोहित हुए हैं, यथा—*'देखि जनकपुर सुर अनुरागे। निज-निज लोक सबहिं लघु लागे॥'* (१। ३१४। ४) (ख) *'भुवन दसचारी'*—भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्य—ये ऊपरके सात भुवन हैं और तल, अतल, वितल, सुतल, तलातल, धरातल और पाताल—ये नीचेके सात हैं। विशेष मा० पी० भाग १ दोहा २७ (१) में देखिये।

पं० प० प्र०—इस वर्णनसे सम्भव है कि पाठकोंको भ्रम हो जाय कि जनकपुरकी शोभा आदि अयोध्यापुरीकी शोभा आदिसे अधिक श्रेष्ठ थी, अतः दोनोंकी शोभाका मिलान यहाँ दिया जाता है।

श्रीजनकपुर	श्रीअयोध्यापुरी
जाइ न बरनि बिचित्र बिताना	*१ ध्वज पताक तोरन पुर छावा। कहि न जाइ जेहि भाँति बनावा॥*
रचना देखि····मन बिरंचि कर भूल	*२ सुर ब्रह्मादि सिहाहिं सब रघुबरपुरी निहारि।*
सो बिलोकि सुरनायक मोहा	*३ रचना देखि मदन मन मोहा*
निज निज लोक सबहिं लघु लागे	*४ सारद उपमा सकल ढढोरी। देत न बनहिं निपट लघु लागीं।*
सो बरनैं असि मति कबि केही	*५ सोभा दसरथभवन कै को कबि बरनै पार।*

☞इससे स्पष्ट है कि वर्णनकी धाराप्रवाहमें पड़कर बहते जाकर भी गोस्वामीजी कभी भी मर्यादाभङ्ग और अनौचित्य निर्माण करनेवाले नहीं ही हैं।

☞*'मन भूल'* से *'सिहाहिं'* में विशेषता है। इससे अधिक रमणीयता और ऐश्वर्य सिद्ध होता है। *'सुरनायक'* से *'मदन'* के मोहित होनेमें विशेषता है, क्योंकि सुरनायक तो प्राकृत पाञ्चभौतिक स्त्रियोंपर भी मोहित होनेवाला ठहरा; इसमें लुभानेवाला तो मदन ही होता है। वह मदन ही जहाँ मोहित हो गया तब आप ही बताइये कि किसकी मोहकता अधिक है? जनकपुरीमें *'लघु लागे'* है तो अयोध्यापुरीमें *'निपट लघु लागी'* है।

टिप्पणी—३ *'जो संपदा·······'* इति। (क) *'संपदा'* स्त्रीलिङ्ग है। यदि 'सोहा' को उसका विशेषण (क्रिया) करें तो 'सोही' होना चाहिये। 'सोहा' पुल्लिङ्गका विशेषण होता है और 'सोही' स्त्रीलिङ्गका। यथा—*'तरुन तमाल बरन तन सोहा', 'राच्छस कपट बेष तहँ सोहा'*—(ये पुलिङ्ग हैं)। *'पीत झीन झगुली तनु सोही' 'भरी प्रमोद मातु सब सोहीं', 'चकई साँझ समय जनु सोही'*—(ये स्त्रीलिङ्ग हैं) इसलिये यहाँ भी *'सोहा'* को गृहके साथ लेकर अर्थ करना चाहिये, उससे क्रियाकी असङ्गति मिट जाती है। 'जो संपदा नीचके घर शोभित है' ऐसा अर्थ करनेसे क्रियामें असङ्गति होती है। फिर यहाँ तो गृहकी शोभाके कथनका प्रकरण है—*'जनक-भवन कै सोभा जैसी। गृह गृह प्रति पुर देखिय तैसी॥'* अतः इन्द्रका घर देखकर ही मोहित होना अभिप्रेत है। (ख)—जनकजीके भवनको देखकर इन्द्रका मोहित होना न कहा, किन्तु नीचके घरको देखकर मोहित होना कहते हैं। इसमें तात्पर्य यह है कि यदि इन्द्रका श्रीजनकभवनको देखकर मोहित होना कहते तो उससे जनकपुरकी बड़ाई नहीं हो सकती। (राजमहलमात्रकी ही बड़ाई होती।) नीचके घरको देखकर मोहित होनेसे नगरभरकी बड़ाई हुई। अधिक अर्थात् जनकपुरका नीच भी इन्द्रसे अधिक ऐश्वर्यवाला है तब भला राजाकी सम्पदाकी कौन कह सके?

दो०—बसै नगर जेहि लच्छि करि कपट-नारि बर बेषु*।
तेहि पुर कै सोभा कहत सकुचहिं सारद सेषु॥ २८९॥

* भेष—१७०४

अर्थ—जिस नगरमें श्रीलक्ष्मीजी मानुषी स्त्रीका सुन्दर श्रेष्ठ कपट वेष बनाकर बसती हैं, उस नगरकी शोभा कहनेमें शारदा और शेष (भी) सकुचते (संकोच करते, लजाते) हैं॥ २८९॥

टिप्पणी—१ (क) *'जो संपदा नीच गृह सोहा। सो बिलोकि सुरनायक मोहा॥'* इसमें ऐश्वर्यके वर्णनमें अत्युक्ति पायी जाती है, उसकी निवृत्तिके लिये दोहेमें उसका समाधान करते हैं कि यहाँ अत्युक्ति नहीं है, क्योंकि *'बसै नगर·········।'* (ख) *'बसै नगर जेहि लच्छि'* का भाव कि इन्द्रके यहाँ तो लक्ष्मीके कटाक्षमात्रका विलास है (यथा—*'जासु कृपा कटाच्छ सुर चाहत चितव न सोइ।'* (७। २४) *'लोकप होहिं बिलोकत तोरें।'* (२। १०३) *'लोकप होहिं बिलोकत जासू।'* (२। १४०) और यहाँ तो साक्षात् श्रीलक्ष्मीजी वास कर रही हैं तब इन्द्रसे अधिक होनेमें कौन आश्चर्य है? जैसे सब देवताओंने अवतार लेकर श्रीरामजीकी सेवा की वैसे ही सब देवताओंकी शक्तियोंने अवतार लेकर श्रीजानकीजीकी सेवा की है, साक्षात् लक्ष्मीने 'नारी' का वेष बनाया है। यथा—*'सची सारदा रमा भवानी। जे सुरतिय सुचि सहज सयानी॥, कपट नारि बर बेष बनाई। मिलीं सकल रनिवासहिं जाई॥'* (१। ३१८) (ग) *'लच्छि'*—यहाँ लक्ष्मी या लच्छमी ऐसा स्पष्ट नाम न देकर *'लच्छि'* शब्द देनेका भाव यह है कि लक्ष्मीजी कपट वेष बनाकर गुप्त हैं, अपनेको छिपाये हुए हैं, प्रकट नहीं हैं, इसीसे गोस्वामीजीने भी प्रत्यक्ष 'लक्ष्मी' शब्द न रखकर *'लच्छि'* यह गुप्त शब्द रखा। (घ) *'करि'* इति। लोग जो संसारमें जन्म लेते हैं, वह कर्मवश होता है। यहाँ *'करि'* शब्द देकर कर्मवश अवतारका निषेध किया है। भाव कि इनका अवतार कर्मवश नहीं है, ये स्वतः आयी हैं, स्वयं ही श्रेष्ठ नारि-वेष बनाकर पुरमें निवास कर रही हैं। (ङ)—*'कपट बेष'* का भाव कि मानुषी रूप बनाये हुए हैं, कोई पहचान नहीं सकता कि ये लक्ष्मी हैं। [(च)—यहाँ अंशी-अंश-अभेदसे श्रीजानकीजीको लक्ष्मी कहा है, नहीं तो श्रीसीताजी तो *'उमा रमा ब्रह्मादि बंदिता'* हैं (७। २४), उनके अंशसे अगणित लक्ष्मियाँ उत्पन्न होती हैं, यथा—*'जासु अंस उपजहिं गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी॥'* (१। १४८) और उनके विषयमें तो सब वक्ताओंके वचन हैं कि *'कहिअ रमा सम किमि बैदेही।'* (१। २४७)]

नोट—१ माधुर्यके भीतर ऐश्वर्य छिपाये हैं,अतः *'कपट······'* कहा। मयंककार कहते हैं कि मानसमें विस्तृत कथा परात्पर ब्रह्म श्रीसीतारामजीकी है जो मनु-शतरूपाके समीप प्रकट हुए थे। जनकपुरमें वे ही सीता प्रकट हुई हैं जिनके अंशसे *'अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी'* उत्पन्न होती हैं, तब यहाँ *'लच्छि'* से लक्ष्मीका अर्थ ग्रहण करना असंगत है। लक्ष और वाच्य कारणतत्त्व और कार्यतत्त्वको कहते हैं। श्रीजानकीजी लक्षरूपा हैं और महालक्ष्मी इत्यादि वाच्यस्वरूपा हैं। अर्थ यह हुआ कि 'जिस नगरमें लक्षस्वरूप स्वयं जानकीजी ऐश्वर्यताको गूढ़ भावसे माधुर्यतामें छिपाकर प्राकृत स्त्रीरूपसे निवास करती हैं······।' बैजनाथजी यह अर्थ करते हैं कि 'सम्पदाकी करनेवाली लक्ष्मीजी (श्रीराम-जानकी-विवाह देखनेके लिये) ऋद्धि-सिद्धि आदि सब शक्तियोंसहित कपटसे श्रेष्ठ नारि-वेष बनाकर बसती हैं, यथा—*'सची सारदा रमा भवानी।'*······(१। ३१८) प्रज्ञानानन्द स्वामीजी लिखते हैं कि *'सची सारदा रमा'* आदि अभी आयी नहीं हैं। उनका आगमन तो विवाहके समय दोहा ३१८ में कहेंगे—*'मिलीं सकल रनिवासहिं जाई।'* यह घटना *'ब्रह्म बर परिछन'* के समय होनेवाली है। इससे प्रस्तुत दो० २८९ में श्रीसीताजीका ही ग्रहण पूर्वापर संदर्भसे सुसंगत है। मयंककारके मतसे मैं सहमत हूँ पर उन्होंने प्रमाण नहीं दिया है। *'बसै'* से स्पष्ट है कि मण्डप-रचनाके पूर्वसे महालक्ष्मी यहाँ हैं।'

टिप्पणी—२ (क) *'बर बेषु'* कहकर जनाया कि यह कपट-वेष लक्ष्मीजीसे भी सुन्दर है। (ख) *'सकुचहिं'* से जनाया कि कहनेकी इच्छा होती है पर अपार देख कहते नहीं बनता, सोचते हैं कि शोभा कहेंगे तो पार न पावेंगे और पार न पानेसे हमारी बड़ाई न रह जायगी। (ग) *'सारद सेषु'*—शारदा स्वर्गकी वक्ता हैं और शेषजी पातालके वक्ता हैं। मर्त्यलोकमें कोई गिनतीका वक्ता नहीं है। (अर्थात् शेष-शारदाकी गणना वक्ताओंमें है, ऐसे कोई वक्ता पृथ्वीतलपर नहीं जिनकी वक्ताओंमें गणना हो; उनके समान कोई नहीं है) अतएव दो ही कहे।

टिप्पणी ३—☞जैसे प्रथम मण्डपकी शोभा कही, फिर श्रीरामजीके निवासके सम्बन्धसे उसकी शोभा कही, वैसे ही जनकपुरके बनावकी शोभा कहकर यहाँ श्रीजानकीजीके निवासके सम्बन्धसे पुरकी शोभा कही।

श्रीजनकपुर-मण्डप-रचना आदि प्रसंग समाप्त हुआ।

श्रीराम-बारात-प्रसङ्ग

पहुँचे दूत रामपुर पावन। हरषे नगर बिलोकि सुहावन॥ १॥
भूप द्वार तिन्ह खबरि जनाई। दसरथ नृप सुनि लिए बोलाई॥ २॥

अर्थ—दूत श्रीरामचन्द्रजीके पवित्र (एवं पवित्र करनेवाले) नगरमें पहुँचे। सुन्दर नगर देखकर प्रसन्न हुए॥ १॥ उन्होंने (राजद्वारपरके द्वारपालोंद्वारा) राजदरबारमें खबर (सूचना) दी। श्रीदशरथ-महाराजने सुनकर उन्हें बुलवा लिया॥ २॥

टिप्पणी—१ *'पहुँचे दूत रामपुर·····'* इति। (क) *'रामपुर'* कहनेका भाव कि—(१) श्रीजनकपुरकी शोभाका वर्णन कर अन्तमें कहा कि *'बसइ नगर जेहि लच्छि·····'* अर्थात् श्रीजनकपुरकी शोभा जो कही गयी वह श्रीजानकीजीके सम्बन्धसे है; अंश-अंशीसे अभेद है। इसीसे यहाँ *'रामपुर'* शब्द देकर सूचित करते हैं कि श्रीअयोध्याजीकी शोभा श्रीरामजीके सम्बन्धसे है। इस तरह दोनोंका जोड़ मिलाया। अथवा (२) ये दूत श्रीरामजीके मङ्गलके लिये (तथा मङ्गल समाचार लेकर) आये हैं, अतः *'रामपुर'* नाम दिया। आगे श्रीदशरथजीके अमङ्गलके लिये जब सरस्वती आयीं तब दशरथजीके सम्बन्धसे *'दशरथपुर'* कहा है। यथा—*'हरषि हृदय दसरथ पुर आई। जनु ग्रह दसा दुसह दुखदाई॥'* (२। १२। ८) अथवा। (३) उपदेशके लिये *'रामपुर'* कहा। अर्थात् जो कोई रामचरित (कहता, सुनता या) धारण करता है वह *'रामपुर'* में पहुँच जाता है। ये दूत 'श्रीरामचरितकी पत्रिका लिये हुए हैं, इसीसे इनका *'रामपुर'* में पहुँचना कहा। अथवा [(४) दूत श्रीरघुनाथजीसे ही परिचित हैं, उनकी शोभा, वीरता आदि उनके हृदयमें गड़ी हुई है, इसीसे *'रामपुर'* नाम दिया (वै०)] (ख) *'पावन'* इति। श्रीअयोध्याजीमें अनन्त गुण हैं पर *'पावन'* गुण प्रधान है, इसीसे सर्वत्र (इनके सम्बन्धमें) *'पावन'* गुण लिखते हैं, यथा—*'बंदौं अवधपुरी अति पावनि।'* (१ । १६) *'जद्यपि अवध सदैव सुहावनि। रामपुरी मंगलमय पावनि।'* (१। २९६) *'राम धामदा पुरी सुहावनि। लोक समस्त बिदित अति पावनि॥'* (१। ३५) *'पुनि देखु अवधपुरी अति पावनि। त्रिबिध ताप भवरोग नसावनि॥'* (६। ११९) *'सुनु कपीस अंगद लंकेसा। पावन पुरी रुचिर यह देसा॥'* (७। ४) तथा यहाँ *'पहुँचे दूत रामपुर पावन।'* इसीसे पुरीके दर्शनमात्रसे पापका नाश होता है, यथा—*'देखत पुरी अखिल अघ भागा। बन उपबन बापिका तड़ागा॥'* (७। २९) अथवा यह श्रीरामजीका पुर है, इसीसे यह भारी तीर्थ है; तीर्थकी प्रशंसा 'पावनता' से है, अतः *'पावन'* कहा। (पावन 'पुर' का विशेषण है)। (ग) *'हरषे नगर बिलोकि सुहावन'* इति। जब *'रामपुर'* कहा तब *'पावन'* कहा और जब *'नगर'* कहा तब उसे *'सुहावन'* कहा। क्योंकि नगर सुन्दर होने चाहिये और तीर्थ पावन होना चाहिये। तीर्थका गुण पवित्रता है, नगरका गुण सुन्दरता है। [*'सुहावन'* नगरके साथ है। इससे शोभा दिखायी। क्योंकि तीर्थ पवित्र हों, पर यह जरूरी नहीं कि वे शोभायुक्त हों। तीर्थ खंडहर, जंगल पड़े रहनेपर भी पावन हैं पर उनसे नगर सुहावना नहीं लगता। यह पावन और सुहावन दोनों है। श्रीअवध शान्त और शृङ्गार दोनों रसोंसे परिपूर्ण है। महात्मा लोगोंसे, शान्तरससे परिपूर्ण और राजधानी होनेसे शृङ्गार-रस भरा है। पूर्वार्धमें *'पावन'* पद देकर शान्त-रस और उत्तरार्धमें *'सुहावन'* पद देकर शृङ्गाररससे पूर्ण दिखाया। दूतोंको हर्ष हुआ, ऐसा कहकर सूचित किया कि जनकपुरसे यहाँकी शोभामें विशेषता है। जिस जनकपुरकी शोभाको देखकर देवता चकित हो जाते हैं। यथा—*'मन बिरंचि कर भूल, बिधिहि भयेउ आचरजु बिसेषी', 'निज*

निज लोक सबहिं लघु लागे', 'सो बिलोकि सुरनायक मोहा'; वहाँके निवासी श्रीअवधपुरको देखकर हर्षित हो रहे हैं]। (घ) जैसे जनकपुरके सम्बन्धमें कहा कि *'पुर रम्यता राम जब देखी। हरषे अनुज समेत बिसेषी॥'*, वैसे ही श्रीअवधपुरीके सम्बन्धमें कहा कि ***'पहुँचे दूत रामपुर पावन। हरषे नगर बिलोकि सुहावन॥'*** (ङ) यहाँ पहुँचे *'हरषे' 'तिन्ह' 'लिए'* बहुवचन शब्द देकर जनाया कि कई दूत भेजे गये। वाल्मीकीयसे स्पष्ट है कि कई मन्त्री इस कामपर विश्वामित्रजीकी आज्ञा तथा शतानन्दजीकी सलाहसे भेजे गये थे, यथा—**'कौशिकस्तु तथेत्याह राजा चाभाष्य मन्त्रिणः। अयोध्यां प्रेषयामास धर्मात्मा कृतशासनान्।'** (१। ६७। २७) **'विश्वामित्राभ्यनुज्ञातः शतानन्दमते स्थितः।'**(१। ६८। १३)

टिप्पणी—२ *'भूपद्वार तिन्ह खबरि जनाई……।'* इति। (क) *'भूपद्वार'* में द्वारपर द्वारपाल रहते हैं, बिना आज्ञाके कोई भीतर जाने नहीं पाता, इसीसे सूचना देना, दूतोंके आगमनका समाचार देना कहा। 'द्वार'=दरबार, सभा। (ख) *'दसरथ नृप सुनि लिए बोलाई'* इति। खबर देनेवाले द्वारपालने किसी कामदार आदिसे नहीं कहा, राजसभामें जाकर सीधे महाराजजीसे समाचार कहा, इससे *'दसरथ नृप सुनि'* कहा। इससे पाया गया कि दूतोंने ऐसा कहा था कि हमारे आगमनकी खबर खास महाराजजीको देना। नहीं तो यह दरबार तो बहुत भारी है, बड़े-बड़े राजद्वारमें प्रवेश नहीं पाते, *'सुरपति बसइ बाँहबल जाके। नरपति सकल रहहिं रुख ताके॥'* (२। २५) तथा *'नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषे। लोकप करहिं प्रीति रुख राखे॥'* (२। २) भला उस महान् दरबारमें दूतोंके आनेका समाचार सीधे राजासे? दूसरा भाव यह भी हो सकता है कि उन्होंने कहा हो कि हम जनकपुरसे महर्षि विश्वामित्र एवं महाराज जनकके भेजे हुए पत्रिका (श्रीरामजीका समाचार) लेकर आये हैं। विश्वामित्रजीका ही नाम सुनकर भी (श्रीरामजीका समाचार लाये होंगे यह समझकर) द्वारपालने राजासे ही सीधे जाकर कहा हो यह सम्भव है, क्योंकि इससे राजाको बड़ा आनन्द होगा।

टिप्पणी—३ (क) *'दसरथ नृप सुनि लिए बुलाई'* यह चरण बुलानेकी शीघ्रता दरसा रहा है। खबर सुनते ही राजाने बुला लिया, विलम्ब न किया। (यहाँ लेखनीने भी शब्दोंमें कैसी शीघ्रता लक्षित की है! खबर देना और राजाका सुनना कहकर तुरंत दूतोंको बुला लेना लिखा, द्वारपालोंका लौटकर दूतोंसे कुछ कहनेका उल्लेख यहाँ नहीं किया। जैसे राजाने सुनते ही बुलाया वैसे ही ग्रन्थकारने भी शीघ्रता दिखानेके लिये बीचमें एक भी चरणका व्यवधान न किया। (ख) राजाका सिपाही दूतोंको साथ लिये जा रहा है, इसीसे ड्योढ़ीमें और किसीने न रोका। नहीं तो यह दरबार तो बहुत भारी है, बड़े-बड़े राजा प्रवेश नहीं पाते।

करि प्रनामु तिन्ह पाती दीन्ही। मुदित महीप आपु उठि लीन्ही॥ ३॥
बारि बिलोचन बाँचत पाती। पुलक गात आई भरि छाती॥ ४॥

शब्दार्थ—**पाती**=पत्रिका, चिट्ठी। **बाँचत**=पढ़ना। 'छाती भर आना' मुहावरा है। इसका अर्थ है 'प्रेमके आवेगसे हृदयका परिपूर्ण होना, प्रेमसे गद्गद हो जाना'।

अर्थ—प्रणाम करके उन्होंने पत्रिका दी। आनन्दित होकर राजाने स्वयं उठकर उसे ली॥ ३॥ पत्रिका पढ़तेमें दोनों नेत्रोंमें आँसू भर आये, शरीर पुलकित हो गया, छाती भर आयी। अर्थात् गद्गद हो गये। मुखसे वचन नहीं निकलता॥ ४॥

टिप्पणी—१ (क) *'करि प्रनामु तिन्ह पाती दीन्ही'*— यहाँ पत्रिकाका देनामात्र कहते हैं। कुछ हाल नहीं कहा गया। इससे जनाया कि अपना नाम, ग्राम इत्यादि पहले ही द्वारपालोंद्वारा कहला भेजा था (अब सामने आनेपर प्रणाम करके पत्रिका दे दी। कुछ महानुभावोंने गीतावलीके आधारपर यहाँ गुरु शतानन्दजी महाराजका पत्रिका लेकर आना लिखा है, पर *'करि प्रनामु'* से इसका निराकरण होता है)। (ख) *'मुदित'*—क्योंकि श्रीराम-लक्ष्मणजीका कोई समाचार अबतक न मिला था। [यथा—*'जब ते लै मुनि संग सिधाए। रामलषनके समाचार, सखि ! तब ते कछुअ न पाये।'……तुलसी आइ भरत तेहि औसर कही सुमंगल*

बानी॥' (गीतावली १ । १०१)] इसीसे पत्रिका देख आनन्दित हुए। (ग) *'आपु उठि लीन्ही'*—भाव कि राजाओंके प्रायः मन्त्री, कामदार आदि चिट्ठी लेते हैं और राजाको सुनाते हैं, ऐसी ही कोई खास और भारी चिट्ठी होती है कि जिसे राजा स्वयं लेते हैं। (राजा यहाँ वात्सल्यमें ऐसे पगे हुए हैं कि इतना भी विलम्ब न सह सके कि मन्त्री इत्यादि चिट्ठी लेकर उनको पहुँचाते। वे श्रीराम-लक्ष्मणजीके प्रेममें ऐसे पगे हैं, उनकी खबर पानेके लिये ऐसे लालायित और उत्कण्ठित हैं कि उन्होंने स्वयं उठकर पत्रिका ली। राज्यमर्यादाका उल्लङ्घन कर ही तो दिया ! प्रेमकी जय ! पं० रामकुमारजी लिखते हैं कि 'श्रीजनकको आदर देनेके निमित्त आप ही उठे।')

टिप्पणी—२ *'बारि बिलोचन बाँचत पाती……'* इति। (क) इन चौपाइयोंमें श्रीदशरथजी महाराजके प्रेमकी उत्कृष्ट दशा दर्शित की है। *'बाँचत'* क्रियासे सूचित होता है कि पूरी चिट्ठी न पढ़ पाये। *'छाती भर आई'* अर्थात् प्रेमसे विह्वल हो गये, हृदयमें प्रेम नहीं समाता, कण्ठ गद्‌गद हो गया। यह प्रेमकी दशा है। यथा—*'तासु दसा देखी सखिन्ह पुलक गात जल नयन। कहु कारन निज हरष कर……॥'* (२२८) (ख) यहाँ वक्ताओंको उपदेश है कि वे पुस्तक (श्रीरामचरितमानस, श्रीरामायणजी) का ऐसा आदर करें, जैसा राजाने पत्रिकाका आदर किया।—*'मुदित महीप आपु उठि लीन्ही।'* वक्ता ऐसा 'बाँचै' जैसे राजा 'बाँचते' है—*'बारि बिलोचन बाँचत पाती। पुलक गात आई भरि छाती॥'* जैसे प्रेमयुक्त हो श्रीरामचरित 'बाँचने' से राजाके हृदयमें श्रीराम-लक्ष्मण आ गये। (जैसा आगेके चरणमें कहते हैं) वैसे ही प्रेमी वक्ताके हृदयमें श्रीराम-लक्ष्मणजीका साक्षात्कार होगा। (रामचरित्रकी माधुरी और आकर्षकता ही ऐसी है कि कलियुगमें भी प्रेमी पाठकोंकी ऐसी ही दशा हो जाती है, तब श्रीदशरथजीकी यह दशा हुई तो कौन नयी बात है? प० प० प्र०)

राम लषन उर कर बर चीठी। रहि गये कहत न खाटी मीठी॥ ५॥
पुनि धरि धीर पत्रिका बाँची। हरषी सभा बात सुनि साँची॥ ६॥

शब्दार्थ—**खाटी मीठी**=बुरी-भली। यह मुहावरा है। **चीठी**=पत्रिका, चिट्ठी।

अर्थ—हृदयमें श्रीराम-लक्ष्मणजी हैं और हाथमें सुन्दर श्रेष्ठ पत्रिका है। (उसे हाथमें लिये) रह गये, बुरा-भला कुछ भी नहीं कहते॥ ५॥ फिर धीरज धारण करके उन्होंने पत्रिका पढ़ी। सत्य (सच्ची-सच्ची सब) बात सुनकर सब सभा प्रसन्न हुई॥ ६॥

टिप्पणी—१ *'राम लषन उर……'* इति। (क) जब *'बारि बिलोचन', 'पुलक गात आई भरि छाती',* यह अत्यन्त प्रेमकी दशा आयी तब श्रीराम-लक्ष्मणजी उरमें आये, यथा—*'प्रेम ते प्रगट होहिं……', 'प्रेम ते प्रभु प्रगटइ जिमि आगी॥'* (१। १८५) *'अतिसय-प्रीति देखि रघुबीरा। प्रगटे हृदय हरन भव भीरा॥'* (३। १७। १४) (ख) *'राम लषन उर'* इस कथनसे राजाके हृदयकी शोभा कही। (ग) *'कर बर चीठी'* —चिट्ठीको *'बर'* कहा क्योंकि इसमें श्रीरामजी तथा श्रीलक्ष्मणजीका समाचार लिखा है, उसमें दोनोंका चरित है। (घ) *'रहि गये'* के तीन कारण यहाँ दिखाये—एक तो *'बारि बिलोचन'* नेत्रोंमें जल भर आनेसे अक्षर न देख पड़े। दूसरे, *'छाती भरि आई',* इससे कण्ठ गद्गद हो गया, मुखसे वचन नहीं निकलता। तीसरे, *'राम लषन उर'* हृदयमें श्रीराम-लक्ष्मणजी आ गये, इससे देहकी सुध न रह गयी। स्तब्ध-से रह गये। *'बारि बिलोचन……छाती'* में प्रेमकी सब दशा कही पर वचनका बन्द होना न कहा था, उसे यहाँ *'रहि गये कहत न……'* में कहा। (ङ) *'राम लषन उर'* से हृदयकी, *'कर बर चीठी'* से हाथ (तन) की और *'रहि गये कहत न'* से वचनकी शोभा कही। अर्थात् राजा तन, मन, वचन तीनोंसे प्रेममें मग्न हो गये हैं। ['श्रीराम-लक्ष्मणजी उरमें हैं'—भाव कि मन और इन्द्रियरूपावलोकनमें लय हो गये। *'कर बर चीठी'* से जनाया कि दृष्टि पत्रिकामें लीन हो गयी। प्रेमपंकमें मन और दृष्टि ऐसे फँस गये कि वचन न निकला, स्थिर रह गये। (वै०)] (च) *'खाटी मीठी'* अर्थात् भली-बुरी कुछ न कहा। पत्रिकामें बुरी बात कोई नहीं है। लोकमें इस तरह बोलनेकी रीति है। गोस्वामीजीने वही लोकरीति लिखी।

नोट—१ *'खाटी मीठी'* के और भाव—(क) महाराज रघुराजसिंहजीका मत है कि ताड़का-वध, यज्ञ-रक्षा, अहल्या-उद्धार, धनुर्भङ्ग, परशुराम-पराजय और विवाह ये ही खट्टी-मीठी बातें हैं जो पत्रिकामें लिखी हैं।

(ख) बैजनाथजी लिखते हैं कि 'चिट्ठीमें समाचार बुरा है या भला है, कुछ मुँहसे न निकला। अथवा पत्रिकाके प्रत्येक समाचारमें खट्टी-मीठी दोनों ही बातें हैं। यथा—मार्गमें मुनिके साथ जाते हुए ताड़का क्रोधकर खानेको दौड़ी, यह खट्टी; और उसको एक ही बाणसे मारा, यह मीठी। पुनः 'यज्ञ-रक्षामें जब आप तत्पर थे तब *'सुनि मारीच निसाचर कोही। लेइ सहाय धावा मुनिद्रोही॥'* यह खट्टी और *'बिनु फर बान राम तेहि मारा', 'पावक सर सुबाहु पुनि जारा। अनुज निसाचर कटक सँघारा॥'* यह मीठी। पुनः *'आश्रम एक दीख मग माहीं। खग मृग जीव जंतु तहँ नाहीं॥'* ऐसे निर्जन वनमें *'गौतमनारी साप बस उपल देह'* में देखना यह खट्टी और उसका उद्धार यह मीठी। पुनः *'कहँ धनु कुलिसहु चाहि कठोरा। कहँ स्यामल मृदुगात किसोरा॥' 'रावन बान छुआ नहि चापा। हारे सकल भूप करि दापा॥ सो धनु राजकुँअर कर देहीं', 'गरुअ कठोर बिदित सब काहू'* और भी जैसा दूतोंने कहा है, यह खट्टी और *'लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े। काहु न लखा देख सब ठाढ़े॥ तेहि छन राम मध्य धनु तोरा'* अर्थात् सहजहीमें तोड़ डाला, यह मीठी। पुनः *'सुनि सरोष भृगुनायक आये। बहुत भाँति तिन्ह आँख देखाये॥'* यह खट्टी और *'कहि जय जय जय रघुकुल केतू। भृगुपति बनहि गये तप हेतू॥'* यह मीठी; कुटिल राजाओंका गाल बजाना खट्टी और *'अपभय सकल महीप डेराने'* यह मीठी और विवाहके लिये मुनिकी आज्ञा है कि आप भरत-शत्रुघ्न-सहित बरात लेकर आवें यह मीठी। इत्यादि हर्ष-विस्मयवश कुछ कह न सके।

पं० विजयानन्द त्रिपाठी—*'बारि बिलोचन·····मीठी·········साँची'* इति। अश्रु, पुलक और स्वरभङ्ग—ये तीनों सञ्चारी भाव हर्ष और शोक दोनोंमें होते हैं, अतः इससे हृदयगत भाव व्यक्त नहीं होता। नारदजीने जब हिमगिरि और मयनासे कहा कि *'जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल बेष। अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि परी हस्त असि रेख॥'* तब सबकी आँखोंमें आँसू आ गया, सबको पुलक हो गया। भेद इतना ही था कि जगदम्बाके नेत्रोंमें आनन्दाश्रु था, तथा और लोगोंको शोकाश्रु। इसीपर श्रीगोस्वामीजी कहते हैं—*'नारदहू यह भेद न जाना। दसा एक समुझब बिलगाना॥'* यहाँ चीठी पढ़नेमें चक्रवर्तीजीकी भी वही दशा हुई। राम-लक्ष्मणकी मूर्ति हृदयमें आ गयी, चीठी हाथमें रह गयी, आँखोंमें जल भर आया, शरीरमें पुलक हो गया, स्वरभङ्ग हो गया, चीठी पढ़ते-पढ़ते रुक गये। यहाँ *'खाटी मीठी'* से शोक-हर्ष अभिप्रेत है, यथा—*'मीठ कहा कवि कहैं जोहि जो भावै।'*

सभा असमञ्जसमें पड़ गयी ! राजकुमार बाहर गये हुए हैं—राक्षसोंसे युद्ध करने। कोई सच्चा समाचार उनका न मिला। इस चीठीमें कोई बात उनके सम्बन्धकी है क्या? महाराजकी दशा चीठी पढ़ते-पढ़ते कैसी हुई जा रही है, इत्यादि। चिन्तामें सभासद् पड़ गये। पत्र पढ़ते समय चक्रवर्तीजीका धैर्य छूट गया था। अतः बाँच नहीं सकते थे। पर सभाको असमञ्जसमें देखकर उन्होंने धैर्य धारण किया और चीठी पढ़ सुनायी; अतः सच्चा समाचार पाकर सभा हर्षित हुई।

प० प० प्र०—पत्रिका पढ़ते-पढ़ते राजाकी यह दशा देख सभा चिन्ता-सागरमें डूब गयी कि न जाने पत्रिकामें शुभ समाचार है या अशुभ। क्षण-क्षणपर हर्ष-विषादके भाव राजामें देखकर वे यह जाननेके लिये आतुर हो रहे हैं कि क्या बात है। सभासदोंकी यह दशा देख राजाके मनमें वैखरीसे बाँचनेकी इच्छा होती थी पर प्रेमने उनपर अपनी सत्ता ऐसी जमा दी थी कि वे पत्रिका हाथमें लिये हैं, प्रेमाश्रु बह रहे हैं, इत्यादि।

टिप्पणी—२ (क) *'धरि धीर····'* इति। भाव कि श्रीराम-लक्ष्मणजीका ध्यान हृदयमें आ जानेसे राजा विदेह हो गये थे, अब धीरज धरकर अर्थात् ध्यानको छोड़कर पत्रिका पढ़ी। तात्पर्य यह कि ध्यानकी अपेक्षा रामचरित अधिक प्रिय है—*'प्रभु ते प्रभु चरित पियारे'* (गीतावली १। ४४) यथा—*'मगन ध्यान रस दंड जुग पुनि मन बाहेर कीन्ह। रघुपति चरित महेस तब हरषित बरनै लीन्ह॥'* (१११) *'जीवनमुक्त*

ब्रह्मपर चरित सुनहिं तजि ध्यान। जे हरि कथा न करहिं रति तिन्हके हिय पाषान॥' (७। ४२) (धीरज धरा अर्थात् मनको सावधान किया। सभाको भी आनन्द देनेके लिये मनको सावधान कर पत्रिका पढ़ी जिससे सभी आनन्दमें मग्न हो गये।) (ख) *'हरषी सभा'* इति। सब श्रीराम-लक्ष्मणजीकी सुधके बिना व्याकुल थे, आज सच्ची खबर मिली है, अतः सब प्रसन्न हुए। यथा—*'जा दिन ते मुनि गए लवाई। तब ते आजु साँचि सुधि पाई॥'* (२९१। ७) [*'साँची'* कहकर जनाया कि इसके पूर्व उड़ती खबर इधर-उधरसे आती रहती थी। पर उसपर विश्वास न होता था। १४-१५ वर्षका लड़का दस हजार हाथियोंके बलवाली ताड़का राक्षसी इत्यादिका वध करे, भला इसे कौन मान सकता! और जब पुरुष-वर्ग ही ऐसे समाचारको अविश्वसनीय समझे, तब वे उसे स्त्रियोंसे कब कहने लगे। इसीसे स्त्रियोंको वह उड़ती खबर भी न मिलती थी। यथा—*'जब तें लै मुनि संग सिधाए। रामलषनके समाचार सखि ! तब तें कछुअ न पाए॥'* (गी० १। १०१) (प० प० प्र०) पर आज प्रामाणिक खबर मिली, राजा जनकने पत्रिकामें लिखकर भेजा है। रा० प्र० कार लिखते हैं कि 'इससे यह जनाया कि रघुवंशियोंकी सभा सच्ची ही बात सुनकर हर्षित होती है, झूठीसे नहीं। अथवा लिखी हुई बात प्रामाणिक होती है, इसलिये सबको हर्ष हुआ ! विनायकी टीकाकार लिखते हैं कि 'जब लोगोंने पत्रिकाके समाचार सुने तब तो उन्हें पहले यह विचार उठा कि दशरथजीके चुपचाप रह जानेके यथार्थ कारण इसमें सचमुच देख पड़ते हैं और जब सुना कि प्रत्येक बाधा दूर होकर जनक-पुत्रीसे विवाहका शुभ मुहूर्त भी निश्चित हो गया और बारातकी तैयारी करना है तो बहुत ही प्रसन्न हुए।' (२९१। ७) भी देखिये।]

नोट—२ पत्रिकामें समाचार लिखे हैं, यथा—*'खेम कुसल रघुबीर लषन की ललित पत्रिका ल्याए॥ ३॥ दलि ताड़का, मारि निसिचर, मख राखि बिप्रतिय तारी। दै बिद्या लै गए जनकपुर, हैं गुरु संग सुखारी॥ ४॥ करि पिनाक पन सुता स्वयंबर सजि नृप कटक बटोर्‌यो। राज सभा रघुबर मृनाल ज्यों संभु सरासन तोर्‌यो॥'* (५) (गीतावली १ । १००)

खेलत रहे तहाँ सुधि पाई। आए भरतु सहित हित* भाई॥ ७॥
पूछत अति सनेह सकुचाई। तात कहाँ तें पाती आई॥ ८॥
दो०—कुसल प्रानप्रिय बंधु दोउ अहहिं कहहु केहि देस।
सुनि सनेह साने बचन बाँची बहुरि नरेस॥ २९०॥

अर्थ—जहाँ खेल रहे थे वहीं भरतजीने खबर पायी तो वे मित्रों और भाई श्रीशत्रुघ्नजी-सहित आये॥ ७॥ बहुत ही प्रेमसे सकुचते हुए वे पूछते हैं—तात! (पिताजी !) पत्रिका कहाँसे आयी है?॥ ८॥ कहिये तो, प्राणप्रिय दोनों भाई कुशलसे तो हैं? और किस देशमें हैं? प्रेममें सने हुए वचन सुनकर राजाने पत्रिकाको फिरसे पढ़ा॥ २९०॥

टिप्पणी—१ *'खेलत रहे तहाँ सुधि पाई।……'* इति (क)—भरतजीका अत्यन्त स्नेह यहाँ दिखा रहे हैं। कथा या सत्संगमें खबर पाना न कहा, क्योंकि सत्संग आदि तो ऐसे स्थान हैं कि यहाँ सुधि मिल ही जाती, पर खेल ऐसा स्थान नहीं है सो वहाँपर भी 'सुध पा गये' और खेल छोड़ दौड़े आये। खेलना तो लड़कपनका स्वभाव ही है। (ख)—*'सुधि पाई'* अर्थात् श्रीराम-लक्ष्मणजीके समाचारकी पत्रिका आयी है जो सभामें पढ़ी गयी है, यह खबर उनको मिली, इसी बातको वे आगे पूछते हैं—*'तात कहाँ ते पाती आई………'* (ग) *'सहित हित भाई'* इति। भरतजीका भी मित्रोंमें स्नेह है, वे उनको त्याग नहीं सकते, जैसे श्रीरामजीका स्नेह अपने मित्रोंपर है; यथा—*'भोजन करत बोल जब राजा। नहिं आवत तजि बाल समाजा॥'* (२०३। ६) इसीसे उन्हें साथमें लाये। *हित* =मित्र; सखा। यथा—*'जे हित रहे करत तेइ पीरा।'* (५। १५) *'हित अनहित मानहु रिपु प्रीता।'* (५। ४०) *'हित अनहित पसु पच्छिउ*

* दोउ—१७६२, १७०४। लघु—को० रा०। हित—१६६१, १७२१, छ०।

जाना।' (२। २६४) '*भाई*' श्रीशत्रुघ्नजी तो सदा आपके अनुगामी ही हैं; यथा—'*भरत सत्रुहन दूनौ भाई। प्रभु सेवक जसि प्रीति बड़ाई॥*' (१९०। ४) अतः भाईको भी साथ लाये। इससे यह भी जनाया कि ये सब भी श्रीराम-लक्ष्मणजीके स्नेही हैं; सबको श्रीरामजी प्राणप्रिय हैं।

टिप्पणी—२ '*पूछत अति सनेह सकुचाई।*......' इति। (क) भरतजीका संकोची स्वभाव ही है, यथा—'*नाथ भरत कछु पूँछन चहहीं। प्रश्न करत मन सकुचत अहहीं॥*' (उ० ३६) '*महूँ सनेह सकोच बस सनमुख कही न बैन। दरसन तृपित न आजु लगि प्रेम पियासे नैन॥*' (अ० २६०) '*तब मुनि बोले भरत सन सब सँकोचु तजि तात।*' (अ० २५९) संकोची स्वभाववश पूछते नहीं बनता और उनका स्नेह अत्यन्त है, अतः स्नेहकी अधिकताके मारे रहा भी नहीं जाता। अन्ततोगत्वा प्रेमने पाला जीता, भरतजीने प्रश्न कर ही दिया। पुनः बड़े (गुरुजनों) से पूछनेमें संकोच है—ऐसा होना शिष्टाचार है। चित्रकूटके दरबारमें उन्होंने कहा भी है—'*नाथ निपट मैं कीन्ही ढिठाई। स्वामि समाज सकोच बिहाई॥*......*छमिहि देउ अति आरति जानी।*' (२। ३००) इनके स्नेह और संकोचका स्वरूप आगे स्पष्ट है, संकोचवश पत्रिकामें जो (अथवा क्या) लिखा है, यह नहीं पूछते, इतना ही भर पूछते हैं कि पत्रिका कहाँसे आयी है। [आज्ञा लिये बिना पूछनेसे मर्यादा भंग होती है और आज्ञा लेनेमें भी सकुचाते थे। श्रीराम-लक्ष्मण-भरत तीनोंका संकोची स्वभाव है और शत्रुघ्नजी भरतकी छायाके समान अनुगामी थे। (प० प० प्र०)] (ख) '*अति सनेह*' का भाव कि श्रीरामजीमें सभीका स्नेह है (यथा—'*सेवक सचिव सकल पुरबासी। जे हमरे अरि मित्र उदासी॥ सबहि रामु प्रिय जेहि बिधि मोही।*' (२। ३) '*ये प्रिय सबहि जहाँ लगि प्रानी।*' (१। २१६) '*कोसलपुरबासी नर नारि बृद्ध अरु बाल। प्रानहुँ ते प्रिय लागत सब कहुँ राम कृपाल॥*' (१। २०४) परंतु श्रीभरतका 'अति' स्नेह है [यथा—'*अगम सनेह भरत रघुबर को। जहँ न जाइ मन बिधि हरि हर को॥*' (२। २४१) '*भरत अवधि सनेह ममता की।*' (२। २८९)] (ग) '*कहाँ ते*' अर्थात् किस नगरसे। [(घ) '*खेलत रहे, तहाँ सुधि पाई।*......' से सिद्ध होता है कि पूरी पत्रिका पढ़ी जानेके पूर्व ही पत्रिकाके आनेकी बात नगरभरमें पहुँच गयी थी। सभाके लोगोंका तो बाहर जाना असम्भव था तब बात कैसे उड़ गयी? इससे सिद्ध होता है कि द्वारपालोंने ही फैलानेका काम आरम्भ कर दिया। अपरिचित दूतोंको राजदरबारकी ओर शीघ्रतासे जाते देख पुरवासियोंमें कुतूहल बहुत जाग्रत् हो गया होगा। (प० प० प्र०)]

टिप्पणी—३ '*कुसल प्रानप्रिय बंधु दोउ*........' इति। (क) '*प्रानप्रिय*' का भाव कि प्राणोंसे अधिक प्रिय कोई नहीं होता, यथा—'*देह प्रान तें प्रिय कछु नाहीं।*' (२०८। ४) सो उन प्राणोंसे भी अधिक ये दोनों भाई भरतजीको प्रिय हैं। ऊपर जो '*पूछत अति सनेह सकुचाई*' कहा था, उस '*अति सनेह*' का स्वरूप यहाँ दिखाया। 'स्नेह' प्राणमें है और 'अति स्नेह' दोनों भाइयोंमें है। हृदयमें 'अति स्नेह' है, वही अत्यन्त स्नेह मुखसे निकल रहा है। 'प्राणप्रिय' विशेषण 'अतिप्रिय' में ही दिया जाता है। (ख)—'*बंधु दोउ*' कहकर जनाया कि श्रीराम और श्रीलक्ष्मण दोनोंहीमें इनका अत्यन्त स्नेह है; इसीसे दोनोंका कुशल-समाचार पूछते हैं और दोनोंको प्राणप्रिय कहा। (ग)—'*सुनि सनेह साने बचन*' इति। '*कुसल प्रानप्रिय बंधु दोउ अहहिं कहहु केहि देस*' यही स्नेहमें सने हुए वचन हैं। (घ) '*बाँची बहुरि नरेस*' इति। इनका अत्यन्त स्नेह देखकर (राजा समझ गये कि बिना पूरी पत्रिका सुनाये इनको संतोष न होगा) राजाने पूरी पत्रिका पढ़कर सुनायी; नहीं तो जितना प्रश्न था उतनेहीका उत्तर देते। प्रश्नका उत्तर तो बहुत थोड़ेमें हो जाता; वह यह कि 'पत्रिका जनकपुरसे आयी है। दोनों भाई वहीं सकुशल हैं।' यह उत्कट शुद्ध प्रेमकी रीति ही है, पत्रिका उन्हें साक्षात् रामरूप ही देख पड़ती है। अतः राजा पुनः-पुनः पढ़नेका अवसर पाकर कब चूकने लगे। यह तीसरी बार पढ़नेका अवसर मिला। आगे भी पढ़-पढ़कर सुनायेंगे। ☞राजा आचरणद्वारा सदुपदेश दे रहे हैं कि श्रीराम-लक्ष्मणजीकी कीर्तिका बारम्बार पाठ करे और वर्णन करे। (प० प० प्र०)

सुनि पाती पुलके दोउ भ्राता। अधिक सनेहु समात न गाता॥ १॥
प्रीति पुनीत भरत कै देखी। सकल सभाँ सुखु लहेउ बिसेषी॥ २॥

अर्थ—पत्रिका सुनकर दोनों भाई पुलकित हुए, स्नेह इतना बढ़ा कि शरीरमें नहीं समाता॥ १॥ श्रीभरतजीका पवित्र प्रेम देखकर सारी सभाको विशेष सुख प्राप्त हुआ॥ २॥

टिप्पणी—१ '*सुनि पाती पुलके*……' इति। (क) यहाँ दिखाते हैं कि श्रीदशरथजी, श्रीभरतजी और श्रीशत्रुघ्नजी—ये तीनों श्रीअवधवासियोंसे अधिक श्रीरामानुरागी हैं। श्रीरामजीमें जैसी जिसकी प्रीति है, वह यहाँ प्रत्यक्ष दिखायी देती है। इन तीनोंमें सबसे अधिक प्रेम है। पत्रिका पढ़नेमें राजाकी जैसी दशा हुई कि '*बारि बिलोचन बाँचत पाती। पुलक गात आई भरि छाती॥*' वैसी ही दशा श्रीभरत-शत्रुघ्नजीकी हुई—'*सुनि पाती पुलके दोउ भ्राता। अधिक सनेहु समात न गाता॥*' दोनों भाइयोंको पुलकावली हुई और प्रेमाश्रु आदि निकल पड़े। अयोध्यावासियोंका प्रेम इनकी अपेक्षा साधारण था, उनको केवल हर्ष प्राप्त हुआ, पुलकावली आदि नहीं हुई। यथा—'*पुनि धरि धीर पत्रिका बाँची। हरषी सभा बात सुनि साँची॥*' (ख)—'*अधिक सनेहु*' इति। भाव कि प्रथम पत्रिकाका समाचार पूछनेमें '*अति सनेह*' हुआ, यथा—'*अति सनेह पूछत सकुचाई*' अब समाचार सुननेपर वह 'अति सनेह' अधिक हो गया और बढ़ भी गया। (ग)—'*समात न गाता*' कहकर जनाया कि जबतक 'अति सनेह' रहा तबतक तो वह हृदयमें बना रहा, पर जब वह स्नेह 'अति' से भी अधिक हुआ तब हृदयमें नहीं समाया, नेत्रोंद्वारा प्रेमाश्रुरूप होकर निकल पड़ा। 'अति सनेह' विशेष है, 'अधिक सनेह' इससे भी विशेष है, यही यहाँ कहते हैं। '*समात न गाता*' अर्थात् शरीरके बाहर उमड़ा पड़ता है।

टिप्पणी—२ '*प्रीति पुनीत*……' इति। (क) प्रीति तन, मन और वचन तीनोंसे है, इसीसे उसे 'पुनीत' कहा।'*पूछत अति सनेह सकुचाई*' यह '*अति सनेह*' मनकी प्रीति है (क्योंकि स्नेह और संकोच मनका धर्म है)। '*सुनि सनेह साने बचन*' यह वचनकी प्रीति है। और '*सुनि पाती पुलके दोउ भ्राता। अधिक सनेहु समात न गाता॥*' यह तन (वा कर्म) की प्रीति है। मन, वचन और कर्म तीनों स्थानोंमें 'सनेह' शब्द रखा है। छलरहित प्रीति 'पुनीत प्रीति' कहलाती है, यथा—'*भाइहि भाइहि परम समीती। सकल दोष छल बरजित प्रीती॥*' (१। १५३) [स्वार्थ ही छल है, यथा—'*स्वारथ छल फल चारि बिहाई।*' (२। ३०१) भरतजीका प्रेम स्वार्थरहित है, यथा—'*परमारथ स्वारथ सुख सारे। भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे॥*' (२। २८९) भरतजीने शपथ खाकर कहा है कि उनके हृदयमें '*सहज सनेह स्वामि सेवकाई। स्वारथ छल फल चारि बिहाई॥*' (२। ३०१) है।] (ख)—'***देखी***' का भाव कि पहले उनके प्रेमकी प्रशंसा सुना करते थे, पर आज पुलकादि द्वारा आँखोंसे देख लिया (कि सत्य ही श्रीरामजीमें इनका बड़ा गूढ़ स्नेह है। यथा—'*अगम सनेह भरत रघुबर को। जहँ न जाइ मन बिधि हरि हर को॥*' (२। २४१) '*गूढ़ सनेह भरत मन माहीं।*' (२। २८४) (ग) '*सकल सभाँ सुखु लहेउ*' इति। भाव यह कि श्रीभरतजीकी प्रीति इतनी सुन्दर है कि देखकर सभी सुखी होते हैं, यथा—'*भरत बचन सुनि देखि सनेहू। सभा सहित मुनि भए बिदेहू॥*' (२। २५७) वैसे ही ये सब भी सुखी हुए। अथवा, लोगोंके मनमें संदेह था कि राज्य पानेके अधिकारी श्रीरामजी भी हैं और श्रीभरतजी भी—['*जेठ स्वामि सेवक लघु भाई। यह दिनकर कुल रीति सुहाई॥*' (२। १५) इसके अनुसार—कुलपरिपाटीके अनुसार श्रीरामजी राज्यके अधिकारी हैं। दशरथजीने भी यही कहा है, यथा—'*मैं बड़ छोट बिचारि जिय करत रहेउँ नृप नीति।*' (२। ३१) और कैकेयीजीके विवाहके योगसे जो प्रतिज्ञापत्र चक्रवर्तीजीने लिख दिया है उसके अनुसार श्रीभरतजी अधिकारी हैं। विशेष १९० (४) में देखिये।]; इस कारणसे कहीं भरतजी श्रीरामजीसे अन्तःकरणमें विरोध (द्वेष) न रखते हों। वह संदेह अब निवृत्त हो गया, सब इनका निश्छल प्रेम देखकर सुखी हुए। (घ)—'*बिसेषी*' का भाव कि पत्रिका सुनकर सभी सभा सुखी हुई थी; यथा—'*हरषी सभा बात सुनि साँची*' और भरतजीका निश्छल प्रेम देखकर विशेष सुखी हुई। अथवा विशेष प्रीति ('*अधिक सनेहु समात न गाता*') देखकर विशेष सुख हुआ।

तब नृप दूत निकट बैठारे। मधुर मनोहर बचन उचारे॥ ३॥
भैआ कहहु कुसल दोउ बारे। तुम्ह नीकें निज नयन निहारे॥ ४॥
स्यामल गौर धरे धनु भाथा। बय किसोर कौशिक मुनि साथा॥ ५॥
पहिचानहु तुम्ह कहहु सुभाऊ। प्रेम बिबस पुनि पुनि कह राऊ॥ ६॥

अर्थ—तब राजाने दूतोंको पास बैठाया और मीठे मनके हरनेवाले सुन्दर वचन बोले—॥ ३॥ 'भैया! कहो, दोनों बच्चे कुशलसे तो हैं? तुमने अपनी आँखोंसे उन्हें *'नीकें'* (भलीभाँति और सकुशल) देखा है (न)? ॥ ४॥ (एक) श्यामवर्ण और (दूसरे) गौरवर्ण हैं। धनुष और तरकस धारण किये रहते हैं। किशोर-अवस्था है और श्रीविश्वामित्र मुनिके साथ हैं॥ ५॥ (यदि) तुम (उनको) पहचानते हो (तो उनका) स्वभाव कहो।' राजा प्रेमके विशेषवश होनेसे बारंबार (इस प्रकार) कह (पूछ) रहे हैं॥ ६॥

टिप्पणी—१ (क) *'निकट बैठारे'* से सूचित किया कि अबतक वे दूर खड़े रहे। पास बैठाना आदर भी सूचित करता है। यथा—*'कपि उठाइ प्रभु हृदय लगावा। कर गहि परम निकट बैठावा॥'* (५। ३३) *'अति आदर समीप बैठारी। बोले बिहँसी कृपाल खरारी॥'* (६। ३७) [निकट बैठानेमें परम प्रेम ही मुख्य है। श्रीरामजीने तो केवल श्रीहनुमान्‌जी और विभीषणजीको निकट बैठाया है, यह सौभाग्य सुग्रीवको भी नहीं प्राप्त हुआ। विश्वामित्रजीने केवल श्रीराम-लक्ष्मणको निकट बैठाया। दूतोंको निकट बैठानेसे सिद्ध हुआ कि दूतोंका दर्शन महाराजको राम-लक्ष्मणके दर्शनके समान ही इस समय लग रहा है। यथा—*'कपि तव दरस सकल दुख बीते। मिले आजु मोहि राम पिरीते॥'* (यह भरतने कहा है।) दरबार न होता, एकान्त होता तो दूतोंको हृदयसे लगाकर भेंटते। (प० प० प्र०)] (ख) *'मधुर मनोहर बचन'* अर्थात् ये वचन सुननेमें मधुर हैं, अर्थमें मनोहर हैं अर्थात् इनका अर्थ समझनेसे ये मनको हर लेते हैं। अथवा, मनोहर=सुन्दर।

टिप्पणी—२ (क) 'भैया' प्रिय वचन है। दूत श्रीराम-लक्ष्मणजीका समाचार लाये हैं, इससे अत्यन्त प्रिय हैं। यथा—*'जे जन कहहिं कुसल हम देखे। ते प्रिय राम लखन सम लेखे॥'* (२। २२४) (भरतजी जिनसे श्रीराम-लक्ष्मणजीका कुशल-समाचार पाते थे, उनको श्रीराम-लक्ष्मणसमान प्रिय मानते थे। इसी तरह श्रीकौशल्या माता कहती हैं—) *'जो कहिहै फिरे राम लषन घर करि मुनि मख रखवारी। सो तुलसी प्रिय मोहि लागि है ज्यों सुभाय सुत चारी॥'* (गीतावली १। ९८) जो कुशल कहता है उसे श्रीराम-समान प्रिय मानते हैं। माता-पिता श्रीरामको प्रायः 'भैया' कहते हैं, यथा—*'पितु समीप तब जाएहु भैया। भइ बड़ि बार जाइ बलि मैया॥'* (२। ५३) इस तरह यहाँ भी 'भैया' सम्बोधन बड़ा उपयुक्त है। यह प्रिय वचन कहकर तब राजा बोले। यहाँ *'भैआ कहहु ....।'* इत्यादिमें वचनोंकी मधुरता प्रत्यक्ष दिख रही है। [विश्वामित्रजी बड़े विकट स्थानोंमें ले गये थे। वहाँकी सुधि कुशल-समाचारपूर्वक देना दूसरा जन्म देना है। अतः अति आदरसे *'भैआ'* कहा। (रा०प्र०)] (ख)—*'कुसल दोउ बारे'* इति जबसे विश्वामित्र दोनों बच्चोंको राक्षसोंसे युद्ध करनेके लिये ले गये हैं, (यथा—*'असुर समूह सतावहिं मोही। मैं जाचन आयउँ नृप तोही॥ अनुज समेत देहु रघुनाथा। निसिचर बध मैं होब सनाथा॥'* (१। २०७) तबसे उनका कुशल-समाचार नहीं मिला, (यथा—*'जब तें लै मुनि संग सिधाए। राम लषन के समाचार सखि तब ते कछुअ न पाए॥ ...बालक सुठि सुकुमार समुझि सोच मोहि आली।'* (गीतावली १। ९९) इसीसे प्रथम कुशल पूछते हैं। (ग) *'नीकें'* अर्थात् निगाह डालकर अच्छी तरह देखा तथा उनको 'कुसल सहित' देखा। (घ) *'निज नयन निहारे'* इति। भाव कि अपनी आँखोंसे देखकर कुशल कहना चिट्ठीसे श्रेष्ठ है, इसीसे 'अपनी' आँखोसे देखनेका प्रश्न करते हैं। पुनः भाव कि आँखसे देखा है, उनके शरीरमें (राक्षसोंसे युद्ध होनेसे) कोई घाव तो नहीं हैं? पुनः भाव कि सुना हुआ तो नहीं कहते हो? [(ङ) *'तुम्ह नीके निज नयन निहारे'* का एक भाव बाबा हरिहरप्रसादजी यह लिखते है कि हमसे 'तुम ही अच्छे हो कि उन्हें अपनी आँखोंसे देखा है।' (रा० प्र०)

नोट—१ '*भैआ कहहु कुसल दोउ बारे॥*......' इति। इस चौपाईमें रस चू (टपक) रहा है; कोई क्या अर्थ करेगा? अर्थ करनेसे वह रस ही जाता रहता है, नीरसता आ जाती है। चक्रवर्ती महाराज होकर दूतोंको '*भैआ*' सम्बोधन करना, यह कुछ क्या साधारण बात है? कैसा गूढ़ और गाढ़ा प्रेम श्रीरामजीमें है? जबतक मनुष्य अपने मानको नष्ट नहीं कर देता तबतक श्रीरामजी नहीं मिलते, मान-प्रतिष्ठाके नष्ट होनेहीपर श्रीरामसुजानकी प्राप्ति है। केवल श्रीरामप्रेमके नातेसे दूतोंको '*भैआ*' कहा, वात्सल्यरसकी प्रबलता बरियायी इन शब्दोंको मुखसे निकलवा रही है। राजा सोचते हैं कि वहाँ तो बहुत-से राजकुमार रहे होंगे, न जाने इन्होंने हमारे पुत्रोंको पहिचाना हो या न, राम-लक्ष्मण तो सादे वेशमें होंगे, उनके वस्त्रादिक देखकर वे कैसे समझ सकते कि चक्रवर्तीके पुत्र हैं? इसलिये प्रथम ही उनका हुलिया बताते हैं, जिसमें बारम्बार पूछनेमें विलम्ब न हो। बारम्बार पूछना प्रेमकी अधिकता सूचित करता है।

टिप्पणी—३ '*स्यामल गौर धरे धनु भाथा।*....' इति। (क) जब राजाने अपने लड़कोंका कुशल और अपनी आँखोंसे देखनेका प्रश्न किया तब सम्भव हुआ कि दूत पूछें कि आपके लड़के कैसे हैं, इसीसे राजा प्रथम ही 'चिन्हारी' (पहचानके चिह्न) बताते हैं। रङ्ग, आयुध, अवस्था और साथ—ये चार चिह्न बताये। (ख) '*बय किसोर*' यथा—'*बय किसोर सुखमा सदन स्याम गौर सुखधाम।*' (१। २२०) (अभी चौदह वर्षके हैं। यह वह अवस्था है जिसमें भोलापन और मुखारविन्दपर मलाहत रहती है, हृदय सरल रहता है। पर आजकल तो इस अवस्थामें यवनोंके सङ्गसे थोड़ी ही अवस्थामें अनेक विकारयुक्त लड़के देखे जाते हैं। हमारी संस्कृतिका कैसा नाश हुआ है!) (ग)—'*कौशिक मुनि साथा*'। भाव कि आगे-आगे कौशिक मुनि हैं, पीछे-पीछे दोनों लड़के हैं। श्याम और गौर जो कहा था उसका भाव यह है कि विश्वामित्रके पीछे श्याम बालक है और उसके पीछे गौर बालक है। विश्वामित्रको जगत् जानता है, उनके बतानेकी आवश्यकता नहीं। ऐसे महामुनिके साथ हैं, सामान्य मुनिके साथ नहीं हैं कि पीछे रहते। (प्र० सं०) और भी राजकुमार राम-लक्ष्मण नामके तथा धनुषबाणधारी हो सकते है, अतः '*कौशिक मुनि साथा*' से वह अतिव्याप्ति दूर की। (प० प० प्र०)

टिप्पणी—४ '*पहिचानहु तुम्ह कहहु सुभाऊ।*..........' इति (क) पहले भाइयोंकी पहचानके चिह्न कहकर तब पूछते हैं कि 'तुम पहचानते हो?', यदि पहचानते हो तो उनका स्वभाव कहो। (ख) स्वभाव पूछनेका भाव कि जबतक मनुष्य समीप जाकर बात नहीं करता, तबतक स्वभाव नहीं जाना जा सकता। आँखोंसे देखनेका प्रश्न किया, अब समीप जाकर बात करना पूछते हैं। जो पास जाकर श्रीरामजीसे जान-पहचान करते हैं, श्रीरामजी उनका बड़ा आदर-मान करते हैं, जिससे फिर वे श्रीरामजीको भूल नहीं सकते, फिर तो वे '*राम बिलोकनि बोलनि चलनी। सुमिरि सुमिरि सोचत हँसि मिलनी॥*' (७। १९) (ग) रूपके चिह्न बताये, स्वभावके चिह्न नहीं बताते, क्योंकि इसके लक्षण नहीं बताते बनते। यथा—'*अस सुभाउ कहुँ सुनउँ न देखउँ। केहि खगेस रघुपति सम लेखउँ॥*' (७। १२४) (श्रीभुशुण्डिवाक्य) जब ऐसे स्वभावका कोई है ही नहीं, तब कैसे बताते बने। (घ) '*प्रेम बिबस पुनि पुनि कह राऊ*' इति। भाव कि जब राजाने श्रीरामजीके स्वरूप और स्वभावका स्मरण किया तब वे प्रेमके विशेष वश हो गये। (यथा—'*रामरूप गुन सीलु सुभाऊ। प्रमुदित होइ देखि सुनि राऊ॥*' (२। १) राजा सदा ही स्वभावादि देख-सुनकर विशेष आनन्दित होते थे और इस समय तो उनका वियोग है, इससे उनके रूप-गुण स्वभावके स्मरणसे और भी विशेष आनन्द उमड़ आना उचित ही है।) प्रेमके विशेष वश हो गये, इसीसे पुनः-पुनः श्रीरामजीका स्वभाव-रूप आदि कहते हैं। [बार-बार यह कि '*दोउ बारे तुमने देखे हैं?*' 'श्याम-गौर मेरे पुत्रोंको देखा है?', अपनी 'आँखोंसे देखा है?','*धरे धनु भाथा*' मेरे प्रिय पुत्रोंको देखा है? इत्यादि (प० प० प्र०)]

जा दिन तें मुनि गये लवाई। तब ते आजु साँचि सुधि पाई॥ ७॥
कहहु बिदेह कवन बिधि जाने। सुनि प्रिय बचन दूत मुसुकाने॥ ८॥

अर्थ—'जिस दिनसे मुनि (उनको) लिवा ले गये, तबसे (उस दिनसे हमने) आज ही सच्ची खबर पायी है॥ ७॥ कहो तो, विदेहराज (राजा जनक) ने किस प्रकार जाना।' (राजाके इन) प्रेमभरे वचनोंको सुनकर दूत मुसकराये॥ ८॥

टिप्पणी—१ *'जा दिन तें मुनि गये लवाई।……'* इति। (क) पूर्व जो ***'कौशिक मुनि साथा'*** कहा है, उसमें शंका होती है कि राजाके बालक मुनिके साथ कैसे? उसी संदेहकी निवृत्तिके लिये कहते हैं कि मुनि हमारे यहाँसे लिवा ले गये हैं, इसीसे वे मुनिके साथ हैं। (ख)—***'साँचि'*** का भाव कि सुध मिलती थी, पर प्रामाणिक खबर नहीं मिली थी।'

नोट—१ *'आजु साँचि सुधि पाई'* इति। यहाँ यह शंका होती है कि 'इतने बड़े चक्रवर्ती महाराज होकर ऐसे अत्यन्त प्रिय पुत्रोंको उन्होंने कैसे भुला दिया? उनको खबर क्यों न मिली? जनकपुर दूर नहीं है, बराबर हरकारा लगाये रखते तो रोज ही खबर मिलती रहती? इनकी तो सब बातें ऐसी हैं जैसी कोई लाचार बेचारा दीन-गरीब मनुष्य करे कि—'हमने आज सच्ची सुध पायी'। इन शब्दोंसे यह प्रतीत होता है कि ऊपरसे कोई-कोई आकर कहते थे, राजाकी ओरसे कोई नियुक्त न थे?' इसका समाधान यह है कि यदि राजा अपने आदमी लगाये रखते तो पूर्वापर विरोध होता। राजा सत्यवादी हैं, उनके वचन हैं कि ***'प्रान जाहु बरु बचन न जाई॥'*** (२। २८) उन्होंने पुत्रोंको मुनिके सुपुर्द करते हुए यह कहा है कि ***'मेरे प्राननाथ सुत दोऊ। तुम्ह मुनि पिता आन नहिं कोऊ॥'*** (१। २०८) उन्होंने जो कहा उसका अन्ततक निर्वाह किया। अपना पितृत्व जब उन्होंने मुनिमें स्थापित कर दिया, जब मुनि ही पिता हैं तब उनको यह अधिकार कहाँ रह गया कि उनका सार-सँभार करें या खबर लेनेके लिये चोरीसे दूत लगाये रहते। दूसरे, ऐसा करनेसे विश्वामित्रजीमें राजाका अविश्वास सूचित होता और धर्म-विरुद्ध तो होता ही। अतएव राजाने सब भार मुनिहीपर डाल दिया, जिसमें मुनि यह जानें कि हमारे भरोसे खबरतक नहीं मँगाते, हमहीपर निर्भर हैं। फिर राजा-रानी सभी वसिष्ठजीसे विश्वामित्रजीका स्वभाव और सामर्थ्य सुन चुके हैं ही, जैसा—***'तब बसिष्ठ बहु बिधि समुझावा। नृप संदेह नास कहुँ पावा॥'*** (२०८। ८) में लिखा गया है। गी० १ । ९९ के कौसल्याजीके भी वचन ***'कौसिक परम कृपाल परमहित समरथ सुखद सुचाली'*** से यह स्पष्ट है।

प० प० प्र०—१ **'जनिता चोपनेता च यश्च विद्यां प्रयच्छति। अन्नदाता भयत्राता पञ्चैते पितरः स्मृताः॥'** इसके अनुसार पितृत्व पाँच प्रकारका माना गया है। दो प्रकारका पितृत्व दशरथजीका था। शेष तीन प्रकारका पितृत्व विश्वामित्रजीने अपनेमें यथार्थ करके दिखाया है। (१) विद्यादाता, यथा—***'बिद्यानिधि कहुँ बिद्या दीन्ही'।*** (२) अन्नदाता, यथा—***'जाते लाग न छुधा पिपासा'*** (ऐसी दिव्य विद्या ही दे दी); ***'कंद मूल फल भोजन दीन्ह भगति हित जानि।'*** (३)भयत्राता, यथा—***'अतुलित बल तन तेज प्रकासा', 'आयुध सर्ब समर्पि कै……।'***

नोट—२ ***'बिदेह कवन बिधि जाने'*** में भाव यह है कि ***'जाकर नाम सुनत सुभ होई। मोरे गृह आवा प्रभु सोई॥'*** इस भावनासे जाना कि केवल दशरथतनयरूपसे जाना। दशरथजी जानते हैं कि श्रीजनकजी सदा ब्रह्मानन्दमें लवलीन रहते हैं, इसीसे वे विधिको पूछते हैं। ***'बिदेह'*** शब्द इसी अर्थमें दो० २१५। ८ से लेकर २९१ तक केवल छः बार आया है। दो० २९१ से ३३१ तक, विवाह-प्रकरणमें यह शब्द एक बार भी नहीं आया। ***'अवधनाथ चाहत चलन'*** (दो० ३३२) सुननेके पश्चात् लगातार तीन दोहोंमें फिर *'बिदेह'* शब्दका प्रयोग हुआ है।

टिप्पणी—२ *'कहहु बिदेह कवन बिधि जाने……'* इति। (क) *'बिदेह'* का भाव कि जिनको देहाध्यास नहीं, उन्होंने लड़कोंको कैसे जाना (*'बिदेह'* शब्दमें व्यंग्य भी है कि वे तो ज्ञानमें निमग्न रहते हैं, उनको तो अपने देहहीकी सुध नहीं, तब वे दूसरेको कैसे पहचानेंगे)। (ख) ***'कवन बिधि जाने'*** इस प्रश्नसे सूचित होता है कि पत्रिकामें धनुषका तोड़ना नहीं लिखा था, यह बात आगे स्पष्ट है। (धनुषका

तोड़ना) दूतोंने मौखिक कहा है। [मुनिके साथ विभवरहित साधारण वस्त्र देखकर पहचान लेना असम्भव है। अतः पूछा कि किस प्रकार जाना। (वै०)] (ग)—*'सुनि प्रिय बचन'* इति। वचन मधुर और मनोहर हैं। *'प्रिय'* में मधुर और मनोहर दोनों गतार्थ हुए। वचन श्रीरामप्रेमसे परिपूर्ण हैं और इनमें दूतोंका आदर है। इत्यादि कारणोंसे *'प्रिय'* हैं। (घ)—राजाने स्वयं प्रेमके वश पुनः-पुनः कहा, यथा—*'प्रेम बिबस पुनि पुनि कह राऊ।'* और दूतोंसे भी बार-बार कहनेको कहते हैं, यथा—*'भैआ कहहु कुसल……'*, *'पहिचानहु तुम्ह कहहु सुभाऊ'* और *'कहहु बिदेह कवन बिधि…… ।'* (ङ)—*'दूत मुसुकाने'* इति। मुसुकानेका भाव कि इतने बड़े भारी पुरुषार्थियोंको अपने पुत्रभावसे लघु माने हुए हैं, इसीसे दूत आगे इसी बातको कहकर बड़ाई करते हैं। (*'मुसुकाने'* क्योंकि रामचन्द्रजीकी वीरता देख चुके हैं। सोचे कि कहाँ तो दोनों भाइयोंका प्रताप और कहाँ यह वात्सल्य! कुछ टीकाकारोंका मत है कि दूत विदेहजीपर कटाक्ष समझकर हँसे।)

प० प० प्र०—दूत यह सोचकर मुसकुराये कि 'प्रेम चारों आँखोंका अन्धा होता है', 'प्रेममें प्रबोध नहीं होता' यह कहावत यहाँ चरितार्थ हो रही है, यथा—*'तुलसी बैर सनेह दोउ रहित बिलोचन चारि। सुरा सेवरा आदरहिं निंदहिं सुरसरि बारि॥'* (दो० ३२६) *'बैरु अंध प्रेमहि न प्रबोधू'।* ये महाराज धन्य हैं।

दो०—सुनहु महीपति मुकुटमनि तुम्ह सम धन्य न कोउ।
राम लषनु जिन्ह के* तनय बिश्व बिभूषन दोउ॥ २९१॥

अर्थ—(दूत बोले—) हे राजाओंके मुकुटमणि ! सुनिये ! आपके समान कोई भी धन्य नहीं कि ब्रह्माण्डके विभूषण (स्वरूप) राम-लक्ष्मण दोनों जिनके पुत्र हैं॥ २९१॥

टिप्पणी—१ (क) राजाने तीन बातें पूछीं—पुत्रोंका कुशल और स्वभाव तथा विदेहने कैसे पहचाना? सबका उत्तर दूत देते हैं। (ख) राजाने कहा कि *'कहहु'* अतः वे कहते हैं कि *'सुनहु'* अर्थात् हम कहते हैं, आप सुनें। (ग) *'महीपति मुकुटमनि'* का भाव कि आप केवल सामान्य राजाओंमें सबसे श्रेष्ठ हों सो बात नहीं है, किंतु आप तो जितने मुकुटधारी राजा हैं उन सबोंमें श्रेष्ठ हैं। (घ) *'तुम्ह सम धन्य न कोउ'*—भाव कि पुण्यवान् तो और भी हैं, पर आपके समान कोई नहीं हैं। (*धन्य* =सुकृती, पुण्यवान्)। यथा—*'तुम्ह ते अधिक पुन्य बड़ काकें। राजन राम सरिस सुत जाकें॥'* (२९४। ६) (ङ) *'राम लषनु जिन्ह के तनय'* इति। —दूतोंने राजाका श्रीराम-लक्ष्मणमें अत्यन्त अनुराग देखकर यह बात कही है। [भाव यह कि आपके प्रेमसे ही श्रीराम-लक्ष्मण आपके पुत्र हुए हैं। यथा—*'भएउ तुम्हार तनय सोइ स्वामी। राम पुनीत प्रेम अनुगामी॥'* (२। ४) *'जासु सनेह सकोच बस राम प्रगट भए आइ।'* (२। २०९) इत्यादि। (च) *'बिस्व बिभूषन दोउ'* इति। भाव कि विश्वके 'भूषण तो और भी हैं पर ये दोनों विश्वके 'विभूषण' हैं, इनसे अधिक कोई नहीं है। जैसे आपके समान 'धन्य' कोई नहीं, वैसे ही इनके समान भूषण कोई नहीं। (छ)—दोहेका भाव यह हुआ कि जो समस्त राजाओंमें शिरोमणि हैं, उनके ये पुत्र हैं और फिर जो स्वयं विश्वके विभूषण हैं, उनका जाहिर होना (पहचानना, जानना) कौन कठिन है! वे छिपे कब रह सकते हैं? ('विभूषण' का भाव यह है कि भूषणसे शोभा होती है और ये तो जगत्भरके 'विभूषण' हैं, इनसे तो जगत्भर सुशोभित होता है। जगत्की शोभा इन्हींसे है)। पुनः भाव कि विभूषणोंसे शरीरका प्रकाश, शोभा, सौन्दर्य इत्यादि बढ़ते हैं। इसी तरह इन दोनोंसे विश्वको प्रकाश, सौन्दर्य और शोभा मिलती है। जिनका नाम ही *'भगति सुतिय कल करन बिभूषन। जग हित हेतु बिमल बिधु पूषन॥'* है, वे स्वयं विश्वविभूषण क्यों न होंगे। भूषण सुखद होता है वैसे ही ये विश्वसुखद हैं; यथा—*'सुखधाम राम'*, *'महिमंडल मंडन'*; तब उनको दुःख कब सम्भव है? (प० प० प्र०)]

* जाके—१७०४, १७२१, १७६७, छ०। जिन्ह कै—१६६१, को० रा०।

पूछन जोगु न तनय तुम्हारे। पुरुषसिंघ तिहुँ पुर उजिआरे॥ १॥
जिन्ह के जस प्रताप के आगें। ससि मलीन रबि सीतल लागें॥ २॥
तिन्ह कहँ कहिअ नाथ किमि चीन्हे। देखिय रबि कि दीप कर लीन्हे॥ ३॥

अर्थ—आपके पुत्र पूछने योग्य नहीं हैं। (वे तो) पुरुषोंमें सिंह (रूप) और तीनों लोकोंके प्रकाशक हैं॥ १॥ जिनके यश और प्रतापके सामने चन्द्रमा मलिन और सूर्य शीतल लगते हैं॥ २॥ हे नाथ? उनके लिये आप कहते हैं कि 'कैसे चीन्हा?' क्या सूर्यको हाथमें दीपक लेकर देखा जाता है॥ ३॥

टिप्पणी—१ *'पूछन जोगु न……'* इति। (क) राजाने पूछा था कि 'तुमने उन्हें अपनी आँखोंसे देखा है? वे श्याम और गौर हैं तथा विश्वामित्रके साथ हैं।' इसपर दूत उत्तरमें कहते हैं कि जैसे आप उनके सम्बन्धमें प्रश्न कर रहे हैं, वैसे प्रश्न उनके योग्य नहीं हैं, वे तो तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हैं। (ख)—*'तनय तुम्हारे'* कहनेका भाव कि जैसे आप हैं वैसे ही आपके पुत्र हैं। (ग)—*'पुरुषसिंघ……'* इति। प्रथम दोनों भाइयोंको 'विश्व-विभूषण' कहा, परंतु विभूषणमें केवल शोभा है, इससे यहाँ बल, यश और प्रताप कहते हैं। पुरुषसिंह हैं, सब पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं। *'पुरुषसिंघ'* से पराक्रमी सूचित किया। पराक्रमसे यश और प्रताप होता है, उसे *'तिहुँ पुर उजिआरे'* कहकर सूचित कर दिया। पुरुषसिंह और त्रिलोकीमें उजियाले कहनेका भाव कि त्रैलोक्यमें ऐसा श्रेष्ठ पुरुष कोई नहीं है। [पुरुषोंमें सिंहरूप हैं। अर्थात् ये बड़े सामर्थ्यवान् और पराक्रमी हैं। सिंह जिधर निकल पड़े उधर शोर न मच जाय, यह होनेका नहीं। वैसे ही ये जहाँ भी जायँ वहाँ ऐसा कौन है जो इनके प्रतापसे दब न जाय? और लोग इनको न जानें, यह कैसे सम्भव हो सकता है? जैसे सिंह निर्भय वैसे ही आपके पुत्र निर्भय। उनके लिये कुशल-प्रश्न और चिन्ता ही कैसी!— (प्र० सं०)]

प० प० प्र०—(१)*'पुरुषसिंघ'* इस रूपकसे सिंहकी निर्भयता, गम्भीरता, प्रतापशीलता, तेजस्विता, स्वतन्त्रता, उग्रता, विजयशीलता, स्वाभिमान-शीलता, वारण (भववारण, रावण) दारण-स्वभाव, मृग (सकल भूप, सब जीव)—राजता इत्यादि अनेक गुणोंका बोध कराया। (२) दो० २०८ में *'पुरुषसिंघ दोउ बीर चले'* इससे उपक्रम किया था। (२३४। ३) में *'रघुसिंघ निहारे'* से अभ्यास और *'पुरुषसिंघ तिहुँ पुर उजिआरे'* से उपसंहार किया गया। अब आगे विवाह-प्रकरणमें मुख्यतः शृङ्गार और शान्त, भक्ति, वात्सल्यादि कोमल रसोंकी बाढ़ आनेवाली है, इससे वहाँ सिंहका कुछ काम नहीं है। अयोध्याकाण्डमें शोक, करुणा, विरह, भक्ति, वात्सल्यकी नदियाँ बहनेवाली हैं, इससे वहाँ भी 'सिंह' नहीं है। अरण्यकाण्डसे ही सिंहका कार्य है, वीर, रौद्र, भयानक, बीभत्स रसोंकी सीमा होनेवाली है; अतः वहाँसे सिंह शब्द पुनरपि प्रवेश करता है। यथा—*'मृगराज प्रभु गजराज घटा निहारिकै'*, *'पुरुषसिंघ बन खेलन आये'*, *'निसिचर करिबरूथ मृगराजः'* इत्यादि। लंकाकाण्डके अन्ततक बीच-बीचमें सिंह खड़ा है। कितनी सावधानता है शब्दोंके प्रयोगमें। (३) *'तिहुँ पुर उजिआरे'* इति। श्रीराम-विवाहका मण्डप *'तिहुँलोक उजागर'* कहा गया है तब यदि श्रीराम-लक्ष्मणको 'त्रैलोक्यके उजाला करनेवाले' नहीं कहते तो बड़ा अनर्थ और विसंगत हो जाता।

टिप्पणी—२ *'तिहुँ पुर उजिआरे'* इति। अब यश-प्रतापकी बड़ाई करते हैं। उजाला सूर्य और चन्द्रमासे होता है। दोनों भाइयोंने अपने यश-प्रतापसे उजाला किया। यश चन्द्रमा है, यथा—*'नव बिधु बिमल तात जसु तोरा।'* (२। २०९। १) प्रताप सूर्य है, यथा—*'जब तें राम प्रताप खगेसा। उदित भयउ अति प्रबल दिनेसा॥ पूरि प्रकास रहेउ तिहुँ लोका।'* (७। ३१) [पुरुषसिंह अर्थात् पराक्रमी कहकर फिर *'तिहुँ पुर उजिआरे'* कहनेका भाव कि इन्होंने अपने सामर्थ्यसे प्राप्त यश-प्रतापसे तीनों लोकोंमें उजाला कर दिया है, किसी दूसरेकी सहायतासे नहीं। इस चौपाईकी व्याख्या अगली चौपाईमें है। (प्र० सं०)]

टिप्पणी—३ *'जिन्ह के जस प्रताप के आगें।……'* इति। (क) यशकी उपमा शशि (चन्द्रमा) है और प्रतापकी

उपमा रवि (सूर्य) है। प्रमाण ऊपर दे चुके हैं। भाव यह कि जिनका यश और प्रताप ऐसा है, उनके स्वरूपकी कौन कहे? पूर्वकथित *'बिश्व बिभूषन'* का अभिप्राय यहाँ स्पष्ट किया। सूर्य और चन्द्रमा विश्वके भूषण हैं और श्रीराम-लक्ष्मणजी विश्वके विशेष भूषण है, क्योंकि इनके यश-प्रतापके आगे शशि मलिन और सूर्य शीतल लगते हैं। यहाँ यश और प्रताप श्रीराम-लक्ष्मणजीकी 'जुन्हाई' (चन्द्रिका, चाँदनी) और तेज हैं, जिनके आगे स्वयं चन्द्रमा मलिन और स्वयं सूर्य शीतल लगता है। यहाँ यह नहीं कहा है कि श्रीराम-लक्ष्मणके यशके आगे चन्द्रमाकी चन्द्रिका मलिन और प्रतापके आगे सूर्यका तेज शीतल लगता है, किन्तु स्वयं चन्द्रमाका मलिन और स्वयं सूर्यका शीतल होना कहा है। यश उज्ज्वल है, इसीसे शशिका मलिन लगना कहा और प्रताप तीव्र है, इसीसे रविका शीतल लगना कहा। [यशके प्रकाशसे चन्द्रमा लज्जित होते हैं और प्रतापके तेजसे सूर्य लज्जित होते हैं, तब और कौन ऐसा है जो इनका सामना करे ? (प्र० सं०)]

सन्त श्रीगुरुसहायलालजी—यशके आगे चन्द्रमा मलिन हो गया। धनुष-यज्ञमें बंदी-वचन है कि *'नृप भुजबल बिधु सिवधनु राहू'।* अतः राजाओंकी भुजाओंका बल चन्द्रमा हुआ जो बहुत प्रज्वलित था, वह शूरता जाती रही, उनकी यह दशा हुई कि श्रीहत हो गये। यथा—*'श्रीहत भये भूप धनु टूटे।'* और रविरूप प्रबल प्रतापवाले परशुराम थे—*'आये भृगुकुल कमल पतंगा।'* सो इनके प्रतापके आगे उनकी यह दशा हुई कि बहुत प्रार्थना करते हुए अपराध क्षमा कराने लगे—*'छमहु छमा मंदिर दोउ भ्राता।'* वे सूर्य इनके आगे ठण्डे पड़ गये। (मा० त० वि०)

प० प० प्र०—सूर्य केवल दिनमें प्रकाश देता है, उसकी प्रचण्ड किरणोंको कोई-कोई सह भी लेते हैं, वह केवल ताप देता है इत्यादि, पर श्रीराम-लक्ष्मण अहर्निश प्रकाशक हैं, उनका तेज-प्रताप कोई भी शत्रु सह नहीं सकता, ये ताप और शीतलता दोनों दे सकते हैं। (शशिके अवगुण *'दिन मलीन सकलंक'* में कहे गये हैं। श्रीरामजीका यश निर्मल है) इत्यादि।

टिप्पणी—४ *'तिन्ह कहँ कहिअ नाथ किमि चीन्हे।'''''* इति। (क) यह श्रीदशरथजीके *'कहहु बिदेह कवन बिधि जाने'* का उत्तर है। दोनों भाइयोंकी यह प्रशंसा की। दोनों भाइयोंके जाननेकी विधि 'दीपक' है, क्योंकि राजाने पूछा है कि 'कौन प्रकारसे जाने।' भाव यह कि जैसे सूर्यको पहचाननेके लिये किसी विधिकी आवश्यकता नहीं, वैसे ही श्रीराम-लक्ष्मणजीको जाननेमें किसी विधिकी जरूरत नहीं। दोनों सूर्यके समान उदय (उदित) हुए हैं, यथा—*'उदित उदय गिरि मंच पर रघुबर बाल पतंग।' (२५४)* इसीसे जनकजीने स्वयं ही पहचान लिया। यथा—*'ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय बेष धरि की सोइ आवा॥'* (१। २१६)

नोट—अथवा यों भी कह सकते हैं कि विदेह ज्ञानी हैं और ज्ञानको दीपककी उपमा देते ही हैं। छिपी हुई वस्तुको दीपकसे देखा जाता है, पर जो प्रत्यक्ष देख पड़ता है उसको थोड़े ही दीपकसे देखेंगे? दोनों भाइयोंका यश-प्रताप सूर्यवत् सबको प्रत्यक्ष देख पड़ता है, उसको कौन नहीं जानता जो किसीसे पूछनेकी जरूरत हो या किसी अन्य विधि (ज्ञान-दीपक आदि) की आवश्यकता होती। अथवा राजाने जो बहुत-से उपाय पहिचाननेके गिनाये, यथा—*'बय किसोर कौसिक मुनि साथा',* इत्यादि, ये सब दीपकके समान हैं। (प्र० सं०)

सीय स्वयंबर भूप अनेका। समिटे सुभट एक तें एका॥ ४॥
संभु सरासनु काहु न टारा। हारे सकल बीर बरिआरा॥ ५॥
तीनि लोक महँ जे भट मानी। सभ कै सकति संभु धनु भानी॥ ६॥

शब्दार्थ—**सरासनु** (शरासन)=धनुष। **बरिआरा** (बरियार)=बल+आर (प्रत्यय) ।=भारी बलवान्। बली वीर **सकति** (शक्ति)=ताकत, पराक्रम, बल। **सभ**=सब। **भानना**=भञ्जन करना, तोड़ना।

अर्थ—श्रीसीताजीके स्वयंवरमें अनेकों राजा और एक-से-एक (बढ़कर) भारी योद्धा एकत्रित

हुए॥ ४॥ (पर) शिवजीके धनुषको कोई हटा न सका। समस्त बलवान् वीर हार गये॥ ५॥ तीनों लोकोंमें जो-जो अभिमानी योद्धा थे उन सबोंकी शक्ति शिव-धनुषने तोड़ डाली॥ ६॥

टिप्पणी—१ (क) दूतोंने जो श्रीरामजीकी प्रशंसा की उसका अब स्वरूप दिखाते हैं। (ख) ***'सीय स्वयंबर'*** यह राजाओंके एकत्र होनेका हेतु (कारण) बताया। (ग) ***'भूप अनेका'*** इति।—अनेक मुनियोंके अनेक मत हैं, कितने राजा आये इसमें मतभेद है। अत: गोस्वामीजीने संख्या न देकर सबके मतकी रक्षा की। ***'अनेका'*** पदमें सबकी समायी है, खण्डन किसीका नहीं, यह पण्डिताई है। ***'अनेका'*** कहकर जनाया कि हमलोग राजाओंकी संख्या नहीं कह सकते, जितने राजा सुभट थे वे सब आये (घ) ***'समिटे'*** से जनाया कि राजाओंका, समाज (एकत्रित) हुआ, जो आवे वह उठावे और चला जाय ऐसा नहीं हुआ। [***'समिटे'*** में चारों ओरसे बटुरने (आने) का भाव है। चारों ओरसे बराबर आते गये और एकत्र हुए। दोनों बातोंका इसमें समावेश है। यथा—***'समिटि समिटि जल भरहिं तलावा।'*** (४। १४) जब विश्वामित्रजी जनकपुर पहुँचे तब भी बहुत-से राजा आ चुके थे, यथा—***'पुर बाहेर सर सरित समीपा। उतरे जहँ तहँ बिपुल महीपा॥'*** (२१४। ४) और अभी स्वयंवरके कम-से-कम दो दिन शेष हैं। एक दिन नगर-दर्शन हुआ। एक दिन पुष्पवाटिकावाली लीला हुई। उसके बाद स्वयंवर हुआ। इसलिये प्रथम संस्करणमें जो 'एक ही दिन सबका जुट आना' लिखा गया वह ठीक नहीं जान पड़ता। ***'एक तें एका'*** दोनों ओर लगता है, एक-से-एक अधिक बलवान् हैं। और आगेके चरणके साथ लेनेसे इससे यह भी भाव निकलता है कि एकने उठाना चाहा, उससे न उठा तब दूसरा चला कि हम अधिक बलवान् हैं, हम उठा लेंगे... इस रीतिसे सबने उठाना चाहा पर सब हार गये। तब सबने मिलकर उठानेकी कोशिश की।]

टिप्पणी—२ ***'संभु सरासनु काहु न टारा।'***····' इति। (क) प्रथम दोनों भाइयोंको सूर्य कहा, यथा—***'देखिअ रबि कि दीप कर लीन्हें।'*** अब सूर्यका धर्म कहते हैं। धनुष तम है, श्रीरामजी सूर्य हैं, उन्होंने बिना श्रम धनुषरूपी तमका नाश किया। सब राजा नक्षत्रोंके समान हैं, नक्षत्रोंसे अन्धकार दूर नहीं हो सकता; सूर्यहीसे वह नष्ट होता है। यथा—***'नृप सब नखत करहिं उजिआरी। टारि न सकहिं चाप तम भारी॥', 'उएउ भानु बिनु श्रम तम नासा।'*** (१। २३९) ☞***'सीय स्वयंबर····भानी'*** ये बातें चिट्ठीमें नहीं लिखी थीं, लिखी होतीं तो दूत क्यों कहते? (ख)—***'टारा'*** कहकर जनाया कि किंचित् न टसका सके, उठाना तो दूर रहा, यथा—***'रहौ चढ़ाउब तोरब भाई। तिलु भरि भूमि न सके छड़ाई।'*** (२५२। २) क्यों न उठा? इसका हेतु ***'संभु सरासनु'*** पदसे कहा दिया। अर्थात् यह ईश्वरका धनुष है, इसीसे किसीके टाले न टला। (ग) ***'हारे'*** अर्थात् उठा न सके। (दूसरा भाव यह भी है कि जैसे जुएमें हार-जीत होती है, वैसे ही ये धनु-भञ्जनरूपी जुएमें शम्भुशरासनके हाथ अपनी भारी कीर्ति-विजयवीरता आदिकी बाजी हार गये। यथा—***'कीरति बिजय बीरता भारी। चले चाप कर बरबस हारी॥'*** (२५१। ४) (घ) ***'हारे सकल'***—भाव कि प्रत्येक सुभट इसी आशासे उठाने गया कि इनसे नहीं उठा, हम इनसे अधिक भारी वीर हैं, हम उठा लेंगे। इस प्रकार प्रत्येक भट एक-एक करके हारा। फिर ***'सकल'*** वीर हारे अर्थात् सब एक साथ उठाने गये पर न उठा सके। यथा—***'भूप सहस दस एकहि बारा। लगे उठावन टरै न टारा॥'*** (२५१। १) (ङ) ***'बीर बरिआरा'*** कहकर जनाया कि बहुत बल कर-करके भी वे तिलभर भी न हटा सके। इससे श्रीरामजीकी बड़ाई करते हैं कि ऐसे वीरोंसे भी जो न टला उसे श्रीरामजीने उठाया और तोड़ा।

टिप्पणी—३ ***'तीनि लोक महँ जे भट मानी।'***····' इति। (क) ***'तीनि लोक'*** कहकर जनाया कि राजाओंके समाजमें देवता और दैत्य भी आये थे। यथा—***'देव दनुज धरि मनुज सरीरा। बिपुल बीर आए रनधीरा॥'*** (२५१। ८) (ख) ***'भट मानी'***। (अर्थात् जिनको अपने बल-पराक्रमका अभिमान था कि हमारे समान कोई नहीं है, वे सब आये थे और सब बन्दीजनके वचन सुनकर बड़े ***'मर्ष'*** और अभिमानसे धनुष उठानेके लिये उठे थे। यथा—***'सुनि पन सकल भूप अभिलाषे। भट मानी अतिसय मन माषे॥ परिकर बाँधि

उठे *अकुलाई।*' (२५०। ५-६) उन मानी भटोंकी क्या दशा हुई यह आगे कहते हैं—'*सभ कै सकति संभु धनु भानी।*' अर्थात् गये तो थे ये धनुष तोड़नेको सो वे तो उसे तोड़ न सके प्रत्युत धनुषने ही उनकी शक्तिको नष्ट कर डाला। तात्पर्य कि भट धनुषका कुछ न कर सके। '*भानी*' 'भ्रष्ट' का अपभ्रंश है। ('भंजन' से बना हुआ जान पड़ता है।)

सकै उठाइ सरासुर* मेरू। सोउ हिय हारि गयेउ करि फेरू॥ ७॥
जेहिं कौतुक सिवसैलु उठावा। सोउ तेंहि सभा पराभउ पावा॥ ८॥

अर्थ—जो बाणासुर सुमेरु पर्वत उठा सकता है वह भी हृदयसे हार (मान) कर परिक्रमा करके चला गया॥ ७॥ जिसने खेलहीसे शिवजीके पर्वत कैलासको उठा लिया, उसने भी उस सभामें हार पायी॥ ८॥

टिप्पणी—१ '*सकै उठाइ*' अर्थात् वह सुमेरुको उठा सकता है, यद्यपि कभी उठाया नहीं है। '*हिय हारि*' अर्थात् हृदयसे ही हार गया, धनुष तोड़नेकी इच्छा (वा साहस) न हुई। '*गयेउ करि फेरू*' अर्थात् हृदयसे हार जानेपर धनुषकी प्रदक्षिणा की और यह कहकर कि श्रीजानकीजी हमारी माता हैं, हम धनुष कैसे तोड़ें, चल दिया। हार माननेपर परिक्रमा की, इससे सिद्ध हुआ कि उसने श्रीसीताजीमें माता-भाव मानकर परिक्रमा नहीं की, किंतु यह बहाना किया। यही गँवसे सिधारना है, जो बन्दी लोगोंने पूर्व कहा है, यथा—'*रावनु बानु महाभट भारे। देखि सरासन गँवहि सिधारे॥*' (२५०। २) हृदयसे हारकर चला गया, इससे यह भी जनाया कि उसने धनुषको हाथसे नहीं छुआ। यथा—'*रावन बान छुआ नहिं चापा।*' (२५६। ३)

टिप्पणी—२ '*जेहि कौतुक सिवसैलु उठावा।*······' इति। (क) इस प्रसङ्गमें सबका 'हारना' कहा है; यथा—'*हारे सकल बीर बरिआरा*', '*सोउ हिय हारि गयेउ करि फेरू*' और यहाँ भी '*सोउ*······*पराभउ पावा*'। सुमेरु और कैलासके उठानेवाले धनुषको उठा न सके, इससे जनाया कि धनुष सुमेरु और कैलाससे भी अधिक भारी था। (ख) दूतोंके वर्णनसे पाया गया कि भट, सुभट और महाभट सभी धनुष उठाने गये थे। यथा—'*तीनि लोक महँ जे भट मानी।*······', '*सीय स्वयंबर भूप अनेका। समिटे सुभट एक तें एका॥*' रावण और बाणासुर महाभट हैं, यथा—'*रावन बान महाभट भारे।*' (२५०। २)

दो०—तहाँ राम रघुबंसमनि सुनिअ महामहिपाल।
भंजेउ चाप प्रयास बिनु जिमि गज पंकज नाल॥ २९२॥

अर्थ—(उस स्वयंवरमें जहाँ ऐसे-ऐसे महाभट हार मान गये) वहाँ, हे महाराजाधिराज ! सुनिये, रघुकुलशिरोमणि श्रीरामजीने धनुषको बिना परिश्रमके ऐसे तोड़ डाला जैसे हाथी कमलकी दण्डीको (तोड़ डाले)॥ २९२॥

---

* सं० १६६१ की प्रतिमें 'सुरासुर' पाठ है। १७०४, १७६२, को० रा० तथा ना० प्र० सभाने भी 'सुरासुर' पाठ रखा है। अन्य सब प्रतियोंमें 'सुरासुर' पाठ है। 'सुरासुर'—देवता और असुर। देवता और दैत्य सभी स्वयंवरमें नरवेषसे आये थे। देवता-दैत्य सबने मिलकर क्षीरसमुद्रमन्थनके लिये मन्दराचल उठाया भी था। इससे 'सुरासुर' पाठ भी ठीक हो सकता है। हमने 'सरासुर' पाठको समीचीन इस विचारसे समझकर लिया कि धनुर्भङ्गके प्रसंगमें इस ग्रन्थमें तथा कविके अन्य ग्रन्थोंमें भी 'बाणासुर' का नाम बराबर कई स्थलोंमें आया है। यथा—'रावनु बानु महाभट भारे। देखि सरासन गँवहि सिधारे॥'(२५०। २) 'रावन बान छुआ नहिं चापा। हारे सकल भूप करि दापा॥' (२५६। ३) 'बान जातुधानपति भूप दीप सातहूके, लोकप बिलोकत पिनाक भूमि लई है।' (गीतावली १। ८४) 'बान बलवान जातुधानप सरीखे सूर जिन्हके गुमान सदा सालिम संग्रामको।' (क० १। ९) यद्यपि सुमेरु पर्वतके उठानेकी कोई कथा हमें उसके प्रसंगकी मालूम नहीं है, पर देवता-दैत्योंका भी सुमेरुपर्वतको उठाना कहीं नहीं मिलता। और यहाँ पाठ 'सकै उठाइ' है जिसका अर्थ यह नहीं है कि मेरुको उठाया है, किन्तु मेरुको उठानेकी उसमें शक्ति है, यही अर्थ है। फिर यहाँ 'सकै', 'सोउ' और 'भयेउ' ये तीनों एक वचन हैं और सत्योपाख्यानमें बाणासुरका परिक्रमा करके चला जाना कहा भी गया है जो यहाँ दूत भी कह रहे हैं। अतएव प्रसङ्गानुकूल यही पाठ ठीक जँचता है।

टिप्पणी—१ (क) *'राम रघुबंसमनि'* दोनों भाई रघुवंशमणि हैं (यथा—**'मायामानुषरूपिणौ रघुवरौ'** (कि० मं० १) इसीसे *'राम रघुबंसमनि'* कहकर ब्योरा करते हैं कि श्रीरामजीने धनुष तोड़ा। (ख)—*'सुनिअ महामहिपाल'* इति। *महामहिपाल*=सब राजाओंका राजा चक्रवर्ती महाराज। यही सम्बोधन प्रथम कह आये हैं। यथा—*'सुनहु महीपति मुकुटमनि'।* जहाँ-जहाँ राजाकी बड़ाई हुई वहाँ-वहाँ बड़ाईका सम्बोधन देते हैं। जब राम-लक्ष्मणजी पुत्र हुए तब राजाकी बड़ाई हुई, इसीसे वहाँ बड़ाईका सम्बोधन *'महीपति मुकुटमनि'* दिया। यथा—*'सुनहु महीपति मुकुटमनि……। राम लषन जाके तनय…'।* जब श्रीरामजीने धनुष तोड़ा तब भी राजाकी बड़ाई हुई, इसीसे यहाँ भी बड़ाईका सम्बोधन *'महा महिपाल'* दिया। [उपक्रममें कहा था—*'सुनहु महीपति मुकुटमनि'* और उपसंहारमें *'महामहिपाल'*। जहाँ ग्रन्थकार चक्रवर्ती महाराजकी बड़ाई करते हैं वहाँ उसका कारण भी लिख देते हैं। *'महीपति मुकुटमनि'* के साथ *'तुम्ह सम धन्य न कोउ। राम लषन जाके तनय……'* कहा और यहाँ *'महामहिपाल'* कहकर उसका कारण *'तहाँ राम रघुबंसमनि……। भंजेउ चाप प्रयास बिनु……'* कहा। *'प्रयासु बिनु'* से जनाया कि और सब राजा बहुत परिश्रम करनेपर भी सफल न हुए। *'छुअत टूट रघुपतिहु न दोसू।'* (२७२। ३) *'छुअतहिं टूट पिनाक पुराना। मैं केहि हेतु करौं अभिमाना॥'* (२८३। ८) यही *'प्रयासु बिनु'* भंजन करना है। (मा० पी० प्र० सं०)] (ग) पूर्व श्रीरामजीको सूर्य कहा—*'बिश्वबिभूषन दोउ'।* अब सूर्यका धर्म कहते हैं। सूर्योदयसे तमका नाश, वैसे ही श्रीरामजीसे 'धनुष तम' का बिना परिश्रम नाश। [मिलान कीजिये—*'तहाँ दसरथके समर्थ नाथ तुलसी के, चपरि चढ़ायो चाप चंद्रमा ललामको॥'* (क० ८। ९)]

टिप्पणी—२ (क) *'जिमि गज पंकज नाल'* इति। इस कथनसे श्रीजनकपुरवासियोंकी प्रार्थना चरितार्थ की। *'चलत राम सब पुर नर नारी। पुलक पूरि तन भये सुखारी॥ बंदि पितर सुर सुकृत सँभारे। जौं कछु पुन्य प्रभाउ हमारे। तौ सिवधनु मृनाल की नाईं। तोरहु राम गनेस गोसाईं॥'* (२५५। ६-९)—मिथिलावासियोंकी इस प्रार्थनाकी सिद्धि *'यहाँ भंजेउ…जिमि गज पंकज नाल'* कहकर दिखायी। 'मृणाल' का अर्थ 'कमलनाल' है। (ख) रावण और बाणासुरके सम्बन्धमें धनुषका उठाना कहा, इसीसे वहाँ कैलास और सुमेरुका 'उठाना' कहा, यथा—*'जेहि कौतुक सिव सैल उठावा', 'सके उठाइ सरासुर मेरू'।* और श्रीरामजी धनुष तोड़ने जा रहे हैं; यथा—*'उठहु राम भंजहु भव चापा।'* (२५४। ६) *'राम चहहिं संकर धनु तोरा। होहु सजग सुनि आयेसु मोरा॥'* (२६०। २) इसीसे *'कमल नाल की नाईं'* तोड़नेकी प्रार्थना की गयी; कमलनाल तोड़ने योग्य है। [दूत भी उन मिथिलावासियोंमेंसे हैं जो मना रहे थे कि श्रीरामजी धनुषको कमलनालकी तरह तोड़ डालें, वही अबतक उनके मनमें भरा हुआ है। इसीसे वही हृदयके उद्गार यहाँ उन्होंने प्रकट कर दिये। *'भंजेउ प्रयास बिनु'* इस साधारण बातको *'जिमि गज पंकज नाल'* इस विशेषसे समता दिखा रहे हैं। गजेन्द्र कमलनालको सहज ही तोड़ डालता है। जैसे वह उसका खेल है वैसे ही श्रीरामजीने सहज ही खेल-सरीखा तोड़ डाला। यहाँ उदाहरण 'अलङ्कार' है।]

सुनि सरोष भृगुनायकु आए। बहुत भाँति तिन्ह आँखि देखाए॥ १॥
देखि राम बलु निज धनु दीन्हा। करि बहु बिनय गवनु बन कीन्हा॥ २॥
राजन रामु अतुल बल जैसें। तेजनिधान लषनु पुनि तैसें॥ ३॥

अर्थ—(धनुर्भङ्गको) सुनकर परशुरामजी क्रोधभरे आये और उन्होंने बहुत तरह आँख दिखायी॥ १॥ श्रीरामजीका बल देखकर उन्होंने अपना धनुष दिया और बहुत विनती करके वनको चलते हुए॥ २॥ हे राजन्! जैसे श्रीरामजी अतुलित बली हैं वैसे तेजनिधान (तेजस्वी) फिर लक्ष्मणजी भी हैं॥ ३॥

टिप्पणी—१ *'सुनि सरोष……'* इति। (क) प्रथम धनुर्भङ्ग कहा—*'भंजेउ चाप प्रयास बिनु…'।* उस समय धनुषका भङ्ग सुनकर परशुरामजीका आना कहा, इसीसे *'सुनि'* पद दिया। यथा—*'तेहि अवसर सुनि

सिव धनुभंगा। आएउ भृगुकुल कमल पतंगा॥' (२६८। २) (ख) *'सरोष आए'* इसीसे *'भृगुनायक'* कहा। भाव कि जैसे भृगुजी क्रोध करके भगवान्‌के पास (उनको मारने) गये थे, वैसे ही ये क्रोधसहित (श्रीरामजीको मारने) आये थे। (ग) *'बहुत भाँति'* अर्थात् कटु वचन कहकर, परशु दिखाकर अपनी वीरता कहकर। *'आँखि देखाए'* अर्थात् कुछ करते न बन पड़ा, यथा—*'बहै न हाथु दहै रिस छाती।'* (२८०। १)

नोट—१ *'बहुत भाँति'* आँख दिखाना यह है कि पहले साधारण डाँटफटकार की, फिर फरसाकी ओर देखकर अपना स्वभाव कहकर धमकाया और फरसा दिखाकर अपना भुजबल तथा परशु-बल कहकर धमकी दी, यथा—*'रे नृप बालक कालबस बोलत तोहि न सँभार।'* (२७१) *'बोले चितै परसु की ओरा। रे सठ सुनेहि सुभाव न मोरा॥''' परसु बिलोकु महीप कुमारा॥''' गर्भन्ह के अर्भक दलन परसु मोर अति घोर।'* (२७२) फिर भी बस न चला तब विश्वामित्रजीसे निहोरा करते हुए आँख दिखायी। यथा—*'तुम्ह हटकहु जौं चहहु उबारा। कहि प्रतापु बलु रोषु हमारा॥'* (२७४। १। ४) फिर फरसेको कंधेपर रखकर सभी लोगोंको सम्बोधन करते हुए मारनेकी धमकी दी। बीच-बीचमें श्रीरामजीको निहोरा देकर धमकी देते रहे, यथा--*'बोले रामहिं देइ निहोरा।''''''''* *'राम तोर भ्राता बड़ पापी।'* कभी कुठारकी गति कहकर आँख दिखायी, यथा—*'गर्भ स्रवहिं अवनिपरवनि सुनि कुठारु गति घोर।'* (२७९) इसी तरह प्रसङ्गभरमें देख लीजिये। जनक महाराजका भी निहोरा करके आँख दिखायी और अन्तमें तो श्रीरामजीसे ही बिगड़कर उनको आँख दिखाने लगे। यथा—*'निपटहि द्विज करि जानहि मोही। मैं जस बिप्र सुनावौं तोही॥ चाप स्रुवा सर आहुति जानू।'* से *अहमिति मनहुँ जीति जग ठाढ़ा'* तक (२८३ । १—६)। कवितावलीके *'काल कराल नृपालनके धनुभंग सुने फरसा लिये धाए। लक्खन राम बिलोकि सप्रेम महारिसि ते फिरि आँखि देखाए॥ धीर सिरोमनि बीर बड़े बिनई बिजई रघुनाथ सुहाए। लायक हे भृगुनायक सो धनुसायक सौंपि सुभाय सिधाये॥'* (१। २२) से मिलान कीजिये। यहाँ भी आँख दिखाना कहा है। 'आँख दिखाना' मुहावरा है। इसका अर्थ है—'क्रोधसे आँखें निकालकर देखना; क्रोधकी दृष्टिसे देखना; कोप जताना।'; यथा—*'जानइ ब्रह्म सो बिप्र बर आँखि देखावहिं डाँटि'।* यहाँ भी परशुरामजी अपना कोप जताते रहे, कुछ कर न पाये । *'रिस तन जरै होइ बल हानी'* (२७८। ६), *'बहै न हाथु''''''''*

टिप्पणी—२ *'देखि राम बलु'''* 'इति। (क) विष्णुका धनुष देकर श्रीरामजीका बल देखा; यथा—*'राम रमापति कर धनु लेहू। खैंचहु मिटै मोर संदेहू॥ देत चापु आपुहि चलि गयऊ।'* (२८४। ७-८) तब अपना धनुष दे दिया। तात्पर्य कि निरायुध होकर चले गये। अपना धनुष (अस्त्र-शस्त्र) शत्रुको दे देना अपनी पूरी हार स्वीकार करना है। आज भी वीर शत्रु या फौज हथियार हाथसे डालकर अपनी पूर्ण हार मान लेती है। दूतोंने धनुष देते देखा है, इसीसे वे उस विष्णु-धनुषको परशुरामजीका *'निज'* धनुष, कहते हैं और इस तरह उनकी पूर्ण पराजय दिखाते हैं। (बैजनाथजीका मत है कि वाग्विलास होतेमें ही रामजीमें अतुलित बल देखकर तब अपना धनुष-परशु देकर विनती करके चले गये। और किसीका मत है कि शार्ङ्गधनुषके चढ़ जानेपर फिर अपना धनुष भी दे दिया।) (ख) *'करि बहु बिनय'*—दूतोंने स्तुति सुनी है, इसीसे कहते हैं कि बहुत विनती की। बहुत विनयका कारण पहले ही कह चुके कि *'बहुत भाँति तिन्ह आँखि देखाए'* इसीसे अपराध क्षमा करानेके लिये बहुत विनती की, यथा—*'अनुचित बहुत कहेउँ अज्ञाता। छमहु छमामंदिर दोउ भ्राता॥'* (२८५। ६) (ग) *'गवन बनु कीन्हा'*—धनुष चढ़ानेपर तपसे अर्जित उनके समस्त पुण्यलोकोंका नाश कर दिया गया था, इसीसे वे फिर उन लोकोंकी प्राप्तिके लिये तपस्या करनेके लिये वनको गये, यथा—*'भृगुपति गए बनहिं तप हेतू।'* विशेष २८५ (७), २८४ (८) में देखिये।

टिप्पणी—३ *'राजन राम अतुल बल जैसे'''* ' इति। (क) अतुल बली और तेजनिधान दोनों भाई हैं, यथा—*'सुनु पति जिन्हहिं मिलेउ सुग्रीवा। ते दोउ बंधु तेज बल सींवा॥'* (४। ७। २८) पर दूतोंने धनुष तोड़नेमें श्रीरामजीका बल देखा है—*'तहाँ राम रघुबंसमनि ''''' भंजेउ'''''*', इसीसे उनको *'अतुल बल'* कहते हैं। और लक्ष्मणजीका तेज देखा है कि पृथ्वी काँप उठी, दिग्गज डगमगा गये, यथा—*'लखन

सकोप बचन जे बोले। डगमगानि महि दिग्गज डोले॥ सकल लोग सब भूप डेराने।' (२५४। १-२) इसीसे लक्ष्मणजीको तेजनिधान कहते हैं। आगे तेज दिखाते हैं—'*कंपहि भूप……।*'

कंपहिं भूप बिलोकत जाकें। जिमि गज हरि किसोर के ताकें॥ ४॥
देव देखि तव बालक दोऊ। अब न आँखि तर आवत कोऊ॥ ५॥

शब्दार्थ—**हरि**=सिंह। **किसोर** (किशोर)=बच्चा। '**आँख तले आना**'=कुछ समझ पड़ना। आँख तले नहीं आते=सब लघु या तुच्छ समझ पड़ते हैं।

अर्थ—जिसके देखने-(दृष्टिमात्र-) से राजा लोग ऐसे काँपने लगते हैं, जैसे सिंहके बच्चेके ताकनेपर हाथी (काँपने लगता है)॥ ४॥ हे देव (नरदेव)! आपके दोनों पुत्रोंको देखकर अब कोई आँखके तले नहीं आता॥ ५॥

टिप्पणी—१ '*कंपहिं भूप……*' इति। (क) यह बात दूत अपने आँखों देखी कहते हैं, यथा—'*अरुन नयन भृकुटी कुटिल चितवत नृपन्ह सकोप। मनहुँ मत्त गजगन निरखि सिंघ किसोरहिं चोप॥*' (२१६) गीतावलीमें भी धनुर्भङ्गके पश्चात् राजाओंके कोलाहलसे पुरवासियोंको डरा हुआ देख लक्ष्मणजीने सबको धीरज दिया और त्योरी चढ़ायी है। जैसे मानसमें, यथा—'*जानि पुरजन त्रसे धीर दे लषन हँसे ……॥ २॥ कुँवर चढ़ाई भौंहैं, अब को बिलोकै सौंहैं, जहँ तहँ भे अचेत, खेतके-से धोखे हैं। देखे नर नारि साग खाइ जाए माई, बाहु पीन पाँवरनि पीना खाइ पोखे हैं।*' (गी० १। ९५) (ख) उपमेय श्रीलक्ष्मणजी किशोरावस्थाके हैं, यथा—'*बय किसोर सुखमा सदन स्याम गौर सुखधाम॥*' (२२०) अतः किशोर सिंहहीकी उपमा दी गयी। (ग)—इस चौपाईमें लक्ष्मणजीका तेज दिखाया और यह भी सूचित किया कि धनुर्भङ्गके पश्चात् राजा लोग श्रीरामजीसे लड़नेको तैयार हुए थे, परन्तु लक्ष्मणजीकी क्रोध-दृष्टि देखकर काँपने लगे। (घ) शंका—राजाओंपर क्रूरदृष्टि पहले हुई और परशुरामजी पीछे आये, अर्थात् यह प्रसङ्ग धनुर्भङ्गके तुरन्त बादका है, तत्पश्चात् परशुराम-आगमन हुआ, पर यहाँ क्रमभङ्ग हुआ, अर्थात् परशुरामका आगमन प्रथम कहा गया तब राजाओंका लक्ष्मणके तेजसे डरना, यह क्यों? समाधान—प्रथम श्रीरामजीका बल कहते हैं। धनुषका तोड़ना और परशुरामजीको जीतना 'श्रीरामजीका बल' है। पीछे लक्ष्मणजीका तेज कहते हैं, राजाओंका भयभीत होना 'श्रीलक्ष्मणजीका तेज' है। इसीसे क्रमभङ्ग हुआ। (ङ) '*जिमि गज हरिकिसोर के ताकें*' के भाव दोहा २१६ में देखिये।

टिप्पणी—२ '*देव देखि तव बालक दोऊ।……*' इति। (क) राजाने जो पूछा था कि 'तुमने हमारे पुत्रोंको अपनी आँखोंसे अच्छी तरह देखा है!—'*तुम्ह नीकें निज नयन निहारे*', उसीका यहाँ उत्तर भी देते हैं और उनकी बड़ाई भी करते हैं। (ख) '*देव*' का भाव कि जिनके बालक ऐसे हैं, उन आपकी क्या कही जाय; आप तो दिव्य हैं, देवरूप हैं। (ग) '*अब न आँखि तर आवत कोऊ*' अर्थात् इनके समान अब कोई नहीं देख पड़ता। पुनः, देव=नरदेव=नरेश। जबतक आपके पुत्रोंको न देखा था तबतक पृथ्वीपर और लोग भी वीर एवं तेजस्वी जान पड़ते थे, पर अब आँख तले कोई और वीर जँचता ही नहीं। यह '*तुम्ह नीके निज नयन निहारे*' का उत्तर है। अब आँख तले कोई नहीं आता इसका कारण यह है कि वे तो सूर्यरूप हैं, जैसा पूर्व कह आये—'*देखिय रबि कि दीप कर लीन्हें।*' सूर्यके देखनेवालेको और सब अन्धकारमय हो जाता है, उसे तो सूर्य ही दिखायी देगा—(नोट—गोस्वामीजीके सम्बन्धमें भी ऐसा ही कहा जाता है कि जब सलीमने आपसे कहा कि 'सूरदासजी आदि महात्मा तो मेरे पिताके पास आते-जाते हैं, आप क्यों नहीं चलते?' तो उन्होंने उत्तर दिया कि वे चन्द्रवंशीके उपासक हैं; जिसने चन्द्रमासे आँखें लड़ाई वह दूसरी ओर देख सकता है, पर मैं भानुकुलनायकका उपासक हूँ। सूर्यसे आँखें मिलानेवालेको संसारमें अन्धकार ही है, दूसरेपर उसकी दृष्टि ही नहीं जा

सकती] (घ) यहाँ दूत दोनों भाइयोंके किसी गुणका नाम नहीं लेते, क्योंकि ये दोनों तो गुणोंके समुद्र हैं, इनके समान एक भी गुणवाला कोई नहीं देख पड़ता, न तो कोई ऐसा बलवान् है, यथा—*'जेहि समान अतिसय नहिं कोई।'* (३। ६) [*'सुनहु महीपति····'* इस प्रेमरसपूर्ण वचनसे उपक्रम करके *'अब न आँखि तर····'* इस प्रेमपूर्ण वचनपर उपसंहार करके बताया कि श्रीराम-लक्ष्मणके दर्शनसे जीव प्रथम प्रेमरसमें पड़ता है, बीचमें उसे प्रतापादिका दर्शन होता है, जिससे प्रेमकी वृद्धि होती है और अन्तमें वह प्रेमरसमें मग्न होता है। (प० प० प्र०)]

दूत बचन रचना प्रिय लागी। प्रेम प्रताप बीर रस पागी॥ ६॥
सभा समेत राउ अनुरागे। दूतन्ह देन निछावरि लागे॥ ७॥
कहि अनीति तें मूँदहिं काना। धरमु बिचारि सबहि सुखु माना॥ ८॥

शब्दार्थ—**'रचना'**=युक्ति और बड़ी होशियारीसे तरतीबसे आयोजित या कहे हुए। बात कहनेका तर्ज-तरीका, ढंग, लचीले शब्द-अदब-कायदा भी रखे हुए उनका अदा करना इत्यादि। **'पागी'**=सनी, लपटी।

अर्थ—दूतोंके प्रेम-प्रताप और वीररसमें पगे हुए वचनोंकी रचना प्रिय लगी॥ ६॥ सभासहित राजा प्रेममें मग्न हो गये और दूतोंको निछावर देने लगे॥ ७॥ तब वे ऐसा कहते हुए कि यह अनीति है (हाथोंसे) कान बन्द कर लेते हैं। धर्मको समझकर सभीने सुख माना॥ ८॥

टिप्पणी—१ *'दूत बचन रचना····'* इति। (क) वचन प्रिय लगनेके दो कारण यहाँ बताते हैं। चक्रवर्ती महाराज ऐसे मधुर मनोहर वचन बोले कि दूतोंको प्रिय लगे, यथा—*'सुनि प्रिय बचन दूत मुसुकाने।'* (२९१ । १) उनके वचन सुनकर दूत भी बहुत अच्छी वचन-रचनासे बोले (अर्थात् वचन बड़े ही युक्तिपूर्ण थे, बड़ी चतुरतासे सिलसिलेसे, जैसा क्रम चाहिये वैसे कहे गये थे। बोलनेका ढंग, लचीले शब्द और अदब-कायदा-सभ्यताको लिये हुए कहे गये थे। उदाहरण, लोकोक्ति आदिके साथ बड़े सुन्दर थे)। इसीसे इनके वचन सभाभरको प्रिय लगे। दूसरे, वचन *'प्रेम प्रताप बीररस'* में पगे हुए हैं, इससे प्रिय लगे। (ख) *'प्रेम प्रताप बीररस'* इति, *'सुनहु महीपति मुकुटमनि तुम्ह सम धन्य न कोउ। राम लखनु जिन्हके तनय बिश्व बिभूषन दोउ॥'* (२९१), *'पूछन जोगु न तनय तुम्हारे। पुरुषसिंघ तिहुँ पुर उजियारे॥'* यह प्रेम (में पगे हुए) हैं। *'जिन्हके जस प्रतापके आगे। ससि मलीन रबि सीतल लागे॥ तिन्ह कहँ कहिअ नाथ किमि चीन्हे। देखिअ रबि कि दीप कर लीन्हे॥'* यह प्रताप (में पगा हुआ) है। और *'सीय स्वयंबर भूप अनेका।'* से अन्ततक सब वीररसके वचन हैं। *'देव देखि तव बालक दोऊ। अब न आँखि तर आवत कोऊ॥'* यह दूतोंका प्रेम है। आदिमें राजाका प्रेम कहा और अन्तमें अपना प्रेम कहा। (ग) *'पागी'* इति। [पाग शक्कर, रस, चीनी, मिश्री आदि मीठेका बनता है। पाग-(चाशनी-) में जो पदार्थ साने जाते हैं वे भी मधुर लगते हैं। अतः इनके वचन भी मधुर और प्रिय हैं। प्रेम, प्रताप और वीरता ही रस, शक्कर आदि हैं, जिनमें वचन-रचना पागी गयी है।], [*'दूत बचन रचना प्रिय लागी'* से दूतोंके रामप्रेमकी विशेषता देख पड़ती है। दशरथजी पिता ही तो थे। (प० प० प्र०)]

टिप्पणी—२ *'सभा समेत राउ अनुरागे····'* इति। (क) *'सभा समेत अनुरागे'* अर्थात् युक्तिपूर्वक कहा हुआ यह सारा प्रसङ्ग सुनकर सबको बड़ा अनुराग हुआ। *'सभा समेत'* कहनेसे पाया गया कि सब अयोध्यावासी श्रीरामानुरागी हैं, इसीसे श्रीरामजीका वृत्तान्त सुनकर सब प्रेममें रँग गये। पुनः *'सभा समेत राउ'* से जनाया कि अनुरागमें राजाकी प्रधानता है और सब गौण हैं। [(ख) *'दूतन्ह देन निछावरि लागे'* इति। दूतोंने बहुत-सी प्रिय मङ्गलमयी बातें सुनायीं; अनेक विघ्नोंकी उपस्थिति और उनकी शान्ति सुनायी; धनुषका तोड़ना कह उससे जयमाल पड़ना सूचित किया इत्यादि, हर एक बातोंमेंसे प्रत्येक बात ऐसी थी कि उनपर न्योछावर दी जा सकती है और इस समय तो प्रेममें मग्न होनेसे भी सब योग्य ही है। फिर यह रीति ही है कि जो प्रथम अच्छी बात सुनाता है, उसीको लोग निछावर, बखशीश, इनाम देते हैं। यथा—*'प्रथम जाइ जिन्ह*

बचन सुनाए। भूषन बसन भूरि तिन्ह पाए॥' (२। १) (ग) जैसे धनुष टूटनेपर जनकपुर-वासियोंने न्यवछावर की थी, यथा—*'करहिं निछावर लोग सब हय गय धन मनि चीर॥'* (२६२) वैसे ही ये अवधवासी दूतोंसे वही प्रसङ्ग सुनकर निछावर देने लगे, इनके लिये तो मानो धनुष अभी टूटा और अभी जयमाल पड़ा। मुख्य कारण *'अनुरागे'* शब्दमें दिया गया। मङ्गलमोदके प्रेममें ऐसा होता ही है।] इससे जनाया कि धनुषका तोड़ना देखकर जो सुख जनकपुरवासियोंको हुआ, वही सुख धनुर्भङ्गका प्रसङ्ग सुनकर अवधवासियोंको हुआ।

नोट—१ *'कहि अनीति ते मूँदहिं काना।'''* ' इति। (क) *'अनीति'*—दूत श्रीजानकीजीको निज कन्या-समान जानते हैं, फिर बेटीका धन कैसे लें? अब भी भारतवर्षमें अनेक स्थानों और देशोंमें देखनेमें आता है कि जिस ग्रामकी कन्या कहीं ब्याही जाती है वहाँके लोग, कन्याकी ससुरालको अपनी ही कन्याकी ससुराल-सरीखी समझ, वहाँ जलतक नहीं पीते। यहाँ अपने राजाकी कन्या ब्याही गयी, इससे ये नहीं लेते। वाल्मीकीय सर्ग ६७ में मन्त्रियोंका राजा दशरथके पास भेजा जाना कहा गया है, यथा—**'कौशिकस्तु तथेत्याह राजा चाभाष्य मन्त्रिणः। अयोध्यां प्रेषयामास धर्मात्मा कृतशासनान्॥ यथावृत्तं समाख्यातुमानेतुं च नृपं तथा॥'** (२७) इनमें शतानन्दजी न थे, यह बात सर्ग ६८ से स्पष्ट हो जाती है, यथा—**'एवं विदेहाधिपतिर्मधुरं वाक्यमब्रवीत्। विश्वामित्राभ्यनुज्ञातः शतानन्दमते स्थितः॥'** (१३) अर्थात् महाराज मिथिलापति राजा जनकने विश्वामित्रजीकी आज्ञासे तथा शतानन्दजीकी सलाहसे यही मधुर वचन आपसे कहे हैं (यह दूतोंने श्रीचक्रवर्तीजीसे कहा है)। (ख) *'मूँदहि काना'* इति। कानपर हाथ धरके उसे बंद कर लेनेका भाव यह है कि यह बात ऐसी अनुचित है कि लेना तो दूर रहा, यह बात तो सुननी भी न चाहिये। 'कान मूँदना' मुहावरा है। ऐसा करनेसे कान बंद करनेवाला प्रस्तुत कार्य वा बातमें अपनी एकदम अस्वीकारता जनाता है। बिना मुखसे बोले ही उस बातसे इनकार करता है।

टिप्पणी—३ *'धरम बिचारि सबहि सुख माना'* इति। भाव यह कि दूतोंने यह मुखसे नहीं कहा कि जानकीजी हमारी कन्या लगती हैं, किन्तु इतना ही कहा कि अनीति है और अँगुलीसे कान बंद कर लिया; अतः सबने विचार किया कि निछावर न लेनेका कारण यह है कि ये जानकीजीको अपनी कन्या मानते हैं, यह धर्म विचारकर सबने सुख माना। 'सुख' माननेका भाव कि अयोध्यावासी सब धर्मात्मा हैं और धर्मात्माओंको धर्मका मार्ग प्रिय होता ही है, अतः धर्मकी बात जानकर उसमें सुख माना (पुनः इन शब्दोंसे यह भी प्रकट होता है कि सुख हुआ नहीं, सभासदोंने सुख मान लिया। निछावर न लेनेसे वे अप्रसन्न तो हो ही गये थे, पर धर्म विचारकर उन्होंने सुख माना। (प० प० प्र०)

दो०—तब उठि भूप बसिष्ठ कहुँ दीन्हि पत्रिका जाइ।
कथा सुनाई गुरहि सब सादर दूत बोलाइ॥ २९३॥

अर्थ—तब राजाने उठकर वसिष्ठजीके पास जाकर उनको पत्रिका दी और आदरपूर्वक दूतोंको बुलाकर गुरुजीको सब कथा सादर सुनवायी॥ २९३॥

टिप्पणी—१ (क) *'तब उठि'* इति। दूत जब सभामें आये थे तब राजाने स्वयं आसनसे उठकर उनसे पत्रिका ली थी, यथा—*'मुदित महीप आपु उठि लीन्ही'* फिर उनका बैठना नहीं कहा गया। यदि यहाँ *'उठि'* शब्द न दिया जाता तो समझा जाता कि खड़े होकर चिट्ठी ली और खड़े-खड़े ही उसे पढ़ा। अतः यहाँ *'उठि'* कहकर जनाया कि दूतोंसे पत्रिका लेकर राजाने अपने सिंहासनपर बैठकर उसे पढ़ा था, अब पुनः उठे। [(ख) *'भूप''' दीन्हि''' जाइ'* इति। यहाँ राजाका ही उठकर जाना और पत्रिका देना कहकर जनाया कि राजा प्रेम और आनन्दमें भरे हुए हैं। उन्होंने सोचा कि इस पत्रिकाने हमें आनन्द दिया, अतः स्वयं चलकर यह आनन्द-पत्रिका गुरुजीको दें जिसमें उनको भी यह आनन्द मिले। *'जाइ'* से सूचित किया कि श्रीवसिष्ठजी उस सभामें नहीं थे। *'जाइ दीन्हि'* से उनका अकेले ही जाना कहा। उनको ऐसा आनन्द है कि वे मारे प्रेमके अकेले ही चले गये।] (ग) *'बसिष्ठ कहुँ'*—वसिष्ठजीके

पास जानेका दूसरा कारण यह है कि मारे आनन्दके राजा यह न सोच सके कि श्रीसीतास्वयंवरमें श्रीरामजीने धनुष तोड़ा है सो अब हमको क्या करना चाहिये, अतः गुरुके पास पत्रिका लेकर गये कि जो उनकी आज्ञा होगी वही हम करेंगे—जैसे धनुष टूटने और परशुरामजीके चले जानेपर श्रीजनकजीने विश्वामित्रजीकी आज्ञा पाकर काम किया, यथा—*'मोहि कृतकृत्य कीन्ह दुहुँ भाईं। अब जो उचित सो कहिय गोसाईं॥'* वैसे ही दशरथजी महाराजने किया। (घ) *'जाइ'*—यदि यह शब्द न देते तो समझा जाता कि वसिष्ठजी वहीं थे अथवा बुलवाये गये। 'गुरु' के यहाँ स्वयं जानेसे उनकी मर्यादाकी रक्षा और राजाका प्रेम प्रकट होता है।

टिप्पणी—२ (क)—*'कथा सुनाई गुरहि सब'* इति। राजाने और सब जगह स्वयं पढ़-पढ़कर पत्रिका सुनायी है; यथा—*'पुनि धरि धीर पत्रिका बाँची'*, *'सुनि सनेह साने बचन बाँची बहुरि नरेस'*, *'राजा सबु रनिवास बोलाई। जनक पत्रिका बाचि सुनाई॥'* (२९५। १) पर गुरुको पत्रिकाका देनामात्र कहा गया; पत्रिकाका सुनाना नहीं कहते। गुरुके सामने न पढ़ा, यह बड़ोंकी मर्यादा है। बड़ोंके सामने अपनी बड़ाई तथा अपने पुत्रोंकी बड़ाईकी बात कहना मर्यादाके प्रतिकूल है, अतः अयोग्य जानकर 'पत्रिका' दे दी कि वे स्वयं पढ़कर जान लें जो कुछ उसमें लिखा है, स्वयं कुछ न कहा। *'कथा सुनाई'* अर्थात् जो दूतोंने मौखिक कहा था, वह दूतोंको बुलवाकर उन्हींसे कहला दी। (ख)—*'सादर दूत बोलाइ'* इति। दूतोंने श्रीरामलक्ष्मणका सुयश बहुत सुन्दर रीतिसे बहुत अच्छी तरह कहा है, अतः उन्हींसे पुनः कहलानेके लिये उनको आदरपूर्वक बुलवाया (दूसरे, सारी कथाकी बात उनके आँखोंकी देखी हुई है, उनके सामनेकी है, वे जितनी अच्छी तरह विस्तारसे कह सकते हैं वैसा दूसरा नहीं कह सकता। वे उसे विस्तारसे प्रेम-प्रताप-वीररसमें पगे हुए वचनोंमें सुनावेंगे। इस बहाने अपनेको पुनः सुननेका लाभ भी होगा। अतः सादर बुलवाया)।

सुनि बोले* गुर अति सुखु पाई। पुन्य पुरुष कहुँ महि सुख छाई॥ १॥
जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं। जद्यपि ताहि कामना नाहीं॥ २॥
तिमि सुख संपति बिनहिं बोलाए। धरमसील पहिं जाहिं सुभाए॥ ३॥

अर्थ—(कथा) सुनकर श्रीगुरुदेवजी अत्यन्त सुख पाकर बोले कि पुण्यात्मा पुरुषोंके लिये पृथ्वी सुखसे छायी हुई रहती है॥ १॥ जैसे नदियाँ (अपनेहीसे) समुद्रमें जाती हैं, यद्यपि उसे इनकी कोई कामना नहीं है॥ २॥ वैसे ही सुख और सम्पत्ति बिना बुलाये स्वाभाविक (अपनेसे) ही धर्मात्माके पास जाती हैं॥ ३॥

टिप्पणी—१ (क) *'अति सुखु पाई।'* अत्यन्त सुख पानेका भाव कि सबने सुख पाया और वसिष्ठजीने *'अति'* सुख पाया, क्योंकि ये सबसे अधिक श्रीरामतत्त्वके वेत्ता हैं। पुनः भाव कि श्रीरामजीका समाचार पढ़-सुनकर राजा दशरथको अति सुख प्राप्त हुआ, यथा—*'पुलक गात आई भरि छाती।……'* इत्यादि। भरत-शत्रुघ्नजीको भी अति सुख हुआ, यथा—*'अधिक सनेह समात न गाता'* और अवधवासियोंको सामान्य सुख हुआ, यथा—*'हरषी सभा……।'* यदि गुरुजीके सम्बन्धमें *'अति सुख'* होना न कहते तो समझा जाता कि इनको भी पुरवासियोंके समान ही सामान्य सुख हुआ। अतः *'अति'* विशेषण देकर इनको भी राजा और भरत-शत्रुघ्नजीके समान सुख होना जनाया। (*'अति सुख'* के और भाव कि राजाकी गुरुभक्तिसे सुख और पत्रिकाके पढ़ने और समाचार सुननेसे *'अति सुख'* हुआ। वा, पत्रिका देख दूतोंके मुखसे सुना भी, अतः *'अति सुख'* कहा।) (ख)—*'अति सुख'* प्राप्त हुआ, अतः आप भी सुखके वचन बोले। (ग) *'पुन्य पुरुष कहुँ महि सुख छाई'* इति। भाव कि पुण्यात्माको स्वर्गमें सुख है ही, पर पृथ्वीमें भी बड़ा सुख मिलता है। *'महि'* कहनेका भाव कि पृथ्वीभरका सुख सिमिटकर धर्मात्माके पास आ जाता है, जैसे आगे रूपकद्वारा कहते हैं। *'छाई'* अर्थात् पूर्णरूपसे सर्वत्र सुख-ही-सुख रहता है। मानो

* मुनि बोले—१७०४।

सुख वहीं आकर बस जाता है। [*'पुन्य पुरुष'* का अर्थ है 'पुण्य कर्म करना जिसका शील है'। यही अर्थ जनानेके लिये आगे 'धर्मशील' शब्द दिया है। 'धर्मशील' शब्द देकर बताया कि पुण्य क्या है, पाप क्या है, यह निश्चय *'निज-निज मति अनुसार'* नहीं करना चाहिये। धर्मशास्त्र जिसे 'पुण्य' कहता है वही पुण्य है और जिसे वह पाप कहता है वही पाप है। और आगे फिर गुरुजी *'पुन्य-पुरुष'*, 'धर्मशील' के लिये ही 'सुकृती' शब्द लाये हैं, जिसका आशय यह है कि धर्मशास्त्रोक्त पुण्य-कर्म आप उत्तम रीतिसे करते हैं। (प० प० प्र०)]

२ *'जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं।.......'* इति। (क) प्रथम *'महि सुख छाई'* कह आये, अब बताते हैं कि धर्मशीलको *'महि'* का सुख कैसे प्राप्त हो सकता है—*'जिमि.......'*। *'सरति गच्छति'* इति सरिता। चलकर सागरसे मिलती है, इसीसे *'सरिता'* कहा; यथा—*'सरिता जल जलनिधि महुँ जाई।'* (४ । १४) (ख) सरिता-सागरका दृष्टान्त देकर सूचित किया कि धर्मात्माको नित्य नवीन सुख प्राप्त होता है, जैसे सरिताका जल नित्य नवीन सागरमें जाता है। (ग) *'जद्यपि ताहि कामना नाहीं'* इति। सागरको कामना नहीं है, वह स्वयं पूर्णरूप है। जैसे वहाँ नदियाँ जाती हैं, वैसे ही जहाँ कामना नहीं है वहाँ सुख-सम्पत्ति जाती है। (और कामनावालोंके पास सुख-सम्पत्ति इस प्रकार नहीं जाती।), यथा—*'दिये पीठि पाछे लगै, सनमुख होत पराइ। तुलसी संपति छाँह ज्यों, लखि दिन बैठि गँवाइ॥'* (दोहावली २५७) पुनः भाव कि अच्छे पुरुष निष्काम-कर्म करते हैं। श्रीदशरथ महाराज भी निष्काम-कर्म करते हैं, यह *'कामना नाहीं'* से सूचित किया।

नोट—१ यहाँकी चौपाइयोंका मिलान अयोध्याकाण्डकी—*'भुवन चारिदस भूधर भारी।' सुकृत मेघ बरषहिं सुख बारी॥ रिधि सिधि संपति नदी सुहाई। उमगि अवध अंबुधि कहुँ आई॥'* (२। १। २। ३) से कीजिये। जैसे पृथ्वीका जल सिमिटकर नदीमें आता है और नदी उमगकर समुद्रमें जाती है, वैसे ही पृथ्वीभरका सुखरूपी जल ऋद्धि-सिद्धि-रूपी नदियोंमें आया और ये ऋद्धि-सिद्धिरूपिणी नदियाँ सुख-सम्पत्ति-रूपी जलसे भरी हुई धर्मशील पुरुष-रूपी समुद्रमें स्वाभाविक ही जा पहुँचती हैं।

टिप्पणी—३ *'तिमि सुख संपति बिनहिं बोलाए।.........'* इति। (क) *'बिनहिं बोलाए'* का भाव कि धर्मात्माको सुख-सम्पत्ति मुखसे माँगते ही मिलती है। (जो कुछ भी वह कहे वा चाहे वह तो शीघ्र हो ही जाता है (पर वे माँगते नहीं और न माँगनेपर भी कार्य सब होता ही जाता है।) (ख) *'धरमसील पहिं जाहिं सुभाए'* इति। ऊपर कहा है कि समुद्रको कामना नहीं है, वैसे ही यहाँ *'बिनहिं बोलाए'* और *'सुभाए'* से सूचित करते हैं कि धर्मशीलको सुख-सम्पत्तिकी कामना नहीं है। फलकी इच्छा करना मना है, इसीसे धर्मशील धर्म करते हैं, धर्मके फलकी आकांक्षा नहीं करते। धर्मका फल सुख-सम्पत्ति है, यथा—*'जथा धर्मसीलन्ह के दिन सुख संजुत जाहिं।'* (३। ३९)

नोट—२ समुद्र-सरिताका उदाहरण देकर यह भी जनाते हैं कि जैसे इतनी नदियोंका जल उसमें जानेपर भी वह जल क्षोभ न उत्पन्न करके उसमें समा ही जाता है, वैसे ही धर्मशील पुरुषोंके पास जो सुख-सम्पत्ति अपनेसे आती है, वह उनमें बिना क्षोभ उत्पन्न किये समा जाती है, उससे उनके अन्तःकरणमें विकार उत्पन्न नहीं होता। यथा—'**आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्। तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी॥**' (गीता २ । ७०) (अर्थात् जैसे सब ओरसे परिपूर्ण अचल प्रतिष्ठावाले समुद्रमें (नद-नदियोंके) जल समा जाते हैं, वैसे ही जिस पुरुषमें सारे भोग समा जाते हैं, वही शान्तिको प्राप्त होता है, भोगोंकी कामनावाला नहीं।) इस श्लोकके '**न कामकामी**' से यह भी बताया कि भोगोंकी कामना रखनेवालोंको सुख-शान्ति नहीं मिलती; उनमें तो सुख-सम्पत्ति जाकर क्षोभ ही प्राप्त करेंगे, विकार उत्पन्न करेंगे।

विष्णुपुराणमें सुनीतिजीके चौपाईसे मिलते हुए ये वचन हैं—'**सुशीलो भव धर्मात्मा मैत्रः प्राणिहिते**

रतः। निम्नं यथापः प्रवणाः पात्रमायान्ति संपदः॥' (१। ११। २४) अर्थात् वे ध्रुवजीसे कह रही हैं कि धर्मात्मा, सबके मित्र, सब प्राणियोंके हितमें तत्पर और सुशील हो जाओ तो सब सम्पत्ति अपने-आप ही प्राप्त हो जायगी जैसे जल वहीं जाता है जहाँ स्थान नीचा होता है।

तुम्ह गुर बिप्र धेनु सुर सेवी। तसि पुनीत कौसल्या देवी॥४॥
सुकृती तुम्ह समान जग माहीं। भयेउ न है कोउ होनेउ नाहीं॥५॥
तुम्ह ते अधिक पुन्य बड़ काकें। राजन राम सरिस सुत जाकें॥६॥
बीर बिनीत धरम ब्रत धारी। गुन सागर बर बालक चारी॥७॥

अर्थ—जैसे आप गुरु-ब्राह्मण, गऊ, देवताओंकी सेवा करनेवाले हैं, वैसी ही कौसल्या देवी भी पुनीत (आचरणवाली) हैं॥ ४॥ आपके समान सुकृती संसारमें न (तो) कोई हुआ, न है और न होनेवाला ही है॥ ५॥ राजन् ! आपसे अधिक बड़ा पुण्य किसका है कि जिसके राम-सरीखे पुत्र हैं॥ ६॥ जिसके वीर, विनीत (बहुत नम्र) और धर्मका व्रत धारण करनेवाले, गुणोंके समुद्र चार पुत्र हैं॥ ७॥

टिप्पणी—१ *'तुम्ह गुर बिप्र धेनु सुर सेवी।……'* इति। (क) धर्मशीलके पास सुख-सम्पत्ति बिना बुलाये आती है, यह कहकर अब राजाकी धर्मशीलता घटित करते हैं [अर्थात् पहले धर्म-(सुकृत-) का फल कहकर अब धर्मका स्वरूप कहते हैं]। गुरु-विप्र-धेनु-सुरकी सेवा करना धर्मशीलता है। (ख)—सुख-सम्पत्तिके पीछे गुरु-विप्रादिकी सेवा कही, क्योंकि गुरु आदिकी सेवासे सुख-सम्पत्तिकी सफलता है। [भाव कि आपने जो धर्म किये, उनका फल सुख-सम्पत्ति मिला, परंतु आप अब भी धर्म करते जाते हैं, क्योंकि सम्पत्ति मिलनेपर उसको बरबाद (नष्ट) न होने देना चाहिये, निष्कामभावसे उसका सदुपयोग करे, उसे धर्ममें लगा दे, तभी उसका मिलना सफल है।] [इससे उपदेश मिलता है कि जो आज सुखी और सम्पत्तिमान् हैं, उनको भी पुण्यशील रहना चाहिये, अन्यथा भविष्यकालमें उनके भालमें दुःख ही लिखा जायगा। **'पुण्यानां कर्मणां फलं सुखं पापानां कर्मणां फलं दुःखम्।'** (प० प० प्र०)] (ग)—राजाने श्रीरामचरित सुनाकर गुरुको सुख दिया, इसीसे प्रथम गुरु-सेवी कहा। अथवा गुरु भगवान्से अधिक हैं, यथा—*'तुम्ह तें अधिक गुरहि जिय जानी। सकल भाय सेवहिं सनमानी॥'* (२। १२। ९) इसीसे गुरुको प्रथम कहा। (घ) *'तसि पुनीत कौसल्या'* इति। यहाँ बीचमें श्रीकौसल्याजीको भी कहा, क्योंकि आगे श्रीरामजीको सुकृतका फल कहनेको हैं और श्रीरामजी राजा और रानी दोनोंके सुकृतोंके फल हैं, अतः दोनोंका कहना आवश्यक था। *'तसि पुनीत'* अर्थात् जैसे धर्म करके आप पुनीत हैं, वैसे ही कौसल्या देवी पुनीत हैं। अर्थात् ये सब धर्म (गुरु आदिकी सेवा) श्रीकौसल्याजीमें भी है और धर्म करनेसे पवित्रता होती है। (ङ) *'देवी'* का भाव कि जैसे आप दिव्य हैं—(यथा—*'देव देखि तव बालक दोऊ'* यह दूतोंने भी कहा है), वैसे ही कौसल्याजी भी दिव्य हैं। तात्पर्य कि आप दोनों प्राकृत मनुष्य नहीं हैं जैसा आगे *'सुकृती तुम्ह समान जग नाहीं।……'* से स्पष्ट है।)

२ *'सुकृती तुम्ह समान………'* इति। (क) भाव कि औरोंके सुकृतका फल केवल सुख-सम्पत्ति है और आपके सुकृतका फल सुख-सम्पत्ति और श्रीरामजी हैं। यथा—*'दसरथ सुकृत राम धरें देही।'* (३१०। १) इसीसे कहा कि आपके समान कोई नहीं। *'जग'* यहाँ ब्रह्माण्डका वाचक है)। यथा—*'उदर माँझ सुनु अंडज राया। देखेउँ बहु ब्रह्मांड निकाया॥'* (७। ८०। ३) यह उपक्रममें कहकर फिर उसीको भुशुण्डिजीने अन्तमें जग कहा कि *'राम उदर देखेउँ जग नाना। देखत बनइ न जाइ बखाना॥'* (७।८२। ५) तात्पर्य कि ब्रह्माण्डभरमें तुम्हारे समान कोई नहीं है। (ख) *'भयेउ न है कोउ होनेउ नाहीं'* इति।—श्रीरामजीका चतुर्व्यूह अवतार श्रीदशरथ महाराजके यहाँ ही होता है, अन्यत्र नहीं होता, इसीसे कहते हैं कि तीनों कालमें कोई तुम्हारे समान नहीं है। ऐसा ही वसिष्ठजीने भरतजीसे कहा है, यथा—*'भयउ न अहइ न अब होनिहारा। भूप भरत जस पिता तुम्हारा॥ बिधि हरि हर सुरपति*

दिसि नाथा। बरनहिं सब दसरथ गुन गाथा॥ कहहु तात केहि भाँति कोउ करिहि बड़ाई तासु। राम लषन तुम्ह सत्रुहन सरिस सुअन सुचि जासु॥' (२। १७३) और भी यथा—*'तिभुवन तीनि काल जग माहीं। भूरि भाग दसरथसम नाहीं॥ मंगलमूल राम सुत जासू। जो कछु कहिअ थोर सबु तासू॥'* (२। २)

टिप्पणी—३ *'तुम्ह ते अधिक पुन्य बड़ काकें।......'* इति। प्रथम कहा कि तुम्हारे समान तीनों कालोंमें कोई सुकृती नहीं हुआ, न है और न होगा। इससे सम्भव था कि वे समझें कि समान नहीं तो अधिक होंगे। इस दोषके निवारणार्थ यह कहते हैं कि *'तुम्ह ते अधिक पुन्य बड़ काकें'* अर्थात् जब तुम्हारे समान ही कोई नहीं है तब अधिक कहाँ हो सकता है? यथा—*'दसरथ गुनगन बरनि न जाहीं। अधिक कहा जेहि सम जग नाहीं॥'* (२। २०९। ८) बड़े पुण्यका बड़ा फल होता है। राजाके बड़े पुण्यका फल श्रीरामजी हैं और श्रीरामजीसे बड़ा कौन है?—[*'राजन राम सरिस सुत जाकें'* इति। *'अधिक पुन्य बड़ काकें'* कहकर यह उसका कारण बताते हैं। इसी बातको अयोध्याकाण्डमें भरद्वाजजीने भरतजीसे यों कहा है कि *'जासु सनेह सकोच बस राम प्रगट भए आइ।'* (२०९) दोनोंका भाव एक ही है कि परमात्मा परब्रह्मने आपका प्रेम देख आपको पुत्ररूपसे सुख देना स्वीकार किया, यह पुण्य किसमें है? इस तरह उपमारहित फल कहकर उससे उपमारहित भारी सुकृतोंका अनुमान कराया। *'राजन राम सरिस सुत जाकें'* इस कथनसे यह संदेह होता है कि सुकृतके फल केवल श्रीरामजी ही होंगे, भरत-लक्ष्मण-शत्रुघ्नजी नहीं। इस दोषके निवारणार्थ कहते हैं कि *'बीर बिनीत..........'* अर्थात् राम ही नहीं किंतु चारों ऐसे गुण-विशिष्ट सम्पन्न पुत्र हुए। यह सब सुकृतके फल हैं।

४ *'बीर बिनीत......'* इति। (क) श्रीराम-लक्ष्मणजीकी वीरता सुनायी है, अथवा, वीरता क्षत्रियका मुख्य गुण है, इससे प्रथम *'बीर'* कहा। वीरकी शोभा नम्रतासे है; अतः *'बीर'* कहकर *'बिनीत'* कहा। *'धरम ब्रत धारी'* कथनका भाव कि जैसे आप धर्मात्मा हैं; तीनों कालोंमें, तीनों लोकोंमें आपके समान धर्मात्मा नहीं, वैसे ही धर्मात्मा आपके पुत्र हैं। (ख) *'गुन सागर'* इति। वर्तमान कालमें (प्रस्तुत प्रसङ्गमें) जो गुण देखे; उनके नाम लिये धनुष तोड़ना वीरका काम है। धनुष तोड़नेसे 'वीर' कहा। परशुरामजीके कठोर वचन सहे, इससे विनीत कहा। पिताकी आज्ञा स्वीकारकर मुनिके साथ जाकर यज्ञकी रक्षा की और दुष्टोंको मारकर मुनियोंको निर्भय किया, यथा—*'मारि असुर द्विज निर्भय कारी॥'* (२१०। ६) यह धर्मका पालन किया। अतः *'धरम ब्रत धारी'* कहा। *'गुन सागर'* कहकर जनाया कि ये ही तीन गुण नहीं हैं और भी अनन्त गुण हैं; जैसे समुद्रकी थाह नहीं, वैसे ही इनके गुणोंकी थाह नहीं। यथा—*'राम अमित गुनसागर थाह कि पावइ कोइ।'* (७। ९२) (ग) अन्तमें *'बर'* श्रेष्ठ कहकर जनाया कि ये सब गुणोंमें श्रेष्ठ हैं, (कोई गुण ऐसा नहीं जिसमें ये निपुण न हों।) वीरोंमें श्रेष्ठ हैं, विनीतोंमें श्रेष्ठ हैं, धर्मव्रतधारियोंमें श्रेष्ठ हैं, गुणवानोंमें श्रेष्ठ हैं तथा समस्त अनन्त गुणोंमें श्रेष्ठ हैं, कोई गुण शिथिल नहीं है। (घ) *'बर बालक'* कहनेका भाव कि ये प्राकृत बालक नहीं हैं, श्रेष्ठ हैं। (ङ) *'चारी'* से जनाया कि ये चतुर्व्यूह अवतार हैं। (चारों सर्वगुणनिधान हैं, यथा—*'चारिउ सील रूप गुन धामा।'* (१। १९) लक्ष्मणजी, भरतजी, शत्रुघ्नजीकी वीरता मेघनादवध, हनुमान्‌जीको पर्वतसहित एक बाणसे गिरा देने, और लवणासुरके वधसे प्रकट ही है। धर्मका तो अयोध्याकाण्ड स्वरूप ही है।—*'जो न होत जग जनम भरतको। सकल धरम धुर धरनि धरत को॥'*)

तुम्ह कहुँ सर्बकाल कल्याना। सजहु बरात बजाइ निसाना॥ ८॥

दो०—चलहु बेगि सुनि गुर बचन भलेहि नाथ सिरु नाइ।
भूपति गवने भवन तब दूतन्ह बासु देवाइ॥ २९४॥

अर्थ—आपका (भूत, भविष्य और वर्तमान) सभी कालोंमें कल्याण है। डंका बजाकर बारात

सजिये॥ ८॥ शीघ्र ही चलिये। गुरुजीके वचन सुनकर 'हे नाथ ! बहुत अच्छा' ऐसा कह मस्तक नवाकर और दूतोंके ठहरनेका प्रबन्ध करके तब राजा महलमें गये॥ २९४॥

टिप्पणी—१ *'तुम्ह कहुँ सर्बकाल कल्याना……'* इति। (क) *'सर्बकाल'* यह कि भारी सुकृतसे चार पुत्र हुए, यह भूतकालमें कल्याण है; पुत्रोंका विवाह होता है यह वर्तमान कालमें कल्याण है और जिसके ऐसे चार पुत्र हैं उसका भविष्यमें भी कल्याण है। जिसका किसी भी भावसे परमेश्वरमें सम्बन्ध है उसका सर्वकालमें कल्याण है। राजाका इनमें पुत्रभाव है, इससे इनका सर्वकालमें कल्याण है। (ख) *'तुम्ह कहुँ सर्बकाल कल्याना'* यह गुरुका आशीर्वाद है। इसी तरह रनवासमें गुरुपत्नीने आशीर्वाद दिया है, यथा—*'मुदित असीस देहि गुरनारी।'* (२९५। ४) (ग) *'सजहु बरात बजाइ निसाना'* अर्थात् बारातकी भारी तैयारी करो।

नोट—१ ईश्वर प्रसन्न होते हैं तब जीवका सदा कल्याण होता है। ईश्वर इनके प्रेमवश पुत्र हो अवतीर्ण हुए फिर इनका सदैव कल्याण हुआ ही चाहे। संत श्रीगुरुसहायलालजी कहते हैं कि ज्योतिष-शास्त्रमें कहा है कि '**माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठ मासाः शुभप्रदाः। मध्यमः कार्तिकमार्गशीर्षौ वै निन्दिताः परे॥**' अर्थात् माघ, फागुन, वैशाख और ज्येष्ठ ये मास शुभप्रद माने गये हैं; कार्तिक, अगहन मध्यम है। यह भी कहा जाता है कि माघमें विवाह होनेसे कन्या धर्मवती, फाल्गुनमें सुभगा, वैशाख और ज्येष्ठमें होनेसे पति-वल्लभा और आषाढ़के विवाहसे कुलवृद्धि होती है यथा—'**माघे धनवती कन्या फाल्गुने सुभगा भवेत्। वैशाखे च तथा ज्येष्ठे पत्युरत्यन्तवल्लभा॥ आषाढे कुलवृद्धिः स्यादन्ये मासाश्च वर्जिताः॥**' (अज्ञात) इससे अवधेशजी महाराजको कुछ खेद था, यह समझकर वसिष्ठजीने ईश्वर-इच्छाको प्रबल जानकर यह व्यवस्था दी कि यदि तुम्हारे पुण्य प्रभावसे रामजी हुए हैं तो अब तुम्हारे कल्याणहेतु कालवादियोंके सिद्धान्तपर क्या दृष्टि देनी है? क्योंकि तुम्हें तो सर्वकाल कल्याण-ही-कल्याण है। प्रतिकूल भी अनुकूल हो जायेंगे। (मा०त०वि०, अ० दी०)

२ मयङ्ककार भी लिखते हैं कि भय हुआ कि अगहनके महीनेमें विवाह ज्योतिषशास्त्रानुसार त्याज्य है तब वसिष्ठजीने कहा कि 'तुमको सर्वदा कल्याण ही है, बारात साजो और चलो।' ३—विनायकी टीकाकार लिखते हैं कि 'ऊपरके कथनसे विदित होता है कि राजा दशरथको सब प्रकारसे सुख थे सो यों कि—'**अर्थागमो नित्यमरोगिता च प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च। वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन्॥**'

प० प० प्र०—*'पुन्य पुरुष कहुँ महि सुख छाई……'* *'सर्बकाल कल्याना'*, इति। ये वाक्य वसिष्ठ-जैसे तत्त्वज्ञ होनेसे इनमें तत्त्वचर्चाके पक्ष, साध्य, हेतु और दृष्टान्त ये चारों पदार्थ पाये जाते हैं। *'पुन्य पुरुष कहुँ महि सुख छाई'* *'तुम्ह ते अधिक पुन्य बड़ काकें।…………सुत चारी'* यह पक्ष है। तुमसे अधिक सुखी कोई नहीं है यह 'साध्य' है। *'सुख संपति बिनहिं बोलाए। पुन्य पुरुष पहिं जाहिं सुभाए॥'* यह हेतु है और *'जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं। जद्यपि ताहि कामना नाहीं॥'* यह दृष्टान्त है।

टिप्पणी—२ *'चलहु बेगि……'* इति। (क) *'बेगि'* क्योंकि सब अवधवासी दर्शनके लिये लालायित हो रहे हैं यथा—*'सबके उर निर्भर हरषु पूरित पुलक सरीर। कबहिं देखिबे नयन भरि राम लखन दोउ बीर॥'* (३००) इसीसे शीघ्र चलनेको कहा। दूसरे, विलम्ब होनेसे जनकमहाराजको संदेह होगा कि हमारी अयोग्यता समझकर चक्रवर्ती महाराज नहीं आये। अतः *'बेगि'* कहा। (ख) *'भलेहि'* कहकर वचनोंकी स्वीकारता जनायी। यह न कहते तो समझा जाता कि जनकजीके यहाँ जानेमें संकोच करते हैं, उनकी इच्छा नहीं है। *'भलेहि'* कहकर सिर नवाया अर्थात् आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। (ग)—(*'दूतन्ह'* बहुवचन शब्द देकर जनाया कि कई दूत पत्रिकाके साथ आये हैं।) (घ)—*'दूतन्ह बास देवाइ'* दूतोंको वास दिलाकर तब महलमें जाना कहा। भाव कि दूत रनवासमें नहीं जा सकते थे। [(ङ) दोहा २९४ की शब्दरचनासे प्रतीत होता है कि दशरथजीके अन्तःकरणकी त्वराके साथ कवि कितने तदाकार हो गये हैं। *'भलेहि नाथ'* के पश्चात् *'कहि'* शब्द भी नहीं लिखा। दोहेके पूर्वार्धमें चार क्रियाओंका अन्तर्भाव किया गया है। (प० प० प्र०)

राजा सबु रनिवास बोलाई। जनक पत्रिका बाँचि सुनाई॥ १॥
सुनि संदेसु सकल हरषानीं। अपर कथा सब भूप बखानी॥ २॥
प्रेम प्रफुल्लित राजहिं रानी। मनहुँ सिखिनि सुनि बारिद बानी॥ ३॥

शब्दार्थ—**'रनिवास'** (रनवास)=रानियोंके रहनेका महल, अन्तःपुर। यहाँ रनिवाससे रनवासमें रहनेवाली सब रानियोंसे तात्पर्य है, यथा—*'सावकासु सुनि सब सिय सासू। आयउ जनकराज रनिवासू॥'* (२। २८१) अर्थात् जनान खाना भर, जितनी हैं सब। पुनः, यथा—*'मन जोगवत रह सब रनिवासू।* (१। ३५२')। **संदेसु** (सन्देश)=खबर, समाचार, हाल। **प्रफुल्लित**=खिली हुई, आनन्दित। प्रसन्न= पुलकित। **राजहिं**=विराजती हैं, सुशोभित हो रही हैं। **सिखिनि**=मोरनी। मयूरिनी।

अर्थ—राजाने सब रनवासको बुलाकर राजा जनककी चिट्ठी पढ़कर सुनायी॥ १ ॥ समाचार सुनकर सब खुश हुईं। (फिर) राजाने और सब कथा (जो दूतोंसे मुखाग्र सुनी थी) 'बखान' की॥ २॥ रानियाँ प्रेमसे खिली हुई (पुलकित एवं आनन्दित) ऐसी सुशोभित हो रही हैं, मानो मयूरिनियाँ मेघोंका शब्द सुनकर (प्रफुल्लित हो रही हैं)॥ ३॥

टिप्पणी—१ (क) *'सबु रनिवास'* अर्थात् सब रानियोंको। यथा—*'सब रनिवासु बिथकि लखि रहेऊ। तब धरि धीर सुमित्रा कहेऊ॥'* (२। २८४) सब रानियोंको बुलाकर सब पत्रिका बाँची तो उससे बड़ी शोभा हुई। यह 'राजा' शब्दसे सूचित किया। **'राजते शोभते इति राजा'**। सब रनवासको बुलाया जिसमें सब एक साथ सुन लें नहीं तो यदि कोई पीछे आवेगी तो फिर पढ़ना पड़ेगा जैसे भरतजीके लिये पुनः बाँचना पड़ा था, इसमें विलम्ब होगा और इधर गुरुजीकी आज्ञा हो चुकी है कि *'चलहु बेगि।'* (ख) 'जनकपत्रिका', कहकर सूचित किया कि उसमें जनकजीकी बहुत विनय है कि महाराज हमारे यहाँ कृपा करके पधारें जानकीका विवाह है, इत्यादि। [यहाँ 'जनक' शब्द साभिप्राय है। यह विदेहकी पत्रिका नहीं है, किन्तु 'जान (**जायते इति जनः**) + क (**कः आनन्दः**)=मूर्तिमान् आनन्द' जनककी भेजी हुई मूर्तिमान् आनन्दरूप पत्रिका है। (प० प० प्र०)] (ग) *'बाँचि सुनाई'*—पत्रिका पढ़कर सुनानेमें भाव यह है कि पत्रिकाका सब समाचार तो चाहे मुखाग्र ही कह देते, पर उस तरह रानियोंको उतना अधिक आनन्द न होता जो उसे पढ़कर सुनानेमें होगा। अतः अधिक आनन्द देनेके लिये पढ़कर सुनाया। (घ)—राजाने 'सब रनवास' बुलाया था, वहाँ *'सकल हरषानीं'* कहकर जनाया कि सब आयीं, कोई बची नहीं और सभीको आनन्द हुआ। (इससे यह भी जनाया कि सबका श्रीराम-लक्ष्मणजीमें कैसा निर्मल पवित्र प्रेम है। ऐसा नहीं है कि सौतिके पुत्रकी बड़ाई समझकर कोई न भी प्रसन्न हुई हो।) (ङ) *'अपर कथा'* अर्थात् *'सीय स्वयंबर भूप अनेका'* से *'जिमि गज हरि किसोर के ताकें'* तक जो दूतोंने मुखाग्र कही थी, पत्रिकामें नहीं थी [☞ यहाँ उपदेश मिलता है कि श्रोताकी श्रद्धा न देखे तो उसे कथा न सुनावे। राजाने देखा कि सबको सुख हुआ, सभीको उनके चरित सुननेकी लालसा है तब कथा विस्तारपूर्वक कही। यथा—*'रामचंद्र गुन बरनैं लागा। लागी सुनैं श्रवन मन लाई। आदिहु ते सब कथा सुनाई॥'* (५। १३) *'तब मन प्रीति देखि अधिकाई। तब मैं रघुपति कथा सुनाई॥'* (७। ११८)]

२ *'प्रेम प्रफुल्लित राजहिं·······'* इति। (क) *'प्रेम प्रफुल्लित'* कहकर जनाया कि जैसे राजा प्रेमसे प्रफुल्लित हुए *'बारि बिलोचन बाँचत पाती। पुलक गात आई भरि छाती॥'* (२९०। ४) और जैसे भरतजी प्रेमसे प्रफुल्लित हुए थे, यथा—*'सुनि पाती पुलके दोउ भ्राता। अधिक सनेहु समात न गाता॥'* (२। ९१। १) वैसे ही सब रानियाँ प्रेमसे प्रफुल्लित हुईं। (ख) शिखिनिकी उपमा तथा आगेके *'जुड़ावहिं छाती।'* (५) से सूचित किया कि राम-संदेश पाये बिना वे व्याकुल थीं, उनका हृदय संतप्त था। (इसपर गीतावलीके बालकाण्डके ९७, ९८ और ९९ पद देखने योग्य हैं। यथा—*'मेरे*

बालक कैसे धौं मग निबहेंगे। भूख पियास सीत श्रम सकुचनि क्यों कौसिकहि कहहिंगे॥ तुलसी·····निरखि हरषि उर लैहौं बिधि होइहै दिन सोऊ॥ ९९॥', '·······अति सनेह कातरि माता कहै सुनि सखि बचन दुखारी। बादि बीर जननी जीवन जग, छत्रि जाति गति भारी॥ जो कहिहै फिरे राम लषन घर करि मुनिमख रखवारी। सो तुलसी प्रिय मोहि लागिहै ज्यों सुभाय सुत चारी॥ १००॥',·····राम लषनके समाचार सखि तब तें कछुअ न पाए। बालक सुठि सुकुमार सकोची समुझि सोच मोहि आली·····॥ १०१॥') जैसे मयूरिनी ग्रीष्ममें संतप्त रहती है। (ग) '*सुनि बारिद बानी*' इति। भाव कि जैसे वारि-(जल-) का दाता मेघ गरज-गरजकर बरसता है वैसे ही राजाने मधुर वाणीसे श्रीरामचरित सुनाया। यही मधुर-मधुर गर्जन करके बरसना है। यथा—'*बर्षहिं रामसुजस बर बारी। मधुर मनोहर मंगलकारी॥*' (१। ३६) पत्रिकाको बाँचकर सुनानेमें राजाकी शोभा हुई और पत्रिका सुनकर प्रफुल्लित होनेमें रानियोंकी शोभा हुई। प्रफुल्लित अर्थात् पुलकित हुईं। [मा० पी० प्र० सं०—'*सिखिनि सुनि बारिद बानी*' इति। —जैसे ग्रीष्ममें तप्त मयूरिनी पावस मेघोंका शब्द सुन पावस-जल पाकर शीतल होती है, वैसे ही ये सब श्रीरामवियोग-ग्रीष्मके कारण तप्त रहीं, महाराजका मधुर स्वरसे कथावर्णनरूपी मेघोंका गर्जन सुन रामयश पावस-जल पा शीतल हुईं।—'*बरषहिं रामसुजस बर बारी।*·····' '*बारिद*' पद देकर सूचित किया कि मेघोंकी गर्जन मात्रहीमें सुख नहीं, वरन् उससे जल पानेमें है। वारिद अर्थात् जो वारि (जल) दे, जल बरसानेवाले मेघ।

मुदित असीस देहिं* गुर नारीं। अति आनंद मगन महतारीं॥ ४॥
लेहिं परस्पर अति प्रिय पाती। हृदय लगाइ जुड़ावहिं छाती॥ ५॥
राम लषन कै कीरति करनी। बारहिं बार भूप बर बरनी॥ ६॥

अर्थ—गुरु-नारियाँ आनन्दित हो आशीर्वाद दे रही हैं। माताएँ अत्यन्त आनन्दमें डूबी हुई हैं॥ ४॥ वे उस अत्यन्त प्रिय पत्रिकाको परस्पर एक-दूसरेसे लेती हैं और हृदयमें लगा-लगा छाती ठण्डी करती हैं॥ ५॥ श्रेष्ठ राजाने श्रीराम-लक्ष्मणजीकी कीर्ति और करनी बारंबार बखानी॥ ६॥

टिप्पणी—१ '*मुदित असीस देहिं गुर नारीं।*·······' इति। (क) '*मुदित*'—राजाने श्रीरामजीका सुयश सुनाया। उसे सुनकर सब गुरु-नारियाँ मारे आनन्दके आशिष देने लगीं। (ख) '*देहिं*' बहुवचन है। इससे पाया गया कि सब ब्राह्मणोंकी स्त्रियाँ वहाँ रही हैं। ['गुरुनारी' से गुरु श्रीवसिष्ठजीकी पत्नी श्रीअरुन्धतीजी तथा अन्य ब्राह्मणों, ऋषियों और कुलके गुरुजनोंकी स्त्रियाँ अर्थात् कुलवृद्धाओंको भी सूचित किया है कि पुनः सम्मानार्थ भी बहुवचन क्रियाका प्रयोग होता है।' (मा० पी० प्र० सं०) सं० १६६१ की पोथीमें '*देहि*' है। यदि इसे ठीक मानें तो गुरुनारीसे श्रीअरुन्धतीजीका बोध होगा। राजा गुरुजीके यहाँ गये थे, इससे श्रीअरुन्धतीजीको भी समाचार मिला तब वे रनवासमें आयी होंगी।] (ग) '*असीस देहिं गुर नारीं*'—राजाको गुरुजीने आशीर्वाद दिया कि '*तुम्ह कहँ सर्बकाल कल्याना*' और रानियोंको श्रीअरुन्धतीजी आदिने आशीर्वाद दिया। (घ) '*अति आनंद*' का भाव कि पत्रिका सुनकर 'आनन्द' हुआ और आशिष सुनकर 'अति' आनन्द हुआ। पुनः,'*अति आनंद*' का कारण यह है कि श्रीअरुन्धतीजी आदि ब्राह्मणियोंका आशिष अमोघ है, निष्फल नहीं जाता। पुनः जो रानियोंके मनमें था, वही आशीर्वाद ब्राह्मणियोंने दिया,—'*मन भावती असीसें पाईं*'; इससे '*अति आनंद*' हुआ। [पुनः, संदेश सुनकर '*हरषानी*' थीं और राजाके मुखसे श्रीरामयशकीर्तन सुनकर प्रेमसे प्रफुल्लित हुईं, पर गुरुनारियोंके आशीर्वादसे आनन्द ही नहीं किन्तु अति आनन्दमें मग्न हो गयीं, प्रेम-समाधि लग गयी (प० प० प्र०)] (ङ) '*महतारी*' से सब माताओंका ग्रहण है।

*देहि—१६६१।

टिप्पणी—२ *'लेहिं परस्पर अति प्रिय पाती'* इति। (क) *'अति प्रिय पाती'*—श्रीरामजी अत्यन्त प्रिय हैं, यथा—*'प्रानहुँ तें प्रिय लागत सब कहुँ रामकृपाल।'* (२०४), यह उन अति प्रियके समाचारकी पत्रिका है, इसीसे यह भी *'अति प्रिय'* है। (ख) *'हृदय लगाइ जुड़ावहिं छाती'* इति। श्रीरामजीके समाचारकी पत्रिका श्रीरामजीके समान है। प्रियके सम्बन्धकी वस्तु मिलनेपर प्रियके मिलनके समान ही सुख होता है, अतः पत्रिकाको हृदयसे लगाती हैं।

नोट—१ (क) *'अति प्रिय'* है। इसीसे बारी-बारीसे आपसमें लेतीं और उनके समान (दुलरुआ) जानकर उसे हृदयसे लगाती हैं। (ख) *'जुड़ावहिं छाती'* इति। (पूर्व जो कहा *'मनहुँ सिखिनि सुनि बारिद बानी'*, उसीको यहाँ चरितार्थ किया। प्यारेके वियोगमें उसके सम्बन्धकी वस्तु मिलनेसे भी बड़ा ढारस होता है। देखियें श्रीभरतजीको श्रीरामजीके सखा निषादराजसे मिलने और अम्बा श्रीजानकीजीके कनकबिन्दु इत्यादिसे कैसा सुख हुआ था, यथा—*'रामसखा सुनि संदनु त्यागा। चले उतरि उमगत अनुरागा॥ करत दंडवत देखि तेहि भरत लीन्ह उर लाइ। मनहुँ लषन सन भेंट भइ प्रेमु न हृदय समाइ॥'* (२। १९३), *'भेंटत भरतु ताहि अति प्रीती। लोग सिहाहिं प्रेम कै रीती॥''''एहि तौ राम लाइ उर लीन्हा। कुल समेत जगु पावन कीन्हा'*, *'चले सखा कर सों कर जोरें। सिथिल सरीर सनेहु न थोरें॥ पूछत सखहि सो ठाँव देखाऊ। नेकु नयन मन जरनि जुड़ाऊ॥ जहँ सियराम लषन निसि सोये। कहत भरे जल लोचन कोये॥'* (२। १९८), *'चरन रेख रज आँखिन्ह लाई। बनइ न कहत प्रीति अधिकाई॥ कनकबिंदु दुइ चारिक देखे। राखे सीस सीय सम लेखे॥'* (२। १९९), *'रज सिर धरि हिय नयनन्हि लावहिं। रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं॥'* (२। २३८) इसी प्रकार श्रीरामचन्द्रजी श्रीजानकीजीका वस्त्र सुग्रीवसे पाकर दुःखी हुए, वस्त्रको उन्हींके समान समझकर हृदयसे लगाया—*'पट उर लाइ सोच अति कीन्हा'* और श्रीजानकीजी अँगूठी पाकर उसे श्रीरामचन्द्रजीकी जानकर *'हरष बिषाद हृदय अकुलानी'* थीं। (मा० पी० प्र० सं०) श्रीभरतजी श्रीरामजीके कुशलपूर्वक आनेका संदेश श्रीहनुमान्‌जीसे सुनकर उन्हें हृदय लगाकर अत्यन्त प्रेमसे मिले, मानो श्रीरामजी ही मिल गये हैं, यथा—*'मिले आजु मोहि राम पिरीते।'* संदेश और उसके लानेवाले दोनोंको श्रीरामरूप ही माना, इसीसे वे कहते हैं कि *'एहि संदेस सरिस जग माहीं। करि बिचार देखेउँ कछु नाहीं॥'*

टिप्पणी—३ *'राम लषन कै कीरति करनी।'''* इति। (क) धनुषका तोड़ना, परशुरामजीको जीतना, ब्रह्माण्डको चरणसे दबाना, भूधरों-(पृथ्वीको धारण करनेवाले शेष, कच्छप, कोल आदि-) को आज्ञा देना *'करनी'* है। *'करनी'* से उज्ज्वल 'कीर्ति' हुई, यथा—*'जिन्हके जस प्रताप के आगे। ससि मलीन रबि शीतल लागे॥'* (२९२। २) (पुनः) यथा—*'महि पातालु नाक जसु ब्यापा। राम बरी सिय भंजेउ चापा॥'* (२६४। ५) दूतोंने जो देखा था वही कहा था। उन्होंने मुनियज्ञरक्षण तथा अहल्योद्धारकी बात नहीं कही थी, परंतु पत्रिकामें ये बातें भी लिखी थीं। गीतावलीसे इसका निश्चय होता है, यथा—*'खेम कुसल रघुबीर लषन की ललित पत्रिका ल्याए। दलि ताड़का मारि निसिचर मख राखि बिप्रतिय तारी॥'* (१। १०२) अतः यज्ञरक्षण और अहल्योद्धार भी *'करनी'* हैं। इनसे भी 'कीर्त्ति' का सब लोकोंमें छा जाना माताओंने कहा है, यथा—*'मख रखवारी करि दुहुँ भाई। गुरु प्रसाद सब बिद्या पाई॥ मुनितिय तरी लगत पग धूरी। कीरति रही भुवन भरि पूरी॥'* (१। ३५७) (ख) *'बारहिं बार भूप बर बरनी'* इति। प्रथम रानियोंको सुनानेके लिये कीर्ति-करनीका वर्णन किया, यथा—*'अपर कथा सब भूप बखानी।'* *'अपर कथा'* में कीर्त्ति और करनीका वर्णन है। जब गुरु-नारियाँ आसीस देने लगीं, तब पुनः वर्णन किया और जब रानियाँ प्रेमसे पत्रिका हृदयमें लगाने लगीं तब पुनः वर्णन करने लगे। इस प्रकार बारम्बार वर्णन किया। (पुनः भाव कि श्रीराम-लक्ष्मणजीकी कीर्ति और करनी श्रेष्ठ है। भगवद्यश इसी प्रकार कहना-सुनना चाहिये, यह यहाँ उपदेश है।) *'बर'* तीनोंके साथ लगता है। कीर्त्ति एवं करनी श्रेष्ठ है (अतः उसका वर्णन किया); वर्णन करनेवाले भूप भी श्रेष्ठ हैं और भूपका वर्णन करना भी श्रेष्ठ है।

मुनि प्रसादु कहि द्वार सिधाए। रानिन्ह तब महिदेव बोलाए॥ ७॥
दिए दान आनंद समेता। चले बिप्र बर आसिष देता॥ ८॥
सो०—जाचक लिए हँकारि दीन्हि निछावरि कोटि बिधि।
चिरुजीवहु सुत चारि चक्रवर्त्ति दशरत्थ के॥ २९५॥
कहत चले पहिरे पट नाना। हरषि हनें गहगहे निसाना॥ १॥

शब्दार्थ—**हँकारि लिए**=बुलवा लिये। हँकारना=बुलाना। **चिरुजीवहु**=चिरजीवी हो। चिर=दीर्घकालवर्ती; बहुत कालका। यथा—'***चिर अहिबात असीस हमारी।***' 'चिरञ्जीव'=बहुत दीर्घ आयुवाले हों। इस शब्दसे दीर्घायु होनेका आशीर्वाद दिया जाता है।

अर्थ—'मुनिकी कृपा' (अर्थात् यह सब मुनिकी कृपासे हुआ ऐसा) कहकर (जब) राजा द्वारको चले तब रानियोंने ब्राह्मणोंको बुलाया॥ ७॥ आनन्दपूर्वक उनको दान दिया। ब्राह्मणश्रेष्ठ उत्तम आशिष देते हुए चले॥ ८॥ (फिर) भीख माँगनेवाले मँगताओंको बुलवा लिया और उन्हें अगणित भाँतिकी निछावरें दीं। वे बहुत वस्त्र पहने हुए 'चक्रवर्ती श्रीदशरथजी महाराजके चारों पुत्र चिरञ्जीवी हों, बहुत कालतक जीवित रहें' यह कहते हुए चले। प्रसन्नतापूर्वक घमाघम नगाड़े बजाये गये॥ २९५। १॥

टिप्पणी—१ (क) '***मुनि प्रसादु***' का भाव कि ऐसी कीर्ति, ऐसी करनी बालकोंसे नहीं हो सकती। यह मुनिका प्रसाद है।—('***मुनि प्रसादु***'—यही माधुर्य है। अर्थात् हमारे पुत्र तो अभी बहुत छोटे और कोमल हैं। सुकुमार हैं, वे क्या कर सकते हैं; यह केवल मुनिकी कृपा है। ऐसे ही श्रीकौसल्या अम्बाजीके वचन हैं, यथा—'***मारग जात भयावनि भारी। केहि बिधि तात ताड़का मारी॥***.........' (३५६) '***मुनि प्रसाद बलि तात तुम्हारी। ईस अनेक करवरैं टारी॥ सकल अमानुष करम तुम्हारे। केवल कौसिक कृपा सुधारे॥***' (३५७। १, ६) और ऐसे ही राजा जनकके भी वचन हैं। यथा—'***प्रभु प्रसाद धनु भंजेउ रामा।***' (२८६। ५) इन शब्दोंसे जनाया कि माधुर्यने ऐश्वर्यको दबा लिया है। (ख) '***द्वार सिधाए***' का भाव कि महलका काम हो चुका। महलमें इतना ही काम था, अब द्वारपर जो काम है उसे करने चले। गुरुकी आज्ञा है कि बारात सजकर शीघ्र चलो, उसी कार्यमें तत्पर होने चले। (ग) '***तब***'—जब राजा चले गये तब बुलानेका भाव कि राजा प्रधान हैं, जबतक वे बैठे हैं तबतक उनके आगे स्वयं कैसे बुलातीं। '***रानिन्ह***' बहुवचन है। इससे जनाया कि सब रानियोंने (अपने-अपने महलोंमें जाकर) ब्राह्मणोंको बुलवाया और पृथक्-पृथक् सबने सबको अलग-अलग दान दिया। (घ) '***महिदेव***' शब्द देकर जनाया कि रानियोंने ब्राह्मणोंको देवभावसे बुलाया और देवभावसे ही उनका पूजन किया, मनुष्यभावसे नहीं। पुनः भाव कि राजाने '***मुनि प्रसादु***' कहा, अतः रानियोंने ब्राह्मणका भारी प्रसाद समझकर ब्राह्मणोंको बुलाकर उनका आदर-सम्मान किया। ['***मुनि प्रसादु***' कहकर राजाने रानियोंको सावधान किया है कि भूलसे भी न समझना कि यह तुम्हारे बच्चोंका प्रताप है। सब रानियोंने इस उपदेशको ग्रहण किया। इसीकी यथार्थता '***कहहिं सप्रेम बचन सब माता***' से लेकर '***राम प्रतोषीं मातु सब***' तक दो० (३५६। ७—३५७) में चरितार्थ हुई है। (प० प० प्र०)]

टिप्पणी—२ '***दिए दान आनंद समेता।***'' इति। (क) श्रीरामजीके विवाहका समाचार सुनकर रानियोंने दान दिया, क्योंकि यह दान देनेका समय है। (ख) '***आनंद समेता***' कहनेका भाव कि दान हर्षपूर्वक उत्साहसे देना चाहिये। यथा—'***रामहि सुमिरत रन भिरत, देत परत गुरु पाय। तुलसी जिन्हहिं न पुलक तनु, ते जग जीवत जाय॥***' (दोहावली ४२) बिना उत्साहका दान व्यर्थ है। यथा—'**उत्साहभंगे धनधर्महानिः।**' पुनः भाव कि उत्साहमें मारे आनन्दके बहुत दान दिये। (ग) ब्राह्मणोंकी स्त्रियाँ तो घरमें थीं ही जब राजाने समाचार सुनाया, पर उनको दान नहीं दिया और ब्राह्मणोंको

बुलाकर दिया इससे पाया गया कि पुरुषको दान लेनेका अधिकार है, स्त्रीको नहीं। (घ) *'चले बिप्र बर'*। *'बर'* कहकर कुलीन, विद्वान् और तपस्वी तथा दानके अधिकारी जनाया। ब्राह्मणोंकी श्रेष्ठता वेदपाठी होनेसे है, इसीसे उन्हें *'बिप्र बर'* कहते हैं, यथा—*'तिन्ह चढ़ि चले बिप्रबर बृंदा। जनु तनु धरे सकल श्रुति छंदा॥'* (३००। ४) (ङ) *'आसिष देता'*—भाव कि जैसे रानियोंने बहुत दान दिये, वैसे ही ब्राह्मणोंने बहुत आशीर्वाद दिये।

टिप्पणी—३ *'जाचक लिए हँकारि······'* इति। (क) ब्राह्मण दानके अधिकारी हैं, इसलिये उनको दान देना कहा और याचक निछावरके अधिकारी हैं। अतः निछावर देनेके लिये याचकोंको बुलवाया। पुनः जैसे राजा और अयोध्यावासी (जो दरबारमें थे) श्रीरामजीका समाचार सुनकर दूतोंको निछावर देने लगे थे, वैसे ही रानियोंने सुनकर याचकोंको निछावर दिया। (ख) *'हँकारि'* इति। बुलानेसे आये क्योंकि रनवासमें बिना बोलाये कैसे जा सकते थे, बाहर होता तो याचक स्वयं ही आ जाते।—[पुनः *'हँकारि'* से यह भी सूचित होता है कि याचक भी तो श्रीरामजन्मसमय निछावर पा-पाकर धनसे परिपूर्ण हो गये हैं, वे तो लेन-देनका व्यवहार करते हैं और स्वयं दानी हो गये हैं, यथा—*'रानिन्ह दिए बसन मनि भूषन राजा सहन भँडार। मागध सूत भाट नट जाचक जहँ तहँ करहिं कबार॥'*, *'पाइ अघाइ असीसत निकसत जाचक जन भए दानी।'* (गीतावली १। २। ४) इसीसे अब उनको बुलवाना पड़ता है, बिना बुलाये नहीं आते। मागध, सूत, भाट और नट आदि ही याचक हैं]। (ग)—*'कोटि बिधि'* इति। *'कोटि'* बहुतका वाचक है, यथा—*'कोटिन्ह काँवर चले कहारा,'* *'कोटिन्ह बाजिमेध प्रभु कीन्हे'* इत्यादि। अनेक प्रकारकी निछावर जैसे कि मणि, भूषण, वस्त्र आदि; यथा—*'भूषन मनि पट नाना जाती। करहि निछावरि अगनित भाँती॥'* (३४९। २।) [*'कोटि बिधि'* से अनन्तता सूचित की। (रा० च० मिश्र)] (घ) *'चिरजीवहु सुत चारि'*—*'सुत चारि'* से सूचित हुआ कि चारों पुत्रोंके नाम ले-लेकर उनके नामसे पृथक्-पृथक् निछावरें दी गयी हैं। इसीसे चारोंको आसिष देते हैं। (ङ) *'चक्रवर्त्ति दशरत्थ के'* कहनेका भाव कि जैसे दशरथ महाराज चक्रवर्ती राजा हैं, (और जैसे उन्होंने बहुत काल राज्य किया तथा चिरजीवी हैं) वैसे ही उनके पुत्र भी (दीर्घ कालतक चक्रवर्ती) राज्य करें।

रा० च० मिश्र—यहाँ निछावरकी विधि सोरठासे कहकर उत्तरोत्तर वृद्धिक्रम दिखाया। अतएव ऐश्वर्यकी थाह न पाकर याचकोंने *'चक्रवर्ति'* यह ऐश्वर्यसूचक पद दिया।

टिप्पणी—४ (क) *'चिरुजीवहु सुत चारि चक्रवर्ति दशरत्थ के'* यही आशीर्वाद ब्राह्मण और याचक दोनों देते हुए चले जा रहे हैं, यह जतानेके लिये *'आसिष देता'* पद *'चले बिप्र बर'* और *'जाचक'* के बीचमें रखा। (ख) *'कहत चले पहिरे पट नाना'* इति। ब्राह्मणोंका भी आसिष देते हुए जाना कहा—*'चले बिप्र बर आसिष देता'* और याचक भी *'कहत चले पहिरे पट नाना'*। इससे सूचित किया कि दोनोंने बहुत पाया है, इसीसे मारे आनन्दके गली-गली असीसते हुए अपने-अपने घरोंको जा रहे हैं। *'पहिरे पट'* से जनाया कि अपनी नापके वस्त्र जो पाये वह पहन लिये। देनेके साथ ही पहन लेनेसे दाताके दानका आदर-सम्मान जनाया। इससे दाताको भी प्रसन्नता होती है।) और जो वस्तुएँ मिलीं उन्हें लिये हैं, इसीसे केवल वस्त्रोंका पहनना लिखा। *'नाना पट'* अर्थात् रेशमी, ऊनी, कौशेय इत्यादि रंग-बिरंगे। पुनः याचक भी बहुत हैं इससे *'नाना'* पटका पहनना लिखा। (*'नाना पट पहने'* से यह भी जनाया कि सिरसे पैरतकके सभी वस्त्र दिये गये हैं। पाग सिरपर बाँधे वा टोपी दिये, जामा आदि पहने, दुशाला ओढ़े, धोती पहने इत्यादि। सब अङ्गोंके वस्त्र मिले हैं।) (ग) *'हरषि हनें गहगहे निसाना'* इति। गुरुजीकी आज्ञा है कि *'सजहु बरात बजाइ निसाना'*, इसीसे बारात सजानेके लिये नगाड़े बजाये गये। बारातकी तैयारी समझकर बजानेवालोंको भी हर्ष हुआ, इसीसे उन्होंने 'हर्षपूर्वक' नगाड़े बजाये, यह *'गहगहे'* शब्दसे जनाया। गहगहायके (अर्थात् बड़े जोर-जोरसे, धमाधम) बजाये।

समाचार सब लोगन्ह पाए। लागे घर घर होन बधाए॥ २॥
भुवन चारि दस भरा उछाहू। जनकसुता रघुबीर बिआहू॥ ३॥
सुनि सुभ कथा लोग अनुरागे। मग गृह गली सँवारन लागे॥ ४॥

अर्थ—सब लोगोंने समाचार पाये। घर-घर बधाए होने लगे॥ २॥ जनकसुता और श्रीरघुवीरके विवाहका उत्साह चौदहों लोकोंमें भर गया (अर्थात् सब उत्साहमें मग्न हैं कि इनका विवाह है, हम भी देखने चलेंगे)॥ ३॥ मङ्गल समाचार सुनकर लोग प्रेममें मग्न हो गये, अनुरागको प्राप्त हुए। रास्ते (सड़कें) घर और गली सँवारने (सजाने) लगे॥ ४॥

टिप्पणी—१ '*समाचार सब लोगन्ह पाए।*' इति। (क) जो लोग राजसभामें थे उन्होंने वहीं समाचार पाया था, उनके द्वारा उनके घरों और पड़ोसियों इत्यादिको समाचर मिला, फिर निशानोंके बजनेसे और ब्राह्मणों और याचकोंके मुखसे सर्वत्र गली-गली खबर पहुँच गयी। अतः '*सब लोगन्ह पाए*' कहा। (ख)—'*लागे घर घर होन बधाए*' इति। भाव कि अभीतक तो राजाके घर ही बधायी हो रही थी, अब घर-घर होने लगी। इससे यह भी जनाया कि समस्त अवधवासी राजाका उत्सव अपना ही उत्सव मानते-जानते-समझते हैं। (ग) '*बधाए*' शब्दसे जनाया कि प्रथम केवल डंके-नगाड़े बजे थे अब और भी सब बाजे बजने लगे। बधाईमें सब प्रकारके बाजे बजते हैं।

टिप्पणी—२ '*भुवन चारि दस भरा उछाहू।*' इति। [(क) प्रथम '*चारि*' कहकर तब '*दस*' कहनेका भाव यह कि प्रथम 'उछाह' थोड़ी जगहसे उठा फिर उत्तरोत्तर अधिक जगहमें व्याप्त होता गया। प्रथम आनन्द राजा दशरथको हुआ, वहाँसे उमड़कर सभामें, गुरु और रनिवासमें फैलता हुआ नगर और चौदहों भुवनोंमें फैल गया।—(रा० मिश्रजी)] (ख) भाव कि कुछ श्रीअयोध्याजीमें ही बधाइयाँ नहीं हुईं किंतु चौदहों लोकोंमें हुईं। (देवता, ऋषि, मुनि, नर, नाग सभी रावणसे पीड़ित हैं, इसीसे अवतार होते ही सबको आनन्द हुआ था, अब विवाह सुनकर सबको परम आनन्द हुआ, क्योंकि रावणसे युद्ध होनेके लिये सामग्री जुटती जा रही है।) (ग) '*समाचार सब लोगन्ह पाए। लागे घर घर होन बधाए॥*' यह माधुर्यके अनुकूल कहा गया और '*भुवन चारि दस*...*बिआहू*' यह ऐश्वर्यके अनुकूल कहा। क्योंकि बिना ईश्वरताके चौदहों लोकोंमें उत्साह और उत्सव नहीं हो सकता। '*भरा उछाहू*' अर्थात् घर-घर उत्सव होने लगा; यही उत्सवका भर जाना है। (घ) '*जनकसुता रघुबीर बिआहू*' इति। ('*रघुबीर*' शब्द देकर चौदहों भुवनोंमें उत्साह होनेका कारण बताया कि श्रीरामजीने बड़ी वीरताका काम किया है।) धनुष तोड़कर जनकसुताको ब्याहा है, यह यश त्रैलोक्यमें व्याप्त हो गया, यथा—'*महि पातालु नाक जसु ब्यापा। राम बरी सिय भंजेउ चापा॥*' (२६५। ५); इसीसे त्रैलोक्यमें उत्साह भर रहा है। [पुनः भाव कि जनक-जैसे विश्वविदित महाराजकी कन्याको वीर्य-शुल्कसे जिन्होंने प्राप्त किया है, उनका विवाह भी अलौकिक और अनुपम ही होगा, अतः शीघ्र बारातमें चलना चाहिये। (प० प० प्र०)]

नोट—१ श्रीबैजनाथजी लिखते हैं कि 'इस उत्सवका मूल श्रीमिथिलाजी हैं, क्योंकि मङ्गलमूर्ति श्रीकिशोरीजी वहीं हैं। जहाँ मङ्गल है वहीं आनन्द भी रहता है। इसीसे आनन्दमूर्ति श्रीरघुनाथजी वहाँ गये। मङ्गल और आनन्द दोनोंके एकत्र हो जानेसे देखनेवालोंका प्रेम उमड़ा, तब मङ्गल-आनन्द प्रेमप्रवाहके मिलनेसे मिथिला अगाध समुद्र हो गया। जब यह मिथिला मङ्गलानन्द प्रेम-समुद्र बहुत बढ़ा तब उमड़कर, जिस मार्गसे विश्वामित्रजीके द्वारा अवधसरसे आनन्दसरिता आयी थी, उसी मार्गसे मङ्गलानन्दप्रेमप्रवाह (जो उस समुद्रकी छलकमात्र है।) पत्रिकारूपसे दूतोंके द्वारा बहता हुआ अवधसरमें आकर गिरा। प्रथम उसने अवधसरसींव चक्रवर्ती महाराजको ही डुबाया—'*पुलक गात आई भरि छाती। रहि गए कहत न खाटी मीठी॥*' फिर बाह्य भूमि सभी बूड़ी तत्पश्चात् भूमिकी सींव श्रीभरत-शत्रुघ्नजी डूबे—'*पुलके दोउ भ्राता।*' फिर क्रमशः बाह्यभीटरूप वसिष्ठजी, भिट्टबाह्यभूमिसम समस्त रनवास, बाह्यकृषिभूमिसम पुरवासी डूबे। (इस तरह राजाके

यहाँसे उमड़ता हुआ सभा, गुरु, रनवास, नगर और चौदहों भुवनोंको आनन्दोत्सवमें डुबाता गया। सर्वत्र उत्साह भर गया।) ऐसा प्रवाह बढ़ा कि पृथ्वीसे लेकर चौदहों भुवन भर गये, पर कहीं ऐसा अथाह थल न मिला जहाँ ठहर सके, समा सके; अतएव प्रवाह फिर घूमा और लौटते हुए उसने सबको समेटकर बहाते हुए मिथिलारूपी अगाध समुद्रमें लाकर डाल दिया। अवधवासियोंसहित श्रीदशरथमहाराज बारात लेकर वहीं गये, ब्रह्मा-विष्णु-महेशादि समस्त देवता आदि सब विवाह देखने आये—यही प्रवाहका सबको समेटकर लौट आना है।

टिप्पणी—३ *'सुनि सुभ कथा'''* इति। (क) यहाँ गोस्वामीजी दो बातें लिखते हैं—समाचारका पाना और शुभ कथाका सुनना। *'समाचार सब लोगन्ह पाए'* और *'सुनि सुभ कथा।'* समाचार यह है कि श्रीराम-लक्ष्मणजीके कुशलकी पत्रिका आयी है, इसीसे राजाके यहाँ बहुत दान और निछावरें बटीं, नगाड़े और बधाए बज रहे हैं। यह समाचार पाकर लोग अपने-अपने घरमें बधाई बजवाने लगे। (आजकलकी तरह नहीं कि अधिकारियोंके द्वारा दबाव डालकर भूखों मरती हुई, सब प्रकारसे पीड़ित प्रजासे उत्सव मनवाया जाय)। शुभ कथा यह सुनी कि श्रीसीतास्वयंवरमें श्रीरामजीने धनुष तोड़ा है, बारातकी तैयारी है, विवाह होगा। यह शुभ कथा सुनकर सबको अनुराग हुआ। (ख)—*'लोग अनुरागे'* इति। भाव कि यह कथा सुननेसे सभासमेत राजाको अनुराग हुआ था, यथा—*'सभा समेत राउ अनुरागे।'*; अनुरागवश होकर वे दूतोंको निछावर देने लगे थे। वही कथा सुनकर प्रजाको भी अनुराग हुआ तो वे (बिना किसी ऊपरके दबाव या आज्ञाके स्वयं प्रेमवश) *'मग गृह गली सँवारन लागे'*। अनुराग होता है तब उत्सवमें सड़कें, गलियाँ, देवमन्दिर आदि सभी सँवारे जानेकी चाल है। यथा—*'हाट बाट मंदिर सुरबासा। सकल सँवारहु चारिहु पासा॥'* (२८७। ४) [धनुषभंग, परशुराम-पराजय इत्यादि, यह सब कथा ही ऐसी है कि सुनते ही अनुरागमें डुबा देती है—*'सभा समेत राउ अनुरागे'*। *'गृह'* से देवमन्दिर समझना चाहिये, इसका आशय आगे खुलेगा। आगे घरोंका सजाना अलग कहा गया है।] *'मग'* से सड़कें अभिप्रेत हैं। गली कम चौड़ी होती हैं। गलियाँ वे हैं जो घर-घरको गयी हैं। [जनकपुरके सजानेकी आज्ञा राजा जनकको देनी पड़ी थी, यथा—*'नगर सँवारहु चारिहुँ पासा'*, और रामपुरीमें तो बिना आज्ञाके स्वयं अपनी-अपनी ओरसे पुरजन मग, गृह, गली सँवारने लगे। यह रामपुर और जनकपुरमें फर्क दिखाया। इत्यादि। (प० प० प्र०)]

जद्यपि अवध सदैव सुहावनि। राम पुरी मंगलमय पावनि॥ ५॥
तदपि प्रीति कै रीति* सुहाई। मंगल रचना रची बनाई॥ ६॥
ध्वज पताक पट चामर चारू। छावा परम बिचित्र बजारू॥ ७॥
कनक कलस तोरन मनि जाला। हरद दूब दधि अच्छत माला॥ ८॥

दो०—मंगलमय निज निज भवन लोगन्ह रचे बनाइ।
बीथीं सींचीं चतुरसम चौकें चारु पुराइ॥ २९६॥

शब्दार्थ—**चतुरसम** (सं० चतुरसम)= एक गन्धद्रव्य जिसमें दो भाग कस्तूरी, चार भाग चन्दन, तीन भाग कुंकुम और तीन भाग कपूरका रहता है। 'चतुरसम' शब्द देकर जनाया कि इसमें चारों वस्तुएँ बराबर-बराबर होती हैं। यह 'अरगजा' के समान ही होता है। 'अरगजा' में प्राय: केशर, चन्दन, कपूर आदि होता है। इससे भी गलियाँ आदि सींची जाती थीं। यथा—*'गली सकल अरगजा सिंचाई।'* (३४४। ५) जन्मके समय *'मृगमद चंदन कुंकुम'* से ही सब गलियाँ सींची गयी थीं। यथा—*'मृगमद चंदन कुंकुम कीचा। मची सकल बीथिन्ह बिच बीचा॥'* (१९४। ८) पं० रामकुमारजीका मत है कि चतुरसम और अरगजा एक ही हैं इसीसे एक जगह अरगजा लिखा, एक जगह 'चतुरसम'। प्रज्ञानानन्द स्वामी लिखते हैं कि

* प्रीति—१६६१। 'प्रीति कै प्रीति'—प्रीति-पर-प्रीति होनेसे। (मानसाङ्क)

स्कन्दपुराणमें 'यक्ष कर्दम' नामक एक सुगन्ध द्रव्यका वर्णन मिलता है जिसमें केशर, कस्तूरी, कंकोल और अगर सम प्रमाणमें होते हैं। उसे यहाँ ले सकते हैं।

अर्थ—यद्यपि अवध सदा ही सुहावन है (क्योंकि यह) श्रीरामजीकी मङ्गलमयी पवित्र पुरी है* ॥ ५ ॥ तो भी यह प्रीतिकी सुन्दर रीति ही है, इससे सँवारकर मङ्गल रचना रची गयी ॥ ६ ॥ सुन्दर ध्वजा, पताका, वस्त्र (पाटाम्बर) और चँवरसे बाजार अत्यन्त विचित्र छाया हुआ है ॥ ७ ॥ सोनेके कलश (घट), वन्दनवार, मणियोंकी झालरें, हलदी, दूब, दही, अक्षत (बिना टूटा हुआ चावल और जौ) और फूलकी मालाओंसे लोगोंने अपने-अपने मङ्गलमय घरोंको खूब सजाकर मङ्गलमय बनाया। गलियोंको चतुस्समसे सींचा और सुन्दर चौकें पुरायीं ॥ ८ ॥ (२९६).,

टिप्पणी—१ ***'जद्यपि अवध सदैव सुहावनि।'''*** इति। (क) यहाँ अवधपुरीको तीन विशेषण दिये—***'सुहावनि', 'मंगलमय'*** और ***'पावनी'***। यह ऐसी सुहावनी है कि मुनियोंका वैराग्य इसे देखकर भूल जाता है। ***'नारदादि सनकादि मुनीसा। दरसन लागि कोसलाधीसा॥ दिन प्रति सकल अयोध्या आवहिं। देखि नगरु बिरागु बिसरावहिं॥'*** (७। २७) मङ्गलमय है अर्थात् सब सुखोंकी खानि है और श्रीराम-धाम साकेतको प्राप्त कर देनेवाली है। यथा—***'रामधामदा पुरी सुहावनि।''''''सकल सिद्धिप्रद मंगल खानी॥'*** (३५। ३—५), ***'मम धामदा पुरी सुखरासी।'*** (७। ३) ***'पावनी'*** है सबको पवित्र करनेवाली है और अपने स्वरूपसे पवित्र है। यथा—***'पावन पुरी रुचिर यह देसा।'*** (७। ४), ***'लोक समस्त बिदित अति पावनि।'*** (३५) ***'देखत पुरी अखिल अघ भागा।'*** (७। २९) [(ख) यहाँ लोग तीन बातें कर रहे हैं। नगरको शोभित (सुहावना) करते हैं, मङ्गल-रचना रचते हैं और पवित्र करते हैं (जैसा अगली चौपाइयोंमें कहा गया है), इसीसे कविने भी यहाँ तीन ही विशेषण दिये। सुहावनेको सुहावना कर रहे हैं, यथा—***'मग गृह गली सँवारन लागे', 'छावा परम बिचित्र बजारू'***—(प्र० सं०)] मङ्गलमयमें ***'मंगल रचना'*** रचते हैं, यथा—***मंगल रचना रची बनाई॥'*** से ***'रचे बनाइ'*** तक। पावनीको चतुरसमसे सींचकर पवित्र करते हैं, यथा—***'बीथीं सींचीं चतुरसम'***। (यह सब क्यों कर रहे हैं? इसका उत्तर आगे देते हैं। ***'तदपि प्रीति कै रीति'''''''***)

नोट—१ ***'सदैव सुहावनि'*** से अकृत्रिम शोभाका स्थायी भाव दिखाया और उसका हेतु ***'रामपुरी'*** होना कहा, अतएव "***मंगलमय पावनि'*** कहकर उभय लोकोंकी सिद्धि दिखायी। ***'तदपि'*** अर्थात् रचनाकी आवश्यकता न थी तो भी प्रीतिके भावकी उमंगने रचना करायी। प्रेमियोंका भाव उत्सवकी तद्रूपता दिखाये बिना नहीं मानता, यह प्रेमोद्गारके भावकी महिमा है'।—(रा० च० मिश्र)

टिप्पणी—२ ***'तदपि प्रीति कै रीति सुहाई।'''*** इति। (क) तो भी प्रीतिकी रीति सुन्दर है। अर्थात् प्रीतिवाले (प्रेमी लोग) ऐसा ही करते हैं। वक्ता लोग यहाँ प्रीतिकी रीतिकी सराहना करते हैं। प्रीति भगवान्‌की सेवा कराती है। (श्रीरामजीमें जो उनकी प्रीति है वही यह सब करवा रही है।) इसीसे प्रीतिकी रीतिको ***'सुहाई'*** कहा। (ख) ***'मंगल रचना रची बनाई'*** इति। ***'बनाई'*** का भाव कि श्रीअयोध्याजीमें रचना तो है ही, उसमें विशेष रचना रचने लगे। (ग) प्रीतिकी रीति कहा है, अतः सब कामोंमें प्रीतिकी प्रधानता दिखा रहे हैं। यथा—***'सुनि सुभ कथा लोग अनुरागे। मग गृह गली सँवारन लागे॥'*** यहाँ सँवारनेमें अनुराग ही मुख्य है। पुनः, ***'तदपि प्रीति कै रीति सुहाई। मंगल रचना रची बनाई॥'*** यहाँ मङ्गल रचनामें भी प्रीति ही मुख्य है। प्रीतिकी रीतिकी सुन्दरता प्रत्यक्ष देख पड़ती है। बिना प्रेमके मङ्गल रचना नहीं होती; प्रेमी ही मङ्गल रचना करते हैं।

टिप्पणी—३ ***'ध्वज पताक पट चामर चारू।'''*** इति। (क) ध्वज-पताका खड़े किये, वस्त्रोंसे बाजार छाये गये, चँवर जगह-जगहपर टाँगे गये। पुनः, ***'छावा'*** सबके साथ भी हो सकता है। ध्वजा, पताका,

* अर्थान्तर—अवध सदैव सुहावन, मङ्गलमय और पावन है क्योंकि रामपुरी है। (पं० रा० कु०)।

चँवर इतने लगाये गये हैं कि इनसे भी बाजार छा गया। (ख) ध्वजा, पताका, पट आदि सब मङ्गल रचनाएँ हैं, यथा—*'मंगल कलस अनेक बनाए। ध्वज पताक पट चमर सुहाए॥'* (२८९। २) (ग) *'चारु'* का सम्बन्ध *'बाजारू'* से भी है। यथा—*'चारु बजार बिचित्र अँबारी।'* (२१३। २), *'बाजार रुचिर न बनइ बरनत बस्तु बिनु गथ पाइए।'* (७। २८), *बीथीं चौहट रुचिर बजारू।'* (७। २८) (घ)—*'छावा'* इति। ध्वजा, पताका, वस्त्रादिसे छा गया। पुनः, बाजार वितानसे भी छाया गया, यथा—*'बना बजारु न जाइ बखाना। तोरन केतु पताक बिताना॥'* (३४४। ६) (ङ) *'परम बिचित्र'* का भाव कि बाजार पहले ही विचित्र था, अब *'परम बिचित्र'* हो गया। पुनः ध्वजा-पताका-पटादि अनेक रंगके हैं, इससे परम विचित्रता हुई। अथवा, ध्वजा आदि सब बड़े विचित्र हैं; इनसे बाजार छाया है, अतः *'परम बिचित्र'* है। (च)—जहाँतक बाजारकी रचना कही, आगे निज-निज भवनकी रचना कहते हैं।

टिप्पणी—४ *'कनक कलस तोरन''* इति। (क) त्रेतायुगमें सबके यहाँ सुवर्णके पात्र होते थे। कलशोंका बनाव बारात लौटनेपर कहा गया है। यथा—*'छुहे पुरट घट सहज सुहाए। मदन सकुन जनु नीड़ बनाए॥'* (३४६। ६) इस समय बारातकी तैयारी की है, इससे यहाँ मङ्गलोंके नाम भर गिना दिये हैं। (ख)*'तोरन मनि जाला'* इति। शुभ कथा सुनते ही मणियोंके बन्दनवार (और झालरें) लगा दिये। इससे सूचित हुआ कि मणियोंके बन्दनवार आदि बनाये रखे रहते हैं, जब प्रयोजन पड़ता है तब लगाते हैं। *'मनि जाला'* कहनेसे सूचित हुआ कि बन्दनवार अनेक रंगोंकी मणियोंके बने हैं। यथा—*'मंजुल मनिमय बंदनिवारे। मनहु पाकरिपु चाप सँवारे॥'* (३४७। ३) इन्द्रधनुषमें अनेक रंग होते हैं। वैसे ही मणि अनेक रंगके हैं। (ग) *'हरद दूब दधि''* इति। ये सब सोनेके थालोंमें सजाये हुए हैं। यथा—*'दधि दुर्बा रोचन फल फूला। नव तुलसीदल मंगलमूला॥ भरि भरि हेम थार भामिनी। गावत चलीं सिंधुर गामिनी॥'* (७। ३)

प० प० प्र०—रामपुरीमें *'छावा परम बिचित्र बजारू'* और इसके अनुसार समस्त मङ्गल रचनाएँ एवं निज-निज भवन भी *'परम बिचित्र'* बनाये गये हैं। जनकपुरके भवनका मण्डप *'बिचित्र बिताना'* है, *'परम बिचित्र'* नहीं। दोनोंकी शोभा अवर्णनीय है। पर इतना साम्य होनेपर भी एककी रचना विचित्र है और दूसरेकी परम विचित्र, यह स्पष्ट है।

टिप्पणी—५*'मंगलमय निज निज भवन''* इति। (क) भवन मङ्गलमय हैं। पूर्व जो कहा था कि *'जद्यपि अवध''मंगलमय पावनि॥ तदपि प्रीति कै रीति सुहाई। मंगल रचना रची बनाई॥'* वही प्रसंग अभी चल रहा है। भवन मङ्गलमय हैं, उन्हें मङ्गलमय रचनासे रच रहे हैं। *'मंगलमय मंदिर सब केरे। चित्रित जनु रतिनाथ चितेरे॥'* (२१३। ५) जो जनकपुरमें कह आये हैं, वैसा ही यहाँ लगा लें। (ख)—*'निज भवन'* यहाँ कहकर जनाया कि प्रथम देवताओंके मन्दिर सजाये थे, अब अपने-अपने घर सजाते हैं। पूर्व जो *'मग गृह गली'* कहा था, वहाँ *'गृह'* से देवमन्दिरको जनाया। (ग) *'बनाइ'* शब्द यहाँ दिया और पूर्व *'मंगल रचना रची बनाई'* में भी *'बनाई'* शब्द दिया था। इससे सूचित किया कि बाजारकी और अपने-अपने घरोंकी, दोनोंकी रचना समान (एक-सी) की, इसीसे दोनों जगह यह शब्द दिया। (घ) *'चौकैं चारु'—'चारु'* कहकर जनाया कि चौकें मणिमय थीं, यथा—*'चौकैं चारु सुमित्रा पूरी। मनिमय बिबिध भाँति अति रूरी॥'* (२। ८। ३) (अथवा, गजमुक्तासे पूरी गयीं, यथा—*'चौकैं भाँति अनेक पुराईं सिंधुर मनिमय सहज सुहाईं॥'* (२८७। ८) *'गजमनि रचि बहु चौक पुराईं॥'* (७। ९) परन्तु *'चारु'* शब्द दो ही जगह आया है।)

जहँ तहँ जूथ जूथ मिलि भामिनि। सजि नव सप्त सकल दुति दामिनि॥ १॥
बिधुबदनीं मृग सावक लोचनि। निज सरूप रति मानु बिमोचनि॥ २॥
गावहिं मंगल मंजुल बानीं। सुनि कलरव कलकंठि लजानीं॥ ३॥
भूप भवन किमि जाइ बखाना। बिश्व बिमोहन रचेउ बिताना॥ ४॥

अर्थ—जहाँ-तहाँ बिजलीकी-सी कान्तिवाली, चन्द्रमुखी, हरणीके बच्चेकी-सी नेत्रोंवाली, अपने स्वरूपसे कामदेवकी स्त्री रतिके अभिमानको छुड़ानेवाली सब सुहागिनी स्त्रियाँ सोलहों शृङ्गार किये हुए, झुंड-झुंड बनाकर, मिलकर, सुन्दर वाणीसे सुन्दर मङ्गलगान कर रही हैं। उनके सुन्दर मधुर स्वरोंको सुनकर कोकिलें लज्जित हो गयीं॥ १—३॥ राजमहलका वर्णन कैसे किया जा सकता है (कि जिसमें) विश्वभरको विशेष मोहित कर लेनेवाला मण्डप रचा गया है॥ ४॥

टिप्पणी—१ *'जहँ तहँ जूथ जूथ मिलि भामिनि।'''* इति। (क) जूथ-जूथ कहनेका भाव कि सब घरोंमें झुंड-की-झुंड स्त्रियाँ नहीं हो सकतीं, सौ-पचास घरोंकी स्त्रियाँ एकत्र हुईं तब एक यूथ बना। इसीसे *'जहँ तहँ'* लिखा। (एक-एक महल्लेकी एक-एक जगह एकत्र हुईं।) *'मिलि'* इससे भी कहा कि स्त्रियोंमें यह रीति है कि वे मिलकर चलती हैं, मिलकर गाती हैं, यह मर्यादा भी है और इससे शोभा भी होती है। [(ख)—*'भामिनि'* का अर्थ है *'दीप्तिवती'* इसीको आगे *'दुति दामिनी'* कहा] (ग) *'सजि नवसप्त'* इति। 'जहाँ श्रीरामजीके दर्शनकी आतुरता है वहाँ शृङ्गारका सजना कहते नहीं बन सकता (वहाँ तो सुनते ही उठ दौड़ना होता है, जैसा कि जन्मोत्सव आदिके समय हुआ था।) यथा—*'बृंद बृंद मिलि चलीं लोगाईं। सहज सिंगार किए उठि धाईं॥'* (१९४। ३) *'समाचार पुरबासिन्ह पाए। नर अरु नारि हरषि सब धाए॥'''जो जैसेहिं तैसेहिं उठि धावहिं॥'* (७। ३) तब यहाँ शृङ्गार सजना क्यों कहा गया?' उत्तर—यहाँ श्रीरामजीके विवाहका समाचार सुनकर सब सुखी हुई हैं, इसीसे शृङ्गार कर रही हैं (विवाहके समय शृङ्गार किया ही जाता है)। (घ) 'सोलहों शृङ्गार' से जनाया कि ये सब सावित्री हैं, सौभाग्यवती वा सुहागिनी हैं। सोलह शृङ्गार ये हैं—अङ्गमें उबटन लगाना, स्नान करना, स्वच्छ वस्त्र धारण करना, केशोंका सँवारना, काजल या सुरमा लगाना, सेंदूरसे माँग भरना, महावर देना, भालपर बेंदी (तिलक) लगाना, चिबुकपर तिल बनाना, मेंहदी लगाना, अरगजा आदि सुगन्धित वस्तुओंका प्रयोग करना, आभूषण पहनना, पुष्पोंकी माला धारण करना, पान खाना और मिस्सी लगाना। यथा—*'अंग शुचि मज्जन बसन, माँग महावर केश। तिलक भाल तिल चिबुकमें भूषण मेंहदी बेश॥ मिस्सी काजल अरगजा, बीरी और सुगंध। पुष्पकली युत होय कर, तब नव सप्त निबंध॥'* (ङ)—*'दुति दामिनि'* से जनाया कि एक तो ये सब गौराङ्गिनी हैं, उसपर भी सोलहों शृङ्गारसे शरीरमें शोभा और अधिक हो गयी, क्योंकि सबके मणिमय आभूषणोंसे बिजलीकी दमक अधिक हो रही है।'

टिप्पणी—२ *'बिधु बदनी'''* इति। (क) यहाँ वाचक धर्मलुप्तोपमा अलङ्कार है। स्त्रियोंके मुख और नेत्र उपमेय हैं, विधु और मृगशावक उपमान हैं। धर्म और वाचक नहीं हैं। [चन्द्रमामें 'शशाङ्क' श्याम चिह्न होता है, वैसे ही चन्द्रवदनमें 'मृगशावक नेत्र' हैं। (प्र० सं०)] (ख) *'निज सरूप रति मान बिमोचनि'* में 'पञ्चम प्रतीप अलङ्कार' है। यहाँ उपमाके स्थानमें रतिका नाम लिया गया, किंतु सुन्दरतामें वह उपमेयकी बराबरीमें व्यर्थ है, उपमेयसे उपमानका निरादर है।

टिप्पणी—३ *'गावहिं मंगल मंजुल बानी॥'''''''''* 'इति। (क) *'मंगल'* इति। मङ्गल-समयमें देवसम्बन्धी गीतोंका गान मङ्गल-गान कहलाता है। यथा—*'गावहिं सुंदरि मंगल गीता। लै लै नाम राम अरु सीता॥'* (यह मङ्गल-गान है क्योंकि इसमें श्रीसीतारामजीका नाम है।) (ख) *'मंजुल बानी'* इति। अर्थात् सुन्दर मधुर वाणीसे, जैसा आगे स्पष्ट है। (ग) *'सुनि कलरव कलकंठि लजानी'* इति। कोयलका लज्जित होना इस प्रकार है कि वनके कोकिलोंका बोलना पावसमें बंद हो जाता है और पालतू (पाले हुए) कोयलोंका बोलना आश्विनमासमें बंद होता है। कार्तिकमें सभी कोकिलें चुप रहती हैं। यहाँ स्त्रियोंका मङ्गलगान कार्तिकमें हो रहा है। कोकिलोंका कार्तिकमें बोलना, मानो इन्हींके गानके सुरीले स्वरको सुनकर लज्जित होनेके कारण बंद हो गया।

टिप्पणी—४ जनकपुर और अयोध्यापुरीकी स्त्रियोंकी शोभा समान (एकही-सी) लिखते हैं।

श्रीअवधवासिनी		श्रीजनकपुरवासिनी
बिधुबदनीं मृगसावक लोचनि	१	बिधुबदनी सब सब मृगलोचनि
निज सरूप रति मानु बिमोचनि	२	सब निज तन छबि रति मद मोचनि
सजि नव सप्त सकल दुति दामिनि	३	पहिरें बरन बरन बर चीरा। सकल बिभूषन सजे सरीरा॥ सकल सुमंगल अंग बनाए।
गावहिं मंगल मंजुल बानी। सुनि कलरव कलकंठि लजानी॥	४	करहिं गान कलकंठि लजाए।

☞ श्रीअयोध्याजीमें श्रीरामजीका प्रभाव है और श्रीमिथिलाजीमें श्रीसीताजीका प्रभाव है।

प० प० प्र०—यह वर्णन श्रीरामपुरीकी पुरवनिताओंका है। इनमें न तो अन्तःपुरकी रानियाँ हैं और न *'जे सुरतिय सुचि सहज सयानी'* हैं, जिनका उल्लेख ३१८ (६-८) में हुआ है। दोनोंका मिलान सूक्ष्म दृष्टिसे देखने योग्य है। (१) यहाँ रामपुरीकी सामान्य वनिताओंका वर्णन है और जनकपुरकी रानियों, सुहागिनियों आदि वर नारियोंका दोहा ३१८ में वर्णन है। (२) यद्यपि दोनों विधुवदनी हैं तथापि वहाँ (जनकपुर) की वर नारियाँ केवल *'मृगलोचनि'* हैं। मृगशावकके नेत्र अधिक मनोहर और सुन्दर होते हैं। (३) वहाँ *'मोचनि'* है तो यहाँ 'वि-मोचनि' (वि=विशेष) है। (४) वहाँ रानियाँ आदि गजगामिनी वर-नारियाँ दूलह रामका परिछन करनेके लिये जान-बूझकर सज-धजकर *'पहिरें बरन बरन बर चीरा।'* जा रही हैं और यहाँ सामान्य पुरवासिनियाँ गली-गलीसे मिलकर शीघ्रतासे चली हैं, इससे वे केवल सहज शृङ्गार *'किये उठि धाईं'* ऐसी गड़बड़ीमें ही घर-घरसे निकली हैं। इस मिलानसे अनुमान करके सिद्धान्त निकालना हम पाठकोंको सौंप देते हैं।

टिप्पणी—५ यहाँतक श्रीअयोध्याजीके घर-घरका हाल कहा। आगे भूप-भवनका हाल कहते हैं।

टिप्पणी—६ *'भूप भवन किमि जाइ बखाना।'* इति। (क) *'किमि जाइ बखाना'*—भाव कि जहाँ प्रजाओंके घर-घरका ऐसा हाल है, वहाँके राजाके महलका वर्णन तब कैसे हो सकता है? पुनः, जहाँका एक वितानमात्र विश्वको विमोहित करनेवाला है, वहाँ फिर पूरे राजभवनकी शोभाको कौन कह सके? (ख) *'बिश्वबिमोहन रचेउ बिताना'* इति। आशयसे जान पड़ता है कि जब पुरवासी अपने-अपने घरोंको सजाने लगे, तब राजाने भी गुणी लोगोंको बुलवाकर अपने यहाँ मण्डपकी रचना करायी। [विश्वमें *'बिधि'* का भी अन्तर्भाव है। जनकपुरके मण्डपको देखकर *'बिधिहि भयउ आचरजु बिसेषी'* और यह मण्डप विशेष मोहित करनेवाला है। आश्चर्य और विमोहमें बड़ा अन्तर है। (प० प० प्र०)] (ग)—यहाँ इतनाभर लिखा कि *'बिश्वबिमोहन रचेउ बिताना'*, वितानका विस्तारसे वर्णन नहीं किया और जनकपुरके मण्डपका वर्णन बहुत विस्तारसे किया है। कारण यह है कि जनकपुरके मण्डपतले विवाह होना है और यहाँ विवाह नहीं होना है, यहाँ तो वितान केवल मङ्गलके लिये बनाया गया। (बारात लौटनेपर इसके नीचे कंकण छोड़नेकी रसम की जाती है और भी कुछ रीतियाँ होती हैं; इसलिये मण्डप दूलहके यहाँ भी छाया जाता है। बारात जानेके पूर्व भी कुछ रीतियाँ होती हैं, पर दूलह यहाँ नहीं है, इससे वे रस्में भी यहाँ न होंगी।) इसीसे जनकपुरमें विस्तारसे कहकर फिर कहा—*'जेहि मंडप दुलहिनि बैदेही। सो बरनैं असि मति कबि केही॥ दूलहु रामु रूप गुन सागर। सो बितानु तिहुँ लोक उजागर॥'* (२८९। ४-५) [पुनः, यहाँ अति संक्षिप्त वर्णन करनेमें भाव यह है कि *'चलहु बेगि'* को चरितार्थ करना है। इसीसे कविको भी शीघ्रता है। वहाँ जनकभवनकी शोभा *'बरनै असि मति कबि केही'* और यहाँ दशरथभवन *'किमि जाइ बखाना'* अर्थात् कोई भी बखान नहीं कर सकता। (प० प० प्र०)]

मंगल द्रब्य मनोहर नाना। राजत बाजत बिपुल निसाना॥ ५॥
कतहुँ बिरिद बंदी उच्चरहीं। कतहुँ बेद धुनि भूसुर करहीं॥ ६॥

गावहिं सुंदरि मंगल गीता। लै लै नामु रामु अरु सीता॥७॥
बहुत उछाहु भवनु अति थोरा। मानहुँ उमगि चला चहुँ ओरा॥८॥

अर्थ—अनेकों मनके हरनेवाले सुन्दर मङ्गल द्रव्य (पदार्थ) उपस्थित एवं शोभित हैं, बहुत-से डंके-नगाड़े बज रहे हैं॥५॥ कहीं तो भाट विरदावली उच्चारण कर रहे हैं और कहीं ब्राह्मण वेदध्वनि कर रहे हैं॥६॥ सुन्दर स्त्रियाँ श्रीराम और श्रीसीताजीका नाम ले-लेकर मङ्गल गीत गा रही हैं॥७॥ उत्साह तो बहुत है और महल अत्यन्त छोटा है। मानो वह उत्साह उमड़कर चारों दिशाओंमें निकल चला॥८॥

टिप्पणी—१ (क) *'मंगल द्रब्य मनोहर नाना'* इति। जनकपुरके वितानके तले सुर-प्रतिमाएँ मङ्गल द्रव्य लिये खड़ी हैं, यथा—*'सुरप्रतिमा खंभन्ह गढ़ि काढ़ीं। मंगल द्रब्य लिये सब ठाढ़ीं॥'* (२८८। ७) वैसे ही अयोध्याजीमें मण्डपतले *'मंगल द्रब्य……'* हैं। 'मनोहर' से जनाया कि सब द्रव्य मणियोंके बने हैं। (ख) *'राजत'* कहनेका भाव कि बजानेवाले बड़े प्रवीण हैं, बड़ी प्रवीणतासे बजाते हैं, इससे भवन शोभित होता है। (पं० रामकुमारजी *'राजत'* को भवनके लिये मानते हैं। हमने 'राजत' को 'मङ्गल द्रव्य' की क्रिया मानकर अर्थ किया है।) (ग) *'बाजत'*—पूर्व निशानोंका बजाना कह आये, यथा—*'हरषि हनें गहगहे निसाना।'* (२९६। १), इसलिये अब बजाना न कहकर केवल उनका बजाना कहते हैं। (घ) *'बिपुल निसाना'* क्योंकि राजमहल बहुत बड़ा है, प्रत्येक फाटकपर कई-कई नगाड़े बज रहे हैं।

टिप्पणी—२ *'कतहुँ बिरिद बंदी…'* इति। (क) जब राजभवनका वर्णन किया तब बंदीका विरद पढ़ना और ब्राह्मणोंका वेदध्वनि करना भी कहा। *'कतहुँ'* से जनाया कि सब जगह सब नहीं हैं, कहीं वेदपाठी ब्राह्मण हैं और कहीं भाट हैं, एक जगह दोनों रहते तो दोनोंमें विक्षेप होता। दोनों ही उच्चस्वरसे पढ़नेवाले हैं, इसीसे पृथक्-पृथक् हैं। वंशकी प्रशंसा 'विरद' है, यथा—*'बंस प्रसंसक बिरिद सुनावहिं।'* (३१६। ६) (ख) बंदी और भूसुर दोनोंको एक साथ कहनेका भाव कि बंदीजन इस लोकमें बड़ाई करते हैं और ब्राह्मण वेद सुनाकर परलोक बनाते हैं।

टिप्पणी—३ *'गावहिं सुंदरि…'* इति। (क) *'सुंदरि'* कहकर जनाया कि आभूषण, वर्ण, मुख, नेत्र, स्वर, स्वरूप इत्यादि सब सुन्दर हैं। जो ऊपर *'जहँ तहँ जूथ जूथ मिलि भामिनि।'* से *'कलकंठि लजानी'* तक कह आये, वही यहाँ *'सुंदरि'* शब्दसे सूचित किया। (ये अन्तःपुरकी स्त्रियाँ हैं। इनके रूपादिका किञ्चित् भी उल्लेख न करनेमें *'किमि जाइ बखानी'* ही हेतु है।) (प० प० प्र०) (ख) बाहेरकी ड्योढ़ीसे लेकर भीतर जहाँ स्त्रियाँ हैं वहाँतकका वर्णन करते हैं। बाहेरकी ड्योढ़ीपर निशान बज रहे हैं। उसके आगे वन्दीजन विरदावली कह रहे हैं। उसके और आगे ब्राह्मण वेद पढ़ रहे हैं और इनके आगे स्त्रियाँ मङ्गल गीत गा रही हैं। जैसा-जैसा हो रहा है, उसी क्रमसे कवि कह रहे हैं। (ग) *'मंगल गीता'* इति। भाव कि जैसे भगवद्गीता, अर्जुनगीता, पाण्डवगीता; वैसे ही 'मङ्गलगीता' है। इसमें मङ्गलहीके गीत हैं। इनमें अपनी ओरसे 'राम' और 'सीता' का नाम मिलाकर गाती हैं। ['बर-दुलहिनि'का नाम लेना अद्यापि यह रीति है। अब भी चतुर स्त्रियाँ श्रीपार्वतीमङ्गल, श्रीजानकीमङ्गल, विनय आदिके गीत गाती हैं, ऐसे ही तब भी कोई मङ्गल गीत रहा होगा। (घ)—लोकमें प्रसिद्ध है कि वर-मण्डपमें वरके नामसे बनरा और कन्या-मण्डपमें कन्याके नामसे बनरे गाये जाते हैं। यहाँ दोनोंके नामसे गाये, क्योंकि जनकपुरवासिनी अवधमें व्याही थीं, जो इनमें सम्मिलित हैं वे सीताहीका नाम लेकर गाती हैं। राम-पक्ष अधिक होनेसे रामका नाम पहले कहा। (रा० च० मिश्र) (नोट—ब्याहके जो बनरे गाये जाते हैं, उनमें प्रायः वर और कन्याके नाम होते हैं, जहाँ नाम मालूम होते हैं।)] (ङ)—ये अयोध्याजीकी स्त्रियाँ हैं, इसलिये ये 'राम' जीका नाम लेती हैं, पीछे 'सीता' नाम लेती हैं। ये स्त्रियाँ भी भवनके भीतर ही कहींपर गा रही हैं, जैसे कहीं वन्दीजन और कहीं ब्राह्मण।

टिप्पणी—४ *'बहुत उछाहु भवनु अति थोरा।…'* इति। (क) *'बहुत उछाहु भवनु अति थोरा'* यह उमंगका हेतु कहा। (पात्र जब छोटा होता है और वस्तु बहुत तब पात्र भर जानेपर वह बाहर जाती

ही है।) (ख) *'मानहुँ उमगि चला'''* इति। 'उमग कर चला' कहकर सूचित किया कि भवन 'उछाह' में डूब गया। 'चारों ओर चला' अर्थात् राजमहलके चारों ओर श्रीअयोध्याजीमें होने लगा, महलसे उमड़कर नगरमें भर गया, तब यहाँसे उमगकर चौदहों भुवनोंमें भरा। (ग) *'उमगि चला'* कथनसे सूचित किया कि प्रथम राजभवनमें उत्साह-उत्सव हुआ, तब नगरमें और उसके पीछे चौदहों भुवनोंमें; यहाँतक *'बहुत उछाहु भवनु अति थोरा'* का स्वरूप दिखाया। श्रीदशरथजी महाराजके यहाँ निशान आदि बजे और मङ्गलादि हुए। ये सर्वत्र सुननेमें आये। यही उमगकर चारों ओर जाना है।'''(मा० पी० प्र०) (घ) वक्ता *'बहुत उछाह'* का वर्णन बाहेरसे करते आ रहे हैं, इसीसे वे चौदहों भुवनोंमें उत्साह कहते हैं—*'भुवन चारि दस भरा उछाहू',* तब श्रीअयोध्याजीके बाजारमें कहते हैं, यथा—*'सुनि सुभ कथा लोग अनुरागे। मग गृह गली सँवारन लागे॥',* फिर अयोध्याजीके घरोंमें, यथा—*'मंगलमय निज निज भवन लोगन्ह रचे बनाइ।'* अन्तमें राजभवनमें कहा, यथा—*'भूप भवन किमि जाइ बखाना'।*

दो०—सोभा दसरथ भवन कइ को कबि बरनै पार।
जहाँ सकल सुर सीसमनि राम लीन्ह अवतार॥ २९७॥

अर्थ—श्रीदशरथजी महाराजके महलकी शोभा कौन कवि वर्णन कर पार पा सकता है कि जहाँ समस्त देवताओंके शिरोमणि श्रीरामचन्द्रजीने अवतार लिया?॥ २९७॥

टिप्पणी—१ (क) *'भूप भवन किमि जाइ बखाना।'* (२९७। ५) उपक्रम है और *'सोभा दसरथ भवन'''* पर उसका उपसंहार है। (ख) शोभाका पार कोई कवि नहीं वर्णन कर सकते—इसके दो हेतु बताये। एक तो यह कि श्रीदशरथ महाराजका वैभव भारी है, यह उनका भवन है। दूसरे, यह कि श्रीरामजी समस्त देवताओंके शिरोमणि हैं, उन्होंने यहाँ अवतार लिया है। *'सकल सुर सीसमनि'* कहनेका तात्पर्य यह है कि ब्रह्मा-विष्णु-महेश तथा इन्द्रादिके भवनोंमें ऐसी शोभा नहीं है। (जैसे श्रीजनकपुरमें श्रीजानकीजीके सम्बन्धसे उसकी महिमा कही वैसे ही यहाँकी महिमा और शोभाकी अपारता श्रीरामजीके सम्बन्धसे कही गयी।) [पुनः भाव कि जैसे श्रीरामजीकी सोभा अनुपम मन-गोतीत, अनिर्वचनीय है, वैसे ही जिस भवनमें उन्होंने अवतार लिया वह भी अनिर्वचनीय है। जैसे दशरथ *'गुन गन बरनि न जाहीं',* वैसा ही उनका भवन भी वर्णनातीत है। (प० प० प्र०)]

भूप भरत पुनि लिये बोलाई। हय गय स्यंदन साजहु जाई॥ १॥
चलहु बेगि रघुबीर बराता। सुनत पुलक पूरे दोउ भ्राता॥ २॥
भरत सकल साहनी बोलाए। आयसु* दीन्ह मुदित उठि धाए॥ ३॥
रचि रुचि† जीन तुरग तिन्ह साजे। बरन बरन बर बाजि बिराजे॥ ४॥

शब्दार्थ—**'साहनी'**=हाथी घोड़े-रथके दारोगा। **रुचि**=रुचिर, रुचिकर, चमचमाती हुई।

अर्थ—फिर राजाने भरतजीको बुला लिया। (और कहा कि) 'जाकर हाथी, घोड़े और रथ सजाओ॥ १॥ शीघ्र रघुवीर श्रीरामचन्द्रजीकी बारातमें चलो'। यह सुनकर दोनों भाई पुलकसे भर गये॥ २॥ भरतजीने सब दारोगाओंको बुलाकर आज्ञा दी। वे प्रसन्न हो उठ दौड़े॥ ३॥ उन्होंने रुचिर एवं रुचिकर (जो जिस घोड़ेके योग्य थीं उन) जीनोंसे रचकर घोड़ोंको सजाया। रङ्ग-विरङ्गके और जाति-जातिके उत्तम घोड़े शोभित हो रहे हैं॥ ४॥

टिप्पणी—१ *'भूप भरत पुनि लिये बोलाई।'''* इति। (क) राजाने रनवासको बुलाया और पत्रिका

---

* आयसु—१६६१।

† 'रचि रचि'—को० रा०। दीनजी 'रचि रचि' को उत्तम पाठ मानते हैं। उसका अर्थ होगा 'जीन रच-रचकर अर्थात् उसपर अनेक प्रकारकी रचना करके घोड़ोंपर सजायी गयीं।' भागवतदासजी, गौड़जी, १६६१, १७०४, १७२१, १७६२ में 'रुचि' है।

सुनायी, यथा—*'राजा सब रनिवास बोलाई।'''*। *'पुनि'* का सम्बन्ध वहींसे है। जब राजा द्वारपर आये तब उन्होंने भरतजीको बुलवाया। इससे पाया गया कि जब राजा रनवासमें गये तब भरतजीका साथ छूट गया। वे राजाके साथ भीतर मर्यादाका विचार करके नहीं गये कि माता-पिता एकत्र होंगे, स्नेहकी कोई बात हमारे सामने करनेमें सकुचेंगे, क्योंकि अब सयाने हो गये हैं। साथ होते तो बुलाना न कहते। (ख)—*'हय गय स्यंदन साजहु'''* इति। चतुरंगिणी सेनामेंसे यहाँ घोड़े, हाथी और रथ ये तीन ही कहे, पैदलको नहीं कहा। क्योंकि चतुरंगिणीके यही तीन अङ्ग साजे जाते हैं, पैदल तो स्वयं ही आज्ञा पाते ही सज जाते हैं, घोड़ों आदिको सजाना पड़ता है। (ग)—गुरुजीकी आज्ञा है कि *'सजहु बरात बजाइ निसाना',* वही आज्ञा राजा भरतजीको दे रहे हैं। हाथी, घोड़े और रथोंका सजाना ही 'बरातका' सजाना है, यह बात यहाँ स्पष्ट की।

टिप्पणी—२ *'चलहु बेगि'''* इति। (क) *'बेगि'* की शृङ्खला। (सिलसिला वा क्रम) श्रीगुरुजीसे चली है। प्रथम गुरुकी आज्ञा राजाको हुई कि *'चलहु बेगि'।* इसीसे राजाने श्रीभरतजीको *'बेगि'* चलनेकी आज्ञा दी। (*'रघुबीर'* शब्दसे व्यञ्जित होता है कि दशरथजीके अन्तश्चक्षुको श्रीरामजीकी *'कीरति करनी'* अभीतक दिखायी पड़ रही है। इस शब्दसे वे जानते हैं कि बारात ऐसी सजाना चाहिये जो रघुवंशी वीरोंके योग्य हो। भरतजी इस आशयको समझ गये। (प० प० प्र०) (ख)—*'सुनत पुलक पूरे दोउ भ्राता'* इति। प्रथम श्रीराम-लक्ष्मणजीका कुशल-समाचार सुनकर आनन्द हुआ, यथा—*'सुनि पाती पुलके दोउ भ्राता। अधिक सनेह समात न गाता॥';* अब बारात चलनेकी आज्ञा सुनकर आनन्द हुआ कि अब चलकर दोनों भाइयोंका दर्शन होगा; यथा—*'सब के उर निर्भर हरषु पूरित पुलक सरीर। कबहिं देखिबे नयन भरि राम लषनु दोउ बीर॥'* (३००) [प्रथम भरतजीने विचारा कि दो भाई उधर हैं और शत्रुघ्नजी लड़के हैं, ऐसा न हो कि महाराज हमें यहाँ छोड़ें कि कोई यहाँ अवश्य चाहिये। पर जब *'चलहु'* कहा, तब बड़ा आनन्द हुआ, शरीर भरपूर पुलकायमान हो गया। (प्र० सं०) *'दोउ भ्राता'* कहनेसे पाया गया कि भरतजीके साथ-ही-साथ शत्रुघ्नजी भी आये। ये उनके अनुगामी हैं, सदा साथ रहते हैं। प्रज्ञानानन्द स्वामीजीका मत है कि बहुत दिनोंसे वियोग है, आज यह श्रीरामजीकी अल्प सेवा बड़े भाग्यसे मिली, अतः पुलकित हुए।]

टिप्पणी—३ *'भरत सकल साहनी'''* इति। (क) *'सकल साहनी'* अर्थात् घोड़ोंके साहनी, हाथियोंके साहनी और रथोंके साहनी, सबके साहनियोंको बुलाया। (ख)—*'आयसु दीन्ह'*—क्या आज्ञा दी यह यहाँ नहीं लिखते, क्योंकि राजाकी आज्ञामें उसे स्पष्ट कह आये हैं। *'हय गय स्यंदन साजहु जाई'* यह आज्ञा भरतजीने भी दी। (ग) *'मुदित'*—साहनी भी मुदित हुए, क्योंकि यह बात ही बड़े हर्षकी है, जो सुनता है वही हर्षित होता है। यथा—*'सभा समेत राउ अनुरागे', 'प्रेम प्रफुल्लित राजहिं रानी', सुनि सुभकथा लोग अनुरागे', 'सुनत पुलक पूरे दोउ भ्राता', 'आयसु दीन्ह मुदित उठि धाए',* इत्यादि। (घ)—*'उठि धाए'* से जनाया कि भरतजीने घोड़े आदि शीघ्र ही सजानेकी आज्ञा दी। गुरुने राजाको, राजाने भरतजीको और इन्होंने साहनी लोगोंको शीघ्रता करनेकी आज्ञा सिलसिलेसे दी।

टिप्पणी—४ *'रचि रुचि जीन'''* इति। (क) यहाँ *'रुचि'* से *'रुचिर'* समझना चाहिये। [*'रुचि'* के दोनों अर्थ यहाँ गृहीत होंगे। एक तो 'सुन्दर शोभाके अनुकूल, फबती हुई, योग्य, चमकदार और दूसरे अपनी-अपनी रुचिकी जीन। अर्थात् जिस घोड़ेपर जो खिले, फबै, वही उसपर अच्छी तरह सजाकर लगाते हैं। यहाँ *'तुरग'* नाम देकर शीघ्रताकी हद कर दी।] (ख) *'तुरग'* का भाव कि जो 'तुर (तुरा, त्वरा वा वेग) से गमन करे' अर्थात् शीघ्रगामी घोड़े। (इसी शीघ्रताको आगे चौ० ६ में *'निदरि पवनु जनु चहत उड़ाने'* से पुष्ट किया है। यहाँ शीघ्रताका काम है, इससे घोड़ोंके साजका वर्णन इतनेहीमें कर दिया।) *'रचि रुचि जीन तुरग तिन्ह साजे'* इतना ही यहाँ कहा, क्योंकि आगे दोहा ३१६में जब श्रीरामजी घोड़ेपर सवार होंगे तब इनका साज-शृङ्गार विस्तृतरूपसे वर्णन करेंगे। यथा—*'जगमगत जीनु जराव जोति सुमोति मनि मानिक लगे। किंकिनि ललाम लगामु ललित बिलोकि सुर नर मुनि ठगे॥'* ('वहाँ न कहना होता तो यहाँ लिख

देते।') (ग) —'*बरन बरन बर बाजि बिराजे*' इति। ('*बरन-बरन*' अर्थात् सब्जा, श्यामकर्ण, सुमन्द, नकुल, हंस, कुमैत, ताजी, अवलक, सुरखाब, अर्बी इत्यादि।) वर्ण-वर्णके कहकर '*बिराजे*' कहनेका भाव कि जिस वर्णमें जैसी जीन शोभित होती है वैसी उसमें साजी है। '*बिराजे*' का भाव कि एक तो घोड़े ही '*बर*' (श्रेष्ठ) हैं, दूसरे वर्णके अनुकूल जीनसे साजे गये हैं, इससे विशेष राजते (शोभित होते) हैं।

सुभग सकल सुठि चंचल करनी। अय इव जरत धरत पग धरनी॥५॥
नाना जाति न जाहिं बखाने। निदरि पवनु जनु चहत उड़ाने॥६॥
तिन्ह सब छयल भए असवारा। भरत सरिस बय राजकुमारा॥७॥
सब सुंदर सब भूषन धारी। कर सर चाप तून कटि भारी॥८॥

दो०—छरे छबीले छयल सब सूर सुजान नबीन।
जुग पदचर असवार प्रति जे असिकला प्रबीन॥२९८॥

शब्दार्थ—**अय** (अयस्)=लोहा। छयल (छैल)=बने-ठने, रंगीले। **छरे**=छटे हुए, चुने हुए। **छबीले**=छबि वा शोभायुक्त, बाँके, कान्तिमान्। यथा—'**शोभा कान्तिः द्युतिः छबिः।**'

अर्थ—सभी अत्यन्त '*सुभग*' हैं और सभीकी अत्यन्त चंचल करनी (चाल) है। वे पृथ्वीपर ऐसे पैर रखते हैं जैसे जलते हुए लोहेपर पैर रखते हों॥५॥ वे अनेकों जातिके हैं। उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। मानो पवनका निरादर करके उड़ना ही चाहते हैं॥ ६॥ उन सबोंपर भरतजीके समान अवस्थावाले बने-ठने रंगीले राजकुमार सवार हुए॥७॥ सभी सुन्दर हैं, (अंगोंमें) सब आभूषणोंको, हाथोंमें धनुष-बाणको और कमरमें भारी तरकसको धारण किये हैं॥८॥ सभी छटे हुए छबीले-छैल शूरवीर, सुजान और नवीन (किशोर अवस्थाके अर्थात् नवयुवक) हैं। प्रत्येक सवारके साथ दो-दो पैदल हैं, जो असिकला-(तलवारके हुनर कौशल-) में कुशल हैं॥२९८॥

टिप्पणी—१ '*सुभग सकल सुठि*...' इति। (क) '*सुभग*' शब्द 'सुन्दरता' और सुन्दर ऐश्वर्य दोनों अर्थोंका यहाँ बोधक है। घोड़े सुन्दर हैं और ऐश्वर्ययुक्त हैं। अर्थात् अनेक आभूषणोंको धारण किये हुए हैं। '*सकल*' देहलीदीपकन्यायसे दोनों ओर लगता है। सभी सुन्दर हैं और सभीकी करनी चञ्चल है। '*सुठि*' कहकर जनाया कि और घोड़े भी चञ्चल होते हैं पर, ये 'अत्यन्त चञ्चल' हैं। (ख)—'*सुठि चंचल करनी*' अर्थात् चलनेमें, कूदनेमें, नाचनेमें और दौड़नेमें बहुत ही तेज हैं। चञ्चल करनीका आगे दृष्टान्त देते हैं—'*अय इव*...'।

टिप्पणी—२ '*नाना जाति न जाहिं बखाने*...' इति। (क) संसारमें तीन स्थल हैं—जल, थल, और नभ। तीनोंका हाल कहते हैं। थलमें जलते हुए लोहे (पर पैर धरने) के समान पैर धरते हैं—'*अय इव जरत*...'। पवनका निरादर कर आकाशमें उड़ना चाहते हैं। और जलमें थलकी तरह चलते हैं, यथा—'*जे जल चलहिं थलहिं की नाईं*'। (ख) ('*नाना जाति न जाहिं बखाने*' अनेकों जातिके हैं, बखाने नहीं जा सकते यह कहकर भी कुछ जातिका संकेत भी कर दिया है।) '*अय इव जरत धरत पग धरनी*' ये 'जमावटि' हैं। '*निदरि पवनु जनु चहत उड़ाने*' ये 'कुदैती' हैं। '*निदरि पवनु*' से जनाया कि ये पवनवेगी घोड़े हैं। [इसी प्रकार यहाँ जलचर, थलचर, नभचर तीन जातिके भी जना दिये। यथा—'*अय इव जरत धरत पग धरनी*' से थलचर; '*निदरि पवनु जनु चहत उड़ाने*' से नभचर और '*जे जल चलहिं*' से जलचारी। '*जे जल चलहिं*...' ये दरियायी घोड़े हैं। (प्र० सं०)] (ख) '*जनु चहत उड़ाने*'—भाव कि उड़ना चाहते हैं, पर उड़ने नहीं पाते, क्योंकि सेवक उन्हें थामें हुए हैं।

टिप्पणी—३ '*तिन्ह सब छयल भए असवारा।*...' इति। (क) '*सब छयल*' अर्थात् छैलोंको छोड़ अन्य अवस्थावाले इनपर नहीं सवार हुए। (ख) '*भरत सरिस बय*' का भाव कि जब भरतजी घोड़ेपर सवार हुए तब उन्होंने अपने समान अवस्थावाले राजकुमारोंको अपने साथ लिया। यह राजाओंकी चाल है। वे

अपने रूप और अवस्थाके समान पुरुषोंको खोजकर संगमें रखते हैं। (ग) [*'छयल'* से सबकी किशोर अवस्था सूचित की। *'भरत सरिस'''* से यह जनाया कि सबके आगे भरतजीकी सवारी निकली; क्योंकि राजाकी आज्ञा है कि शीघ्र चलो। अतः भरतजीने सोचा कि हमारे आगे चलनेसे सब शीघ्रता करेंगे यहाँ सब छैले हैं, क्योंकि भरतजीके साथवालोंका वर्णन है। अपनी-अपनी अवस्था इत्यादिवाले एक साथ रहते हैं, तभी शोभा होती है। (प्र० सं०)] (घ)—*'राजकुमारा'* इति। ये सब राजकुमार ही हैं। अन्य जातिके कुमार इनमें नहीं हैं। भरतजी राजकुमार हैं, इसीसे उन्होंने राजकुमारोंको संग लिया।

टिप्पणी—४ *'सब सुंदर सब भूषन धारी।'''* इति। (क) दूसरा *'सब'* भूषण और भूषणधारी दोनोंके साथ है। सभी भूषणधारी हैं और सभी आभूषण धारण किये हैं। *'सब'* अर्थात् जितने आभूषण पुरुषोंमें पहने जाते हैं वे सब। *'सब सुंदर सब भूषन'''* कहकर जनाया कि भरतजीके समान ही ये भी सुन्दर आदि हैं। (ख) आभूषणके समीप धनुष-बाणका वर्णन करके सूचित किया कि धनुष-बाण भी वीरोंके आभूषण हैं। पुनः इस समय बारातकी तैयारी है और ये सब छबीले, छैले और नवयुवक हैं, इससे आभूषण धारण किये हैं और वीर हैं, इससे धनुष-बाण धारण किये हैं। (ग) पूर्वार्ध *'सब सुंदर सब भूषन धारी'* इस चरणमें शृङ्गार कहा और *'कर सर चाप तून कटि भारी'* इस चरणमें वीररस कहते हैं। (शृङ्गार और वीररस दोनों साथ कहनेका भाव कि) जैसे कामदेव शृङ्गारमूर्ति है और वीरोंमें प्रधान है, यथा—*'जाकी प्रथम रेख भट माहीं'* (विनय० ४) वैसे ही ये सब रघुवंशी राजकुमार सुन्दर और वीर हैं। (घ) *'तून कटि भारी'* इति। भारी तरकश है अर्थात् उसमें बहुत बाण भरे हुए हैं। बहुत बाणोंसे भरा भारी तरकश लेनेका तात्पर्य यह है कि सब सुन चुके हैं कि जनकपुरमें तीनों लोकोंके वीरोंका मान भङ्ग हुआ है, न जाने विवाहके समय कौन वीर कहाँसे युद्धके लिये आ जाय, इसीसे सब साधन साथ हैं। (पुनः इनको छरे, छबीले और छैला कह आये हैं, इसमें संदेह हो सकता है कि ये सब बड़े कोमल और सुकुमार होंगे, अतः *'कर सर चाप तून कटि भारी'* कहकर जनाया कि ये वीर हैं।) [राजाने तो इतना ही कहा था—*'हय गय स्यंदन साजहु जाई।'''* तथापि यह सब भरतजीकी सावधानता है। *'रघुबीर बराता'* का भाव यहाँ चरितार्थ किया है। (प० प० प्र०)]

टिप्पणी—५ *'छरे छबीले छयल सब सूर'''* इति। (क) जो ऊपर *'तिन्ह सब छयल भए असवारा'* कह आये वे ही *'छरे छबीले'''* हैं। *'छयल'* विशेष्य हैं और सब विशेषण हैं। ऊपर *'सुंदर'* कहा और यहाँ *'छबीले'*, इसमें पुनरुक्ति नहीं है। जैसे चन्द्रमा सुन्दर है और कान्तिमान्, वैसे ही ये सब छैल सुन्दर हैं और कान्तिमान्। *छबीले*=कान्तिमान्। (ख) पूर्वके वर्णनको यहाँ स्पष्ट करते हैं। (१) भरतसरिस वय है। कौन वय है?—नवीन। (२) राजकुमार हैं। इसीसे *'छरे'* कहा। अर्थात् छाँटकर सब राजकुमारोंको ही सङ्गमें लिया है, दूसरी जातिको नहीं। (३) सुन्दर हैं, इसीसे छबीले हैं। (४) भूषणधारी हैं, क्योंकि सब छैले हैं। (५) *'कर सर चाप'* है, क्योंकि सब शूरवीर हैं। (६) कटिमें भारी तूणीर है, क्योंकि सब बाणोंके प्रयोगमें सुजान हैं। [यहाँ छः विशेषण दिये गये, जो गुण ऊपर चौपाईमें कहे, वे सब यहाँ एकत्र किये गये। यथा—पूर्व कहा कि *'भरत सरिस बय राजकुमारा'* उसकी जोड़में यहाँ *'नवीन'*, पूर्व *'राजकुमार'* उसकी जोड़में यहाँ *'छरे'*। पूर्व *'सब सुंदर'* यहाँ *'छबीले'*। पूर्व *'भूषन धारी'* और *'छयल भए असवारा'* कहा और यहाँ *'छयल'*। पूर्व *'कर सर चाप'* यहाँ *'सूर सुजान'*। *'सूर सुजान'* से जनाया कि बाण चलानेमें सब सुजान हैं, ऐसा नहीं कि अस्त्रका मन्त्र न जानते हों। (प्र० सं०) अभिप्राय दीपककार इस दोहेके भावमें यह दोहा देते हैं—*'नख मुनि मन बसु बसु उपर दिगि लिखि लखब तुरंग। त्रय छकार रे बिले यल यूथप सेन प्रसंग॥'* (९५) जिसका अर्थ यह है कि, *छरे*=जिसके साथ 'नख (२०)+मुनि (७)=२७०० घोड़े हों, *छबीले*=जिसके साथ 'मन (४०)+वसु (८)=४८०० घुड़सवार हों। *छयल* =जिसके साथ 'वसु (८)+दिग (१०)=८१० सवार हों। छरे, छबीले, छयल क्रमशः शूर, सुजान और नवीन हैं। (अ० दी० च०)] (ग) *'जुग पदचर असवार प्रति'* इति। दो-दो पैदल साथ होनेका भाव कि एक तो

घोड़े भारी हैं, जबर हैं, एक पैदलके सँभाले नहीं सँभले रह सकते, दूसरे जब सवार घोड़ेसे उतरे तब भी दो सेवक घोड़ा सँभालनेके लिये चाहिये (क्योंकि ये अत्यन्त चञ्चल हैं), अथवा, एक घोड़ेको थामे सँभालेगा और एक मालिककी सेवामें रहेगा। (घ) *'जे असि कला प्रबीन'* इति। **'पाठक्रमादर्थक्रमो बलीयान्'** के अनुसार यहाँ असिसे 'अश्व' अभिप्रेत है। ('अश्व' पाठ रखनेसे एक मात्रा बढ़ जाती। मात्राएँ १२ हो जातीं और होनी चाहिये ११ ही। इसीसे *'असि'* कर दिया) जैसे *'द्विविद मयंद नील नल अंगद गद बिकटासि।'* (५। ५४) में अनुप्रासके लिये *'बिकटास्य'* का *'बिकटासि'* कर दिया गया। अश्वकलामें प्रवीण अर्थात् जो घोड़ेके सम्बन्धकी सब बातें जानते हैं। [प्राय: सभी टीकाकारोंने इसे पदचरका विशेषण मानते हुए 'तलवार चलानेमें कुशल' यही अर्थ किया है। श्रीबैजनाथजीने 'अश्वकला' अर्थ भी किया है। प्रसंगसे अर्थ सुन्दर बैठ जाता है; पर 'अश्व' अर्थमें बड़ी खींच जान पड़ती है। 'असु' का 'अश्व' सरलतासे हो जाता। *'असि कला प्रबीन'* पाठमें भाव यह होगा कि जिसमें वे सवारकी रक्षामें सावधान रहें। प्रज्ञानानन्द स्वामीजी कहते हैं कि यदि तलवारसे युद्ध करनेका प्रसंग आ जाय तो असिकलाकुशल पैदल आवश्यक होंगे, अत: उनको साथ लिया।]

बाँधे बिरद बीर रन गाढ़े। निकसि भये पुर बाहेर ठाढ़े॥ १॥
फेरहिं चतुर तुरग गति नाना। हरषहिं सुनि सुनि पनव निसाना॥ २॥
रथ सारथिन्ह बिचित्र बनाए। ध्वज पताक मनि भूषन लाए॥ ३॥
चवँर चारु किंकिनि धुनि करहीं। भानु जान सोभा अपहरहीं॥ ४॥
सावकरन* अगनित हय होते। ते तिन्ह रथन्ह सारथिन्ह जोते॥ ५॥

शब्दार्थ—**बिरद**=बाना; वेशविन्यास। **गाढ़े**=दृढ़। **रन गाढ़े**=रणमें दृढ़=रणधीर। **फेरना**=घोड़ोंको घुमाना, **फिराना**=चक्कर देना। **पनव**=ढोल। **लाए**=लगाकर। **सावकरन** (श्यामकर्ण)—इन घोड़ोंका सारा शरीर श्वेतरंगका होता है, केवल एक कान काला होता है। अश्वमेध यज्ञमें हवन किये जानेवाले बछेड़े घोड़े। पूर्व समयमें अश्वमेधमें यही घोड़े काममें लाये जाते थे। **होते**=यज्ञमें हवन करनेयोग्य। अथवा, हवनकी अग्निसे निकले हुए।

अर्थ—(कठिन संग्रामके) वीरोंका बाना धारण किये हुए रणमें धीर सब निकलकर नगरके बाहर आ खड़े हुए॥ १॥ (वे) चतुर सवार (अपने अपने) चतुर घोड़ोंको अनेक चालोंसे फिरा रहे हैं और ढोल एवं नगाड़ोंका शब्द सुन-सुनकर प्रसन्न होते हैं॥ २॥ ध्वजा, पताका, मणि और आभूषणोंको लगाकर सारथियोंने रथोंको विचित्र बना दिया है॥ ३॥ (उनमें) सुन्दर चँवर लगे (वा रखे हुए) हैं, घंटियाँ शब्द कर रही हैं। (ये रथ) सूर्यके रथकी शोभाको हरण किये (छीने) लेते हैं॥ ४॥ अगणित हवनकी अग्निसे निकले हुए श्यामकर्ण घोड़े हैं, उनको उन सारथियोंने रथोंमें जोता॥ ५॥

टिप्पणी—१ *'बाँधे बिरद बीर रन गाढ़े'…।'* इति। (क) वीरोंका बाना धारण किये हैं, यह (बाना) पूर्व कह आये हैं, यथा—*'कर सर चाप तून कटि भारी।'* रणमें गाढ़े हैं अर्थात् कालको भी नहीं डरते, यथा—*'कालहु डरहिं न रन रघुबंसी।'* (ख) *'पुर बाहेर ठाढ़े'*—नगरके बाहर खड़े होनेका प्रयोजन अगले दोहेमें स्पष्ट करते हैं। यथा—*'चढ़ि चढ़ि रथ बाहेर नगर लागी जुरन बरात।'* (अर्थात् सारी बारात जुटानेके लिये बाहर आकर खड़े हुए, जिसमें सब यहाँ आकर एकत्र हों, सब बारात आगे-पीछेके क्रमसे यहाँ सजकर तब चलेगी।) (ग) पुन:, *'बाँधे''बीर''ठाढ़े'* का भाव कि मानो बीर-बाना बाँधकर पुरके बाहेर रणमें खड़े हुए हैं, ऐसा वीररसका आवेश (सबको) है।

टिप्पणी—२ *'फेरहिं चतुर तुरग गति नाना।''* इति। [(क) *'फेरहिं'* शब्दसे लक्षित होता है कि

* स्यामकरन—को० रा०।

घोड़े बड़े चञ्चल हैं, खड़े नहीं रह सकते, आगे बढ़-बढ़ जाते हैं, राजकुमार बाग (लगाम) खींच-खींचकर कड़ी करके उनको फेरते हैं, घुमाते, रोकते हैं।] (ख) *'हरषहिं सुनि सुनि पनव निसाना'* इति। पनव और निशान आदि बाजे वीररसके उद्दीपक हैं। इनको सुनकर वीर सुखी होते हैं; यथा—*'पनव निसान घोर रव बाजहिं। प्रलय समयके घन जनु गाजहिं॥ भेरि नफीरि बाज सहनाई। मारू राग सुभट सुखदाई॥'* (६। ७८) *'बाजहिं ढोल निसान जुझाऊ। सुनि धुनि होइ भटन्ह मन चाऊ। बाजहिं भेरि नफीरि अपारा।'* (६। ४०) सब रघुवंशी राजकुमार वीरबाना बाँधकर नगरके बाहेर खड़े हुए, यह देखकर बजानेवालोंने ढोल, नगाड़े मारू रागसे बजाये, इसीसे वीर सुन-सुनकर सुखी हुए। (ग) यहाँतक भरतजीकी सवारी कही। राजाकी आज्ञा थी कि *'चलहु बेगि रघुबीर बराता।'* इसीसे सबसे पहले भरतजीने अपनी सवारी निकाली (अपने राजकुमार सखाओंसहित बाहेर आकर खड़े हुए), जिसमें सब लोग जल्दी करें (और वहीं आ जावें)। (घ) ☞जहाँ जैसा काम होता है वहाँ वैसे ही पणव-निशान आदि बजाये जाते हैं। (बाजा बजानेवाले मौका देखकर उसीके अनुकूल रागसे बाजा बजाते हैं।) घोड़ा नचानेके लिये तालसे बजाते हैं, यथा—*'तुरग नचावहिं कुँअर बर अकनि मृदंग निसान। नागर नट चितवहिं चकित डगहिं न ताल बँधान॥'* (३०२) गानेके लिये मधुर बजाते हैं, यथा—*'कल गान मधुर निसान बरषहिं सुमन सुर सोभा भली।'* (३१८) और, वीरोंके सुखके लिये मारू रागसे बजाते हैं—*'हरषहिं सुनि सुनि पनव निसाना'*। ☞चतुर सवार घोड़ोंको जब जैसा नचाते हैं तब तैसा ही बजनिये बाजा बजाते हैं।

टिप्पणी—३ *'रथ सारथिन्ह बिचित्र बनाए।…'* इति। *'बिचित्र बनाए'* कहकर आगे विचित्रता कहते हैं कि ध्वजा, पताका और मणि-भूषण उनमें लगाये हैं। *'बिचित्र'* से जनाया कि अनेक रङ्गोंके वस्त्र, मणि और भूषण ध्वजा और पताकाओंमें लगे हैं। वीरोंके रथोंमें ध्वजा, पताका रहती हैं। *'लाए'* में मध्यम अक्षर 'ग' का लोप है। शुद्ध 'लगाये' हैं।

टिप्पणी—४ *'चँवर चारु किंकिनि धुनि करहीं।…'* इति। (क) चँवर धरे हुए हैं। इससे सूचित किया कि यह रघुवंशी राजाओंके लिये हैं, सेवक लोग पीछे बैठकर चँवर करेंगे। (अर्थात् सिरपर चँवर घुमाया करेंगे)। किंकिणियाँ रथोंमें शोभाके लिये बाँधी जाती हैं। (ख) *'धुनि करहीं'* इति। [शंका—अभी तो रथोंमें घोड़े नहीं जोते गये, रथ चले नहीं, तब किंकिणीकी ध्वनि कैसे हुई? समाधान—रथोंमें घंटियाँ टँगी हुई हैं, वे पवनके वेगसे बजती हैं। अथवा, जब सारथी रथोंको खींचकर मौकेपर घोड़ोंको उनमें नाधनेके लिये ला रहे हैं तब वे बज रही हैं। (प्र० सं०)] किंकिणियाँ ध्वनि करनेके लिये बाँधी गयी हैं। जब रथ चलता है तब शब्द होता है, जैसे शब्द होनेके लिये हाथियोंके गलेमें घंटा और घोड़ोंके पैरोंमें पैजनियाँ वा घुँघरू बाँधे जाते हैं। (ग) *'भानु जान सोभा अपहरहीं'* इति। सूर्यके विमानकी उपमा देनेका भाव कि सूर्यवंशियोंके रथकी उपमा त्रैलोक्यमें नहीं है, इसीसे अपने घरकी ही उपमा दी। (सूर्यका ही यह वंश है।) *'भानु जान'* की उपमासे जनाया कि रथ अत्यन्त दीप्तिमान् हैं और दिव्य हैं। (दीप्तिमान् जनानेके लिये *'भानु'* शब्द दिया।)

टिप्पणी—५ *'सावकरन अगनित हय होते।…'* इति। (क) रथ ऐसे दिव्य हैं कि सूर्यके विमानकी शोभा उनके आगे मन्द वा फीकी लगती है। इसीसे रथके अनुकूल घोड़े भी दिव्य चाहिये, वही यहाँ कहते हैं कि एक तो वे श्यामकर्ण हैं, दूसरे अग्निसे निकले हुए हैं। (ख) *'अगनित'* का भाव कि श्यामकर्ण घोड़े बहुत नहीं होते, पर यहाँ 'अगणित' हैं।

नोट—१ *'होते'* शब्दके और भी अर्थ किये जाते हैं। पं० रामचरण मिश्रजी कहते हैं कि *'होते'* क्रिया है। यह क्रिया कविके वर्तमान समयमें श्यामकर्ण घोड़ोंका अभाव सूचित कर रही है। इस तरह *'होते'*=होते थे। मानसाङ्कमें इसका अर्थ 'थे' किया है। पं० रामकुमारजी इसके और भाव यह कहते हैं—श्यामकर्ण घोड़े कैसे हैं? *'होते'* हैं, 'अर्थात् चढ़ती उम्रके हैं, अभी पूरे जवान नहीं हो चुके। अथवा, भाव कि ये ऐसे

भारी मूल्यके हैं कि इनके मूल्यमें अगणित श्यामकर्ण घोड़े होते। २-*'ते तिन्ह रथन्ह''जोते'*—प्रत्येक रथमें चार-चार घोड़े जोते गये, यथा—*'तुरग लाख रथ सहस पचीसा।'* (प० प० प्र०)

सुंदर सकल अलंकृत सोहे। जिन्हहिं बिलोकत मुनि मन मोहे॥ ६॥
जे जल चलहिं थलहि की नाई। टाप न बूड़ बेग अधिकाई॥ ७॥
अस्त्र सस्त्र सबु साजु बनाई। रथी सारथिन्ह लिए बोलाई॥ ८॥
दो०—चढ़ि चढ़ि रथ बाहेर नगर लागी जुरन बरात।
होत सगुन सुंदर सबहिं जो जेहि कारज जात॥ २९९॥

शब्दार्थ—**अलंकृत**=अलंकारोंसे सुसज्जित; गहने पहने हुए, सजाये हुए। **टाप**=घोड़ेके पैरका वह सबसे निचला भाग जो जमीनपर पड़ता है और जिसमें नाखून लगा रहता है; सुम। **'अस्त्र'**—यह उन सब हथियारोंकी संज्ञा है जो फेंककर शत्रुपर चलाये जावें, अथवा जिनसे कोई चीज फेंकी जाय, अथवा जिनसे शत्रुके चलाये हथियारोंकी रोक हो, अथवा जो मन्त्रद्वारा चलाये जावें। इनके अतिरिक्त सब शस्त्र हैं। **रथी**=रथपर चढ़कर चलनेवाले योद्धा। एक सहस्र योद्धाओंसे अकेला लड़नेवाला योद्धा। रथके सवार।

अर्थ—(जो) सभी (देखनेमें) सुन्दर हैं और सभी अलङ्कारोंसे सुशोभित हैं। जिन्हें देखते ही मुनियोंके मन मोहित हो जाते हैं॥ ६॥ जो जलमें (भी) पृथ्वीके समान ही चलते हैं। वेगकी अधिकतासे टाप (जलमें) नहीं डूबने पाती॥ ७॥ अस्त्र-शस्त्र और सब साज सजाकर सारथियोंने रथियोंको बुला लिया॥ ८॥ रथपर चढ़-चढ़कर नगरके बाहर बारात जुटने लगी, जो भी जिस कामको जाता है, सभीको सुन्दर शकुन हो रहे हैं॥ २९९॥

टिप्पणी—१ *'सुंदर सकल''* इति। (क) अर्थात् पहले स्वरूपसे सुन्दर हैं और अलङ्कारयुक्त होनेसे सुशोभित हैं। इस तरह दोनों तरहकी शोभा कही। (ख) *'बिलोकत मुनि मन मोहे'* इति। मुनियोंके मन विषयप्रपञ्चरहित, *'विषय रस रूखे'* होते हैं। शोभा देखना नेत्रोंका विषय है। विषयरहित मन जब मोहित हो गये तब औरोंकी क्या कही जाय? इससे जनाया कि घोड़े अत्यन्त सुन्दर और शोभायुक्त हैं। (ग) घुड़सवार राजकुमारोंका अलङ्कारोंसे सुसज्जित होना कहा, यथा—*'सब सुंदर सब भूषन धारी'* पर उनके घोड़ोंका अलङ्कृत होना न कहा, यथा—*'रचि रुचि जीन तुरग तिन्ह साजे। बरन बरन बर बाजि बिराजे॥ सुभग सकल सुठि चंचल करनी।''* इत्यादि। और, यहाँ रथियोंके घोड़ोंका अलङ्कृत होना कहा, यथा—*'सुंदर सकल अलङ्कृत सोहे'* पर रथियोंका आभूषणोंसे सुसज्जित होना न कहा, यथा—*'अस्त्र सस्त्र सबु साजु बनाई। रथी सारथिन्ह लिए बोलाई॥'*(८) इत्यादि। इसमें तात्पर्य यह है कि एक-एकको एक-एक जगह वर्णन करके सूचित किया कि यहाँ (के घोड़ोंका शृङ्गार) का वहाँ (पूर्व कहे हुए राजकुमारोंके घोड़ोंमें) ग्रहण कर लिया जाय और वहाँसे (राजकुमारोंके शृङ्गारका जो वर्णन हुआ है उसे) यहाँ (रथियोंमें) ग्रहण कर लिया जावे। यह ग्रन्थकारका काव्यकौशल है, बुद्धिमत्ता है, शैली है। भाव यह कि एक जगहका वर्णन दूसरी जगह लगा लेना चाहिये, नहीं तो ग्रन्थ बढ़ जायगा। क्योंकि दोनों जगह शृङ्गार एक-सा है।

टिप्पणी—२ *'जे जल चलहिं''* इति। (क) ये दरियाई घोड़े हैं। सवारोंके घोड़ोंके लिये आकाश-गमनकी उत्प्रेक्षा की, यथा—*'निदरि पवन जनु चहत उड़ाने॥'* और रथियोंके घोड़ोंका जलमें स्थलकी तरह चलना कहते हैं। भेदमें तात्पर्य यह है कि सवारोंके घोड़े तो सवारोंको लेकर नदी आदिको लाँघ जाते हैं और रथियोंके रथके घोड़े आकाशगामी नहीं हैं, वे जल और थल दोनोंमें बराबर एक-से चलते हैं। उनके पीछे रथ बँधे हैं। इसलिये उनका बराबर चलना ही ठीक है, उड़ना ठीक नहीं है। [वहाँ उड़ना कहा गया और यहाँ जल-थलमें बराबर चलना कहा। कारण कि पूर्वके घुड़सवार राजकुमार घोड़ोंके उड़ने, कूदने या उछलनेसे गिर नहीं सकते, ज्यों-के-त्यों घोड़ेपर रहेंगे और रथवाले घोड़े यदि उड़नेवाले होते

तो रथको लेकर उड़नेपर रथ टँग जायँ और सवार गिर पड़ेंगे। (प्र० सं०)] (ख) यहाँतक घोड़ोंकी तीन प्रकारसे सुन्दरता कही। श्यामकर्ण होनेसे जातिके सुन्दर हैं। स्वरूपसे सुन्दर हैं तथा अलङ्कृत होनेसे सुन्दर हैं। और, चाल भी सुन्दर है कि जलपर भी थलके समान ही चलते हैं।

टिप्पणी—३ *'अस्त्र सस्त्र सबु साजु बनाई।…'* इति। (क) क्षत्रियोंका मुख्य साज अस्त्र-शस्त्र ही है, इसीसे इसे प्रथम कहा। *'सबु साजु'* अर्थात् गद्दी, मसनद, अतरदान, पानदान, वस्त्र और आभूषण आदि। (ख) पूर्व *'रथ सारथिन्ह बिचित्र बनाए'* कहा और यहाँ *'अस्त्र सस्त्र सबु साजु बनाई'* कहा। दोनों जगह *'बनाई'* वा *'बनाए'* कहकर सूचित किया कि जैसे विचित्र रथ बने हैं वैसे ही सब साज विचित्र बना है। (ग) *'रथी सारथिन्ह लिए बोलाई॥'* इति। भरतजीकी आज्ञा सबको एक साथ हुई, यथा—*'भरत सकल साहनी बोलाए। आयसु दीन्ह मुदित उठि धाए॥'* घोड़ेवाले सेवकोंने घोड़े जल्दी तैयार कर लिये, राजकुमार जल्दी सवार हो लिये, उन्हें बुलाना न पड़ा। सारथीको रथ और घोड़े दोनों तैयार करना पड़ता है, फिर अस्त्र-शस्त्र और अन्य सब साज भी तैयार करना होता है। यह सब काम समझकर रथी लोग शीघ्रता नहीं करते, जब सारथी रथ, घोड़े और सब साज ठीककर, घोड़ा जोतकर, रथ तैयार कर लेते हैं तब रथीको बुलाते हैं। अतः यहाँ बुलाना कहा। [सवारोंके घोड़ोंको सजानेमें देर नहीं लगती। जितनी देरमें सवार अपने वस्त्रादि पहनकर तैयार होते हैं उतनी ही देरमें घोड़े तैयार कर लिये जाते हैं। सवार चाबुक लिये आये कि घोड़े तुरत सामने कर दिये गये। सवार चढ़ लिये। रथ तैयार करनेमें देर लगती है, इसलिये सवार बुलानेपर आते हैं। (प्र० सं०)]

टिप्पणी—४ *'चढ़ि चढ़ि रथ बाहेर नगर…'* इति। (क) *'बाहेर नगर'* अर्थात् नगरके बाहर जहाँ घुड़सवार राजकुमार हैं, वहीं रथी लोग भी अपने-अपने रथोंपर चढ़-चढ़कर गये। *'चढ़ि चढ़ि रथ'*—सारथियोंका रथी लोगोंको बुलाना कहा गया। उनका आना और रथोंपर चढ़ना यहाँ कहा। *'लागी जुरन'* से जनाया कि अभी पूरी बारात नहीं जुड़ी है। अभी चक्रवर्ती महाराज (और श्रीवसिष्ठजी आदि) आनेको हैं। (जबतक महाराज आवेंगे तबतक बारात जुटती जायगी।—प्र० सं०) (ख) *'होत सगुन सुंदर सबहि…'* अर्थात् जो शकुन बारातियोंको हुए (जिनका आगे विस्तृत वर्णन है) वही सब कार्य करनेवालोंको हुए। [(ग) यहाँ यह प्रश्न होता है कि सब पुरवासी तो इस समय बारातकी शोभामें लगे हैं और कौन कार्य है जिसके लिये वे जाते हैं? इसका उत्तर यह है कि सभीकी रुचि भिन्न-भिन्न होती है, जिसकी जैसी भावना है उसके अनुकूल जैसी रुचि, जैसी उमंग उसके जीमें उठती है वह उसकी पूर्तिके लिये जाता है, उसकी पूर्ति होना ही कार्यकी सिद्धि है। (प्र० सं०)]

कलित करिबरन्हि परी अँबारी। कहि न जाहि जेहि भाँति सँवारी॥ १॥
चले मत्त गज घंट बिराजी। मनहु सुभग सावन घन राजी॥ २॥
बाहन अपर अनेक बिधाना। सिबिका सुभग सुखासन जाना॥ ३॥
तिन्ह चढ़ि चले बिप्र-बर बृंदा। जनु तनु धरे सकल श्रुति छंदा॥ ४॥
मागध सूत बंदि गुनगायक। चले जान चढ़ि जो जेहि लायक॥ ५॥

शब्दार्थ—**कलित**=सुन्दर, सजी हुई। **अँबारी**=हाथीके पीठपर रखनेका एक हौदा जिसके ऊपर एक छज्जेदार मण्डप होता है। **बिराजी**=बहुत शोभित। **राजी**=समूह।=पंक्ति, श्रेणी, कतार। **सिबिका** (शिविका)=पालकी, बारहदरी जिसमें आठ-दस कहार लगते हैं। **सुखासन**=चौपहला आदि दो बाँसवाली।=सुखपाल जिसमें बाँस नीचेकी ओर रहता है।=तामजान जो कुर्सीनुमा होता है जिसमें पीछे तकिये लगे होते हैं। यह खुली हुई होती है, कुर्सीके पीछे बाँस होते हैं। मागध, सूत, बंदि—१९४ (६) तथा दोहा २६२ में देखिये।

अर्थ—सुन्दर श्रेष्ठ हाथियोंपर अमारी पड़ी हैं। जिस प्रकार वे सँवारी-सजायी गयी हैं वह कहा नहीं जाता॥ १॥ घंटोंसे सुशोभित मतवाले हाथी चले (वे चलते हुए ऐसे मालूम होते हैं) मानो सावनके सुन्दर

बादलोंके समूह (कतार वा पंक्ति) जा रहे हैं॥ २॥ सुन्दर पालकियाँ, सुन्दर तामझाम और विमान आदि और भी अनेक प्रकारकी सवारियाँ हैं॥ ३॥ उनपर श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके झुण्ड चढ़कर चले (ऐसे जान पड़ते हैं) मानो समस्त श्रुतियाँ और छन्द ही शरीर धारण किये हुए हैं॥ ४॥ मागध, सूत, भाट और गुणगान करनेवाले, जो जिस योग्य हैं वैसी ही सवारियोंपर चढ़कर चले॥ ५॥

टिप्पणी—१ ***'कलित करिबरन्हि'''*** इति। (क) ***'कलित'*** कहकर जनाया कि अनेक रंगोंसे उनके मस्तक और शरीरपर विचित्र रचनाएँ की गयी हैं और आभूषणोंसे भी सजाये गये हैं। इस शब्दसे हाथियोंकी शोभा कही। ***'कहि न जाइ जेहि भाँति सँवारी'*** से अमारीकी शोभा कही। तात्पर्य यह कि जैसे हाथी श्रेष्ठ हैं वैसे ही अमारियाँ भी श्रेष्ठ हैं। ***'कहि न जाइ'*** से सूचित किया कि कविको अपने हृदयमें देख पड़ता है। [श्रेष्ठ हाथियोंपर झूल और गद्दी धरकर उसपर सुवर्ण मणिमय अँबारी रखकर कसी गयी। मखमल लदाऊ कामकी झूलोंमें मोतियोंके गुच्छे लगे हैं, सोनेकी सूक्ष्म जंजीरें हैं, नीचे '**किंकिणी' इति,** भारी गुच्छा दोनों कंधोंसे लंबी झूल रही हैं, माथा रँगा है, इत्यादि जिस भाँतिसे सँवारकर सजा है वह कहा नहीं जाता'—(वै०)]

(ख)—(जहाँपर जिस वस्तुसे जिस वस्तुकी शोभा हो रही है, वहाँ कवि वैसा ही लिखते **हैं**।) जीनसे घोड़ेकी शोभा है। ध्वजा-पताका, मणि, भूषण, चँवर, किंकिणी आदिसे रथकी शोभा है और अमारियोंसे हाथियोंकी शोभा है। यही यहाँ दिखाया है, यथा—***'रचि रुचि जीन तुरग तिन्ह साजे। बरन बरन बर बाजि बिराजे॥', 'रथ सारथिन्ह बिचित्र बनाए। ध्वज पताक मनि भूषन लाए॥ चँवर चारु किंकिनि धुनि करहीं।'*** तथा ***'कलित परीं अँबारी। कहि न जाइ।'***

टिप्पणी—२ ***'चले मत्त गज घंट बिराजी।'''*** इति। (क) ***'मत्त'*** कहकर जनाया कि हाथी युवा अवस्थाके हैं, इसीसे सावनके बादलोंकी उत्प्रेक्षा की गयी। सावन वर्षाकी 'चढ़ती' है वैसे ही हाथी भी चढ़ती वयस्के हैं। सावनके मेघोंकी तरह काले एवं ऊँचे-ऊँचे हैं। जब हाथी चले तब घंटेके बजनेसे घंटेकी शोभा हुई, इसीसे ***'चले'*** कहकर तब ***'घंट बिराजी'*** कहा। [(ख)—मुं० रोशनलालजी ***'बिराजी'*** और ***'राजी'*** के बदले ***'बिराजे'*** और ***'गाजे'*** पाठ देते हैं और कहते हैं कि 'यहाँ पूर्णोपमा' है। रंग-बिरंगका जो हाथियोंके शरीरोंपर चित्रण है वही इन्द्रधनुष है। (रंगोंके चित्रणके) बीचमें जहाँ-जहाँ काली रह गयी है वही काली घटाएँ हैं। मोतियोंकी झालरें बगलोंकी पंक्तियाँ हैं। मणियोंकी चमक बिजलीकी दमक हैं। चलते समय जो शब्द (घंटोंका एवं चिघाड़का) होता है वह गरज (गर्जन) है। मत्त गजोंका जो मद झरता है वही वर्षा है। देखनेवाले कृषि (खेती) हैं, जो उस समय देखकर हर्षित होते हैं। श्रीदशरथजी और श्रीवसिष्ठजी आदि किसान हैं। आषाढ़का घन किसानको अरुचिकर होता है, इसीसे ***'सावन घन'*** कहा। सावनका घन सुभग है, क्योंकि इससे किसानका मनोरथ पूरा होता है'।] (ग) सब सवारियोंपर लोगोंका सवार होना कहा गया। यथा—***'तिन्ह सब छयल भये असवारा', 'चढ़ि चढ़ि रथ''''' 'तिन्ह चढ़ि चले बिप्रबर बृंदा', 'चले जान चढ़ि जो जेहि लायक'*** इत्यादि।

टिप्पणी—३ ***'बाहन अपर अनेक'''*** इति। (क) ***'बाहन अपर'*** इति। ***'अपर'*** से जनाया कि हाथी, घोड़े और रथ ये तीन सवारियाँ मुख्य हैं। शेष सब ***'अपर'*** में कहे गये। राजाने भरतजीको ***'हय गय स्यंदन साजहु जाई'*** यह आज्ञा दी थी, इसीसे हाथी, घोड़े और रथ यहाँ मुख्य हैं (इसीलिये ग्रन्थकारने इन्हीं तीनोंका कुछ विस्तृत वर्णन किया और जो अन्य सवारियाँ हैं, उनको ***'बाहन अपर अनेक बिधाना'*** कहकर समास कर दिया)। (ख)—***'अनेक बिधाना'*** से जनाया कि हाथी, घोड़े, रथ भी एक-एक विधान हैं, इनको विस्तारसे कहा, शेषको संक्षेपसे कहते हैं। ***'अनेक'*** कहकर उनमेंसे कुछका फिर नाम भी देते हैं। (ग) ***'सिबिका सुभग'''—'सुभग'*** का अन्वय सबके साथ है। पालकी, तामझाम आदि सवारियाँ मनुष्योंके कंधोंपर चलती हैं, इनमें आराम है (***'सुखासन'*** के दोनों अर्थ यहाँ गृहीत हैं। ये सब सुखकी सवारियाँ हैं, इनमें बैठनेमें सुख रहता है। और ***'तामझाम'*** आदि)। (घ) ☞यहाँ प्रथम सब विधानकी सवारियाँ गिनाकर आगे सवारोंको गिनाते हैं। हाथी, पालकी, तामझाम, विमान आदिमें ब्राह्मण, मागध, सूत, बन्दी और गवैये सवार हैं।

[नोट—पं० विजयानन्द त्रिपाठीजीका मत है कि हाथी सब खाली ही (कोतल) गये। वे कहते हैं कि 'पहिले सवारोंका आना कहा, तब रथोंका रथी सारथीके सहित आना कहा; अब जिनपर अँबारी कसी हुई हैं वे हाथी आ रहे हैं। यही क्रम वेदोक्त है। श्रीसूक्तमें कहा है **'अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रमोदनीम्'** पहिले घोड़े रहें, बीचमें रथ रहें और इसके बाद हाथी हों, ध्यान देनेकी बात है कि घोड़ोंके लिये कहा कि *'तिन्ह पर छयल भये असवारा। भरत सरिस बय राजकुमारा॥'* रथके लिये कहा कि *'रथी सारथिन्ह लिये बोलाई'*, पर हाथीपर सवार होनेका उल्लेख नहीं है, उनपर अँबारी कसी है, वे चले हैं तो घण्टा विराजमान है। भाव यह कि चक्रवर्तीजीकी सवारी रथपर होनेवाली है, अतः कोई सरदार हाथीपर नहीं चढ़ सकते। आज भी यही नियम राज्योंमें है कि जब महाराज हाथीपर होंगे तो सरदार लोग भी हाथीपर रहेंगे और यदि महाराज रथपर हैं, तो कोई हाथीपर नहीं चढ़ सकता, हाथी सब खाली रहेंगे।']

टिप्पणी—४ *'तिन्ह चढ़ि चले बिप्रबर बृंदा।''''''* इति। (क) *'बिप्रबर बृंदा'* का भाव कवि स्वयं दूसरे चरणमें स्पष्ट करते हैं कि *'जनु तनु धरे सकल श्रुति छंदा'।* अर्थात् ये सब वेदपाठी हैं; सबको वेद कण्ठस्थ हैं। वेदपाठी ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं। *'श्रुति'* से उपनिषद्-भाग और *'छंद'* से मन्त्र-भाग सूचित किया। (ख) *'तनु धरे'* का भाव कि सब विप्र (मानो) श्रुति और छन्दकी मूर्तियाँ ही हैं, अर्थात् इनको वेदोंमें किसी जगह भी किञ्चित् संदेह नहीं है। *'श्रुति छंद'* के शरीर नहीं है, इसीसे तन धरनेकी उत्प्रेक्षा की। (ग) *'सकल श्रुति छंदा'* कहकर जनाया कि प्रत्येक ब्राह्मण समस्त श्रुतियों और समस्त छन्दोंका स्वरूप है। *'सकल'* शब्द न देते तो समझा जाता कि एक-एक ब्राह्मण एक-ही-एक श्रुति और छन्दका स्वरूप है, उनको एक-ही-एक कण्ठ है, सब नहीं; इसीसे *'सकल श्रुति छंदा'* कहा। [वाल्मीकीयसे पता चलता है कि वामदेव, जाबालि, काश्यप, दीर्घायु मार्कण्डेय, कात्यायन आदि विप्रश्रेष्ठ आगे-आगे बारातमें थे। यथा— **'वसिष्ठो वामदेवश्च जाबालिरथ काश्यपः। मार्कण्डेयस्तु दीर्घायुर्ऋषिः कात्यायनस्तथा॥ ४॥ एते द्विजाः प्रयान्त्वग्रे'''** (वाल्मी० १। ६९)। (घ) [जैसे ऊपर प्रथम सवारियोंको कहकर तब सवारोंको कहा गया, उसी रीत्यनुसार यहाँ भी *'करिबरन्ह'* से लेकर *'जान'* तक सवारियोंको कहकर तब उनके सवारोंका वर्णन कर रहे हैं।]

टिप्पणी—५ *'मागध सूत बंदि गुनगायक'* इति। (क) मागध वंशवर्णक हैं, सूत पौराणिक हैं, बंदी भाट गुणगायक हैं, यथा—*'बंदी बेद पुरान गन कहहिं बिमल गुनग्राम।'* (२। १०५) अथवा, *'गुनगायक'* गवैये लोग हैं। (ख) *'चले जान चढ़ि जो जेहि लायक'* कहकर जनाया कि नीति-धर्मके अनुकूल सवारी दी गयी। (ग)—जैसा राजाओंका कायदा है उसी कायदे (नियम) से सब बारात निकली। घोड़ोंके वृन्द पृथक् (एक साथ), रथोंके वृन्द पृथक्, हाथियोंके वृन्द पृथक्, ब्राह्मणोंके वृन्द पृथक् और मागधादिके भी वृन्द इसी तरह पृथक्-पृथक् चले।

बेसर ऊँट बृषभ बहु जाती। चले बस्तु भरि अगनित भाँती॥ ६॥
कोटिन्ह काँवरि चले कहारा। बिबिध बस्तु को बरनैं पारा॥ ७॥
चले सकल सेवक समुदाई। निज निज साजु समाजु बनाई॥ ८॥
दो०—सबके उर निर्भर हरषु पूरित पुलक सरीर।
कबहि देखिबे नयन भरि राम लखन दोउ बीर॥ ३००॥

शब्दार्थ—**बेसर** (वेसर)=खच्चर। **वृषभ**=बैल। **काँवरि** (काँवर)=बहँगी, बाँसका एक मोटा फट्ठा जिसके दोनों छोरोंपर वस्तु लादनेके लिये छींके लगे रहते हैं और जिसे कन्धेपर रखकर कहार आदि ले चलते हैं। **समुदाई** (समुदाय)=झुण्ड, समाज, गरोह। **निर्भर**=परिपूर्ण, अपार, पूरा भरा हुआ। **पारा** (पार)=परिमित, आदिसे अन्ततक पार पाना। **पारना**=सकना। **बीर** (व्रजभाषा वीर)=भाई, यथा—*'काली नागके फनपर निर्तत*

संकर्षणको बीर', 'को घटि ये वृषभानुजा वे हलधर के बीर' (बिहारी), ***'जाहु न निज पर सूझ मोहि भयउँ कालबस बीर'*** (६। ६३)।=योधा।

अर्थ—बहुत जातियोंके खच्चर, ऊँट और बैल अगणित प्रकारकी वस्तुएँ लाद-लादकर चले॥ ६॥ अगणित कहार करोड़ों काँवरें लेकर चले (जिनमें) अनेक प्रकारकी वस्तुएँ थीं (जिनका) वर्णन कर कौन पार पा सकता है!॥ ७॥ सब सेवक-समुदाय (सेवकोंके समूह) अपना-अपना साज-समाज बनाकर चले॥ ८॥ सबके हृदयमें अपार हर्ष है, शरीर पुलकसे भरपूर है। (सबको यही लालसा लगी है कि श्रीराम-लक्ष्मण दोनों वीर भाइयोंको नेत्र भरकर कब देखेंगे)॥ ३००॥

टिप्पणी—१ (क) (***'बहु जाती'*** सबमें लगता है क्योंकि खच्चर आदि सभीकी अनेक जातियाँ हैं। अथवा ***'वृषभ'*** का ही विशेषण मानें)। ***'बहु जाती'*** जैसे कि पूर्वी, पछाहीं, नगावरी, द्योहा इत्यादि। अगणित भाँतिकी वस्तुएँ हैं, एक-एक वस्तु एक-एक जातिके बैलपर है यह जनानेके लिये ***'वृषभ'*** के साथ ***'बहु जाती'*** और ***'वस्तु'*** के साथ ***'अगनित'*** कहा। अलग-अलग एक-एक जातिपर एक-एक प्रकारकी वस्तु होनेसे पहचान बनी रहेगी। (ख) ***'कोटिन्ह'***=अगणित। जो वस्तु लादनेके योग्य थी वह खच्चर, ऊँट और बैलोंपर लादी गयी और जो कहारोंके लेनेयोग्य हैं, उनको कहार बहँगीमें लिये चल रहे हैं। (ग) ***'बरनैं पारा'***—भाव कि जो खच्चरादिपर लदी हैं और जो कहार लिये हैं, दोनोंका पार नहीं। क्योंकि जब असंख्यों काँवर और कहार हैं और एक-एक कहार अनेक वस्तु लिये हैं, तब पार कौन पा सके। ***'चले सकल सेवक समुदाई'*** इति। सबके पीछे सेवकोंका चलना कहकर सूचित किया कि घुड़सवार, रथी, ब्राह्मण और मागधादि सभीके सेवक चले। यदि बीचमें सेवकोंका चलना कहते तो जिसके पीछे उनका कथन होता, उसीके वे सेवक समझे जाते। इसीसे सबके पीछे कहा। (घ)—***'निज निज साजु समाजु बनाई'*** इति। समाज=सामग्री, यथा—***'कहेउ लेहु सब तिलक समाजू।'*** ***'निज निज'*** से जनाया कि जिसका जो काम है वह उसी कामकी सब सामग्री सजाकर ठीक करके चला।

नोट—१ जनकपुरसे बारात लौटी तब सब वस्तुओंका गाड़ियोंपर स्वर्ण-पात्रोंमें भर-भरकर भेजना कहा, यथा—***'कनकबसन मनि भरि भरि जाना'।*** परंतु यहाँ गाड़ियोंपर लादकर भेजना नहीं कहा गया। क्योंकि ये लोग नहीं जानते थे कि सब नदियोंमें पुल बाँध दिये गये हैं और बिना सेतुके गाड़ियोंका निर्वाह नहीं हो सकता और उधरसे तो निश्चय ही था, इससे उन्होंने गाड़ीपर लादकर भेजा।

प० प० प्र०—तब घोड़े, हाथी, रथ, खच्चर, काँवरवाले कहार, पदचर आदिको क्यों साथ लिया? उत्तर यह है कि घोड़े तो हवामें उड़नेवाले हैं, रथोंके घोड़े तो ***'जल चलहिं थलहि की नाईं। टाप न बूड़ बेग अधिकाईं॥'*** हाथी, वृषभ आदि जलमें लीलासे तैरनेवाले प्राणी हैं। वह समय शरद्-ऋतुका था। ***'रस रस सूख सरित सर पानी', 'उदित अगस्ति पंथजल सोखा'।*** अतः उपर्युक्त भाव ठीक बैठता है।

टिप्पणी—२ (क) ***'सबके उर निर्भर हरषु'*** इति।—श्रीराम-लक्ष्मणजीके दर्शनके लिये सबको हर्ष है, क्योंकि ये सबको प्राणप्रिय हैं, यथा—***'कोसल पुरबासी नर नारि बृद्ध अरु बाल। प्रानहुँ ते प्रिय लागत सब कहुँ राम कृपाल॥'*** (२०४) हृदय हर्षसे परिपूर्ण है और शरीर पुलकसे पूर्ण है, यह कहकर भीतर-बाहर दोनों प्रेमसे परिपूर्ण दिखाये। (ख) कान समाचार सुनकर तृप्त हुए, यथा—***'हरषी सभा बात सुनि साँची'*** (२९०। ६), और जैसे चक्रवर्ती महाराजको पत्रिका देखते ही दोनों भाइयोंका स्मरण आते ही हर्ष और पुलकावली हुई थी वैसे ही सब अवधवासियोंको दोनों भाइयोंके स्मरणसे (देखनेकी लालसासे) हर्ष और पुलकाङ्ग हुआ। (ग) ***'कबहिं देखिबे नयन भरि'*** कहकर जनाया कि इनकी और सब इन्द्रियाँ एवं सब अंग स्मरणसे हर्षित वा प्रसन्न हो गये, केवल नेत्र तरस रहे हैं, दर्शनोंके लिये आकुल हैं क्योंकि वे बिना दर्शनके, बिना अपना भोग पाये कैसे तृप्त हों, दर्शनसे ही तृप्त होंगे। (घ) 'बीर' शब्दका प्रयोग साभिप्राय है। दूतोंके मुखसे श्रीराम-लक्ष्मणजीकी वीरता सुन चुके हैं। (सहस्रों वीरोंके बीचमें इन्होंने भारी वीरताके काम किये हैं। वही वीररसका आभास सबोंके हृदयमें भरा हुआ है।) इसीसे

ऐसा शब्द दिया जिससे दोनों अर्थ निकलें। (ङ)—यहाँतक भरतजीकी सवारी कही, आगे चक्रवर्ती-महाराजकी सवारी कहते हैं। (*'सुनत पुलक पूरे दोउ भ्राता'* से उपक्रम और *'पूरित पुलक सरीर'* पर उपसंहार करके जनाया कि भरत-शत्रुघ्नसे लेकर घोड़े, सवार, हाथी और रथी आदि सभी प्राणी और बारातमें आये हुए विप्रवृन्दसे लेकर सेवकपर्यन्त सभीको निर्भर हर्ष था। प० प० प्र०)

गरजहिं गज घंटा धुनि घोरा। रथ रव बाजि हिंस* चहुँ ओरा॥ १॥
निदरि घनहि घुर्म्मरहिं निसाना। निज पराइ कछु सुनिअ न काना॥ २॥
महा भीरु† भूपतिके द्वारे। रज होइ जाइ पषान पबारे॥ ३॥
चढ़ी अटारिन्ह देखहिं‡ नारी। लिए आरती मंगल थारी॥ ४॥
गावहिं गीत मनोहर नाना। अति आनंदु§ न जाइ बखाना॥ ५॥

शब्दार्थ—**हिंस**=हिनहिनाहट। **घुर्म्मरहिं**=घुम्मरना=घोर शब्द करना, ऊँचे शब्दसे बजना। **पराइ**=दूसरेकी। **भीरु**=भीड़। **पबारे**=फेंकना, चलाना या डाल देना। यथा—*'तीस तीर रघुबीर पबारे', 'कोटिन्ह चक्र त्रिसूल पबारे'।*

अर्थ—हाथी गरजते, घंटोंका घोर शब्द होता, रथोंका शोर और घोड़ोंकी हिनहिनाहट चारों तरफ हो रही है॥ १॥ बादलोंका निरादर करते हुए नगाड़े घोर शब्दसे बज रहे हैं, अपनी-परायी कुछ भी कानोंसे नहीं सुन पड़ती॥ २॥ राजाके दरवाजेपर बहुत भीड़ है, पत्थर फेंका जाय तो वह भी (चूर होकर) रज हो जाय॥ ३॥ स्त्रियाँ अटारियोंपर चढ़ी थालियोंमें मङ्गल-आरती लिये देख रही हैं॥ ४॥ अनेकों मनहरण सुन्दर गीत गाती हैं। आनन्द इतना बड़ा है कि कहा नहीं जा सकता॥ ५॥

टिप्पणी—१ (क) *'घंटा धुनि घोरा'*—'हाथियोंके कण्ठमें भारी-भारी घंटे हैं, इसीसे घोर ध्वनि होती है। *'चहुँ ओरा'* कहकर सूचित किया कि चारों दिशाओंसे राजाके द्वारपर सवारियाँ आयीं। (ख)—जैसे भरतजीकी सवारीमें घोड़े, हाथी और रथ वर्णन किये, वैसे ही राजाकी सवारीमें वर्णन करते हैं। परंतु भरतजीकी सवारीमें प्रथम घोड़े कहे, तब हाथी और राजाकी सवारीमें प्रथम हाथी कहते हैं तब घोड़े। इस भेदमें तात्पर्य यह है कि इस तरह दोनों सवारोंकी समानता कही। अथवा, भरत और उनके संगी राजकुमार लड़के हैं, घोड़े चञ्चल हैं वैसे ही लड़के भी चञ्चल। दोनों चंचल हैं इससे लड़कोंकी सवारीमें घोड़ोंकी प्रधानता कही। और, महाराज वृद्ध हैं, उनके साथी भी वृद्ध हैं इससे उनकी सवारीमें शान्त हाथियोंकी प्रधानता रखी।

टिप्पणी—२ (क) *'निदरि घनहि घुर्म्मरहिं निसाना।…'* इति। श्रीभरतजीकी सवारीमें वीररसके नगाड़े बजे हैं; इसीसे वहाँ निशान और पणव दो कहे गये, यथा—*'हरषहिं सुनि सुनि पनव निसाना।'* राजाकी सवारीमें शान्तरस लिये हुए नगाड़े बजते हैं, इसीसे यहाँ केवल नगाड़ोंका बजना लिखा। यहाँ 'प्रतीप अलंकार' है, क्योंकि उपमेयसे उपमानका निरादर कहा है। निशान उपमेय है, घन उपमान है। *'निदरि घनहि'* कहकर जनाया कि नगाड़ोंका शब्द बादलोंके गर्जनका-सा है। (ख) *'महा भीरु भूपतिके द्वारे'* कहनेका भाव कि जहाँसे सब सवारियाँ आयीं वहाँ भीड़ थी और राजद्वारपर तो सब आकर इकट्ठा हुए, इससे यहाँ 'महा' भीड़ हुई। *'भूपतिके द्वारे'* कहकर जनाया कि भरतजीके संगी-साथी पुरके बाहर जाकर एकत्र हुए और राजाके साथी राजाके द्वारपर आये। [(ग) *'रज होइ जाइ पषान पबारे'* यह वक्ताओंका अनुमान है कि कदाचित् पत्थर फेंका जाय तो भीड़के पैरोंसे वह रज हो जायगा। वस्तुतः न पत्थर वहाँ डाला गया, न रज हुआ। यह कहनेका मुहावरा है। इससे भीड़की अत्यन्त अधिकता जनायी।]

* हिंसहिं—१७२१, १७६२। हिंसहि—१७०४। हिंस—१६६१, को० रा०।
† भीरु—१६६१, भीर—औरोंमें।
‡ निरखहिं—रा० प०। १७०४।
§ अनंदु —१६६१।

टिप्पणी—३ *'चढ़ी अटारिन्ह देखहिं नारी।'''* इति। (क) *'महा भीरु भूपतिके द्वारे'* कहकर *'चढ़ी अटारिन्ह'''* कहनेका भाव कि जैसे राजद्वारपर बड़ी भारी भीड़ है, वैसे ही अटारियोंपर स्त्रियोंकी महान् भीड़ है। *'देखहिं नारी'* का भाव कि बारात देखनेयोग्य है, इसी बारातको देखनेके लिये देवता आये और देखकर प्रसन्न हुए हैं, यथा—*'हरषे बिबुध बिलोकि बराता।'* (३०२। ४) (ख) *'लिए आरती मंगल थारी',* यथा—*'सजि आरती अनेक बिधि मंगल सकल सँवारि'।''''''* (३१७) आरती और मंगल-वस्तुएँ थालियोंमें लिये हुए हैं। (रीति है कि बारातके पयानके पहले दूलहकी आरती उतारी जाती है, तब बारात पयान करती है। पर यहाँ दूलह है ही नहीं, इसलिये) केवल शकुनके लिये हाथमें लिये हैं, परछन आदि कृत्य कुछ भी नहीं होनेको, हैं।

टिप्पणी—४ *'गावहिं गीत मनोहर नाना।'''* इति। (क) *'मनोहर'* का भाव कि गीत सुननेसे मन हर जाता है, इसीसे कहते हैं कि बखाना नहीं जा सकता, क्योंकि मन ही हर लिया गया तब कहे कौन और कैसे?' यथा—*'बनै न बरनत नगर निकाई। जहाँ जाइ मन तहँइँ लोभाई॥'* (२१३। १) (पुन: भाव कि वे अनेक स्वरोंसे गा रही हैं।) **'निषादर्षभगान्धारषड्जमध्यमधैवताः। पञ्चमश्चेत्यमी सप्त तन्त्रीकण्ठोत्थितास्स्वराः॥'**॥' (अमरकोश १। ७। १) अर्थात् तार अथवा कण्ठ आदिसे उत्पन्न होनेवाले सात स्वर ये हैं—षड्ज (सा), ऋषभ (रे), गन्धार (ग), मध्यम (म), पञ्चम (प), धैवत (ध), निषाद (नी)। (ख)—*'अति आनंद'* क्योंकि आनन्द-पर-आनन्द है और आकाशमें (अटारियोंपर) स्त्रियोंका आनन्द, दोनों मिलकर *'अति आनंद'* हुआ। *'अति'* है, इसीसे *'न जाइ बखाना'* कहा। यह श्रीरामजीकी बारात है, *'महिमा अवधि रामपिता'* दशरथजी इसे लिये जा रहे हैं, अत: इस समयका आनन्द भी अवर्णनीय है—*'महिमा नाम रूप गुन गाथा। सकल अमित अनंत रघुनाथा।'* (७। ८१)

तब सुमंत्र दुइ स्यंदन साजी। जोते रबि हय निंदक बाजी॥ ६॥
दोउ रथ रुचिर भूप पहिं आने। नहिं सारद पहिं जाहिं बखाने॥ ७॥
राजसमाजु एक रथ साजा*। दूसर तेजपुंज† अति भ्राजा॥ ८॥

दो०—तेहि रथ रुचिर बसिष्ठ कहुँ हरषि चढ़ाइ नरेसु।
आप चढ़ेउ स्यंदन सुमिरि हर गुर गौरि गनेसु॥ ३०१॥

अर्थ—तब सुमन्तजीने दो रथ सजाकर उनमें सूर्यके घोड़ोंको लज्जित (मात) करनेवाले घोड़े जोते॥ ६॥ दोनों सुन्दर रथोंको वे राजाके पास लाये, सरस्वतीसे (भी) उनका वर्णन नहीं हो सकता॥ ७॥ एक रथ तो राजसी सामानसे सजाया हुआ है और दूसरा (जो) तेजपुञ्ज (तेज-समूह) अत्यन्त शोभायमान है॥ ८॥ उस सुन्दर रथपर राजाने हर्षपूर्वक श्रीवसिष्ठजीको सवार कराके (तब) आप भी हर, गुरु और गौरी-गणेशका स्मरण कर रथपर चढ़े॥ ३०१॥

टिप्पणी—१ *'तब सुमंत्र दुइ स्यंदन साजी'''* इति। (क) *'तब'* अर्थात् जब भरतजीकी आज्ञा पाकर सारथियोंने रथ सजाये, तब सुमन्तजीने भी दो रथ साजे। *'तब'* का सम्बन्ध वहाँसे है। *'साजी'* कहकर रथकी विचित्रता सूचित की और जनाया कि जैसे और सारथियोंने सजाया है वैसा ही इन्होंने भी सजाया; यथा—*'रथ सारथिन्ह बिचित्र बनाए। ध्वज पताक मनि भूषन लाए'*।'(ख) *'रबि हय निंदक बाजी'* अर्थात् जैसी सुन्दरता और जैसा वेग इन घोड़ोंमें है वैसा सूर्यके घोड़ोंमें भी नहीं है। इनको *'रबि हय निंदक'* कहकर जनाया कि और रथी लोगोंके रथोंमें श्यामकर्ण घोड़े जोते गये थे, जो थलकी तरह जलमें चलते हैं, उनसे भी ये घोड़े विशेष श्रेष्ठ हैं जो राजा और गुरु वसिष्ठके रथोंमें जोते गये हैं। सूर्यके घोड़े श्याम-कर्ण घोड़ोंसे चढ़-बढ़कर हैं और ये घोड़े सूर्यके रथके घोड़ोंसे भी कहीं बढ़कर हैं। श्यामकर्ण जलमें

* भ्राजा—छ०। † लखि राजा—छ०।

थलकी तरह चलते हैं और ये आकाशमें थलके समान चलते हैं। श्यामकर्ण घोड़े मर्त्यलोकके हैं और सूर्यके घोड़े अजर-अमर हैं। तथापि इन रथोंके घोड़े दोनोंसे श्रेष्ठ हैं। (प० प० प्र०) सुमन्त्रजी रघुवंशके बड़े पुराने एक प्रधान मन्त्री और सारथी भी हैं।

टिप्पणी—२ *'दोउ रथ रुचिर भूप पहिं आने।'''* इति। (क) *'आने'* से सारथी और उसकी सेवाकी विशेषता दिखायी। अन्य सारथियोंने रथोंको सजा-सजाकर रथियोंको वहीं बुलाया था, यथा—*'अस्त्र सस्त्र सबु साजु बनाई। रथी सारथिन्ह लिए बोलाई।'* (२९९। ८) (इससे सवारियोंको कुछ दूर पैदल चलना पड़ा था), और सुमन्तजी रथोंको सजाकर राजाके पास ले आये, यह विशेषता है। (ख) *'नहिं सारद पहिं जाहिं बखाने'* इति। अन्य रथियोंके रथोंकी प्रतीपालंकारसे कुछ उपमा दी गयी थी। उन्हें सूर्यके रथोंसे सुन्दर कहा गया था, यथा—*'भानु जान सोभा अपहरहीं।'* और राजाके रथकी कोई उपमा ही नहीं है। सरस्वती ही सबकी जिह्वापर बैठकर कहलाती है। जब वह स्वयं ही कोई उपमा नहीं दे सकती तो कोई कवि और वह भी मनुष्य मर्त्यलोकका कवि कहाँसे कह सकता है? 'शारदा नहीं वर्णन कर सकती' कहकर इन दोनों रथोंकी विशेषता दिखायी। ('शारदा' ब्रह्मलोककी हैं। अतः इनकी असमर्थता कहकर रथको समस्त ब्रह्माण्डके रथोंसे अधिक दिव्य और अलौकिक जनाया।) इस तरह यहाँ राजाके रथ, राजाके घोड़े और राजाके सारथी तीनोंकी सबसे विशेषता दिखायी।

टिप्पणी—३ *'राजसमाजु एक रथ साजा।'''* इति। (क) *'राजसमाजु'*=राजसी सामग्री। अर्थात् जो-जो वस्तु राजाके योग्य है वह सब उसमें सजी हुई है। *'अस्त्र सस्त्र सबु साजु बनाई'* जो अन्य रथोंके सम्बन्धमें कहा गया वह सब साज भी यहाँ सूचित कर दिया (और उससे अधिक जो और खास राजासे सम्बन्ध रखनेवाली सामग्री है वह भी जना दी)। [(ख) *'राजसमाजु'* अर्थात् धनुष, बाण, तरकश, गदा और कवच आदि सब वीरोंकी सामग्री, पुनः चँवर, छत्र, सूर्यमुखी, पानदान, पीकदान, अतरदान, गुलाबपाश, चौघड़े, चँगरे और राजसी भूषण-वसनादि राजसी पदार्थ इत्यादि। (वै०)] (ग)—*'दूसर तेजपुंज अति भ्राजा'* इति। यह गुरुमहाराजके लिये है। 'तेजपुञ्ज' है अर्थात् इसमें अग्निहोत्रकी सामग्री रखी है। यथा—*'अरुंधती अरु अगिनि समाऊ। रथ चढ़ि चले प्रथम मुनिराऊ।'* (२। १८७) *'अति भ्राजा'* का भाव कि राजाका रथ राजस सामग्रीसे *'भ्राजा'* अर्थात् सुशोभित है और मुनिका रथ 'सात्त्विक सामग्री' से *'अति भ्राजा'* अत्यन्त सुशोभित है। पूर्व *'राजसमाजु'* कहकर राजसी ठाट-बाट कहा, यहाँ 'तेजपुञ्ज' कहकर सात्त्विकी साज जनाया। 'ठाकुर-सिंहासन, पूजाके पात्र (पार्षद), पुस्तकें, मेखला आदि ऋषियोंके साजसे रथ बड़ा तेजोमय शोभित है, इसमें ब्रह्मतेज प्रत्यक्ष प्रसिद्ध दिखायी दे रहा है'—(वै०)। अ० रा० में राजाने मन्त्रियोंको आज्ञा दी है कि अग्नियोंके सहित मेरे गुरु मुनिश्रेष्ठ भगवान् वसिष्ठ भी चलें। यथा—'**वसिष्ठस्त्वग्रतो यातु सादरः सहितोऽग्निभिः।**''' (१। ६। ३७) ऐसा उत्कृष्ट बारातका वर्णन मानसमें ही है, अन्य रामायणोंमें देखनेमें नहीं आया।] (ग) रथियोंके रथसे राजाका रथ विशेष और राजाके रथसे मुनिका रथ विशेष है, यह दिखाया।

टिप्पणी—४ *'तेहि रथ रुचिर बसिष्ठ कहुँ'''* इति। (क) [*'रुचिर'* अर्थात् तेजपुञ्ज अत्यन्त भ्राजमान]। *'हरषि चढ़ाइ'* कहा, क्योंकि गुरुसेवा हर्षपूर्वक ही करनी चाहिये, यथा—*'रामहि सुमिरत रन भिरत देत परत गुर पाय। तुलसी जिन्हहिं न पुलक तनु ते जग जीवत जाय॥'* (दोहावली ४२) अथवा, पयानसमय हर्षका होना शकुन है, अतः *'हरषि'* कहा। यथा—*'अस कहि नाइ सबन्हि कहुँ माथा। चलेउ हरषि हिय धरि रघुनाथा।'* (५। १) *'हरषि राम तब कीन्ह पयाना।'* (५। ३५) *'चढ़ाइ'* से जनाया कि राजाने गुरुजीका हाथ पकड़कर उनको रथपर चढ़ाया। सुमन्त्रजीने राजाकी सेवा की कि रथ सज-सजाकर उनके सामने लाकर रख दिया और राजाने मुनिकी सेवा की कि स्वयं उनको रथपर चढ़ाया। (ख) *'आपु चढ़ेउ स्यंदन सुमिरि हर गुर गौरि गनेस'* इति। यहाँ राजाका मङ्गलाचरण है। उन्होंने पयानके समय पञ्चदेवोंका स्मरण किया है। इनमेंसे तीन हर, गौरि और गणेश तो स्पष्ट ही हैं। सूर्य और विष्णु इन दोको *'गुर'* शब्दसे

कहा है। गुरु=विष्णु, यथा—'**गुरुर्गुरुतमो धाम सत्यः सत्यपराक्रमः**' (वि० सहस्रनाम ३६)। गुरु=सूर्य। यथा—'**गु—शब्दस्त्वन्धकारोऽस्ति रु—शब्दस्तन्निरोधकः। अन्धकारनिरोधत्वाद्गुरुरित्यभिधीयते॥**' (गुरुगीता १२) इस तरह पञ्चदेव हुए। गुरुके स्मरणका तो यहाँ कोई काम नहीं है, क्योंकि गुरुके समीप ही हैं, गुरुकी सेवा करके रथमें चढ़े हैं।

नोट—१ स्वामी प्रज्ञानानन्दजीका मत है कि 'राजा वसिष्ठजीके साथ उन्हींके रथपर सवार हुए। इसीसे आगे '*सुरगुर संग पुरंदर जैसे*' यह उपमा दी गयी। '*करि कुल रीति बेद बिधि राऊ*', '*गुर आयेसु पाई*' शब्दोंसे भी इस भावकी संगति होती है। दोहा ३०१ में 'गुरु' का स्मरण जो कहा है वह गुरु विश्वामित्रका स्मरण है।' पर मेरी समझमें यहाँ दो रथोंका पृथक्-पृथक् साजसे आना स्पष्ट कह रहा है कि राजसी रथ उनके लिये आया और वे उसीपर चढ़े। रथ दोनों साथ-साथ हैं। इसलिये कोई भी शंका नहीं उठ सकती। वाल्मीकीय और अध्यात्मसे भी अलग-अलग रथोंमें सवार होना पाया जाता है। '*संग*' का अर्थ यही नहीं है कि एक साथ बैठे हों। वाल्मी० १।६९।११ में कुछ ऐसी ही उपमा दी गयी है। यथा—'**सह सर्वैर्द्विजश्रेष्ठैर्देवैरिव शतक्रतुः**' अर्थात् ब्राह्मणोंके साथ वसिष्ठजी आये हैं, जैसे देवताओंके साथ इन्द्र।

२—यहाँ गणेशजीको प्रथम न कहा, क्योंकि यहाँ पूजनका विधान नहीं है, यहाँ केवल स्मरण है और स्मरण ईश्वरका प्रथम-प्रथम होना ठीक ही है। (पं०)

३—पं० रामचरण मिश्र कहते हैं कि यहाँ पाठ होना चाहिये था '*गुरु हर गौरि गनेस*', क्योंकि '*हर गौरि*' एक स्वरूप हैं, इनका विश्लेष ठीक नहीं। ऐसा पाठ न देकर '*हर गुरु गौरि*' पाठ दिया गया। यहाँ ग्रन्थकारका आशय गम्भीर है। हरगौरी प्रकृति-पुरुषरूप हैं और सृष्टि भी प्रकृति-पुरुषात्मक ही है। प्रकृतिपुरुष दोनोंके बोधक गुरु ही हैं। इसलिये सृष्टिकार्य-साधक व प्रकृतिपुरुष-तत्त्व-बोधक जान गुरुको मध्यमें रखा तथा गकारकी वर्णमैत्री भी मिल गयी।

सहित बशिष्ठ सोह नृप कैसे। सुरगुर संग पुरंदर जैसे॥ १॥
करि कुलरीति बेद बिधि राऊ। देखि सबहि सब भाँति बनाऊ॥ २॥
सुमिरि राम गुर आयेसु पाई। चले महीपति संख बजाई॥ ३॥
हरषे बिबुध बिलोकि बराता। बरषहिं सुमन सुमंगल दाता॥ ४॥
भयेउ कुलाहल हय गय गाजे। ब्योम बरात बाजने बाजे॥ ५॥
सुर नर नारि* सुमंगल गाईं। सरस राग बाजहिं सहनाईं॥ ६॥

शब्दार्थ—**पुरंदर**=पुर (शत्रुके नगर या दुर्ग) को तोड़नेवाले इन्द्र। **बनाऊ** (बनाव)=सजधज; तैयारी। सजाव। **कुलाहल**=शोर, चुहलपहल। **ब्योम**=आकाश।

अर्थ—(गुरु) श्रीवसिष्ठजीके साथ (बारातमें) राजा कैसे शोभित हो रहे हैं जैसे देवताओंके गुरु बृहस्पतिजीके साथ इन्द्र हों॥ १॥ राजाने कुलरीति और वेद-विहित विधान (जैसे वेदोंमें कर्तव्य कहा गया है उसको) करके और सबको सब तरहसे सजे-धजे तैयार देख॥ २॥ रामचन्द्रजीका स्मरण कर गुरुकी आज्ञा पा पृथ्वीपति श्रीदशरथजी शङ्ख बजाकर चले॥ ३॥ देवता बारात देखकर हर्षित हुए। वे सुन्दर मङ्गलके देनेवाले फूलोंको बरसा रहे हैं॥ ४॥ हाथी, घोड़े चिग्घाड़ने-हिनहिनाने लगे, बड़ा शोर हुआ, आकाशमें और बारातमें बाजे बजने लगे॥ ५॥ देवता, मनुष्य और स्त्रियाँ एवं देवताओं और मनुष्योंकी स्त्रियाँ सुन्दर मङ्गल गा रही हैं। शहनाइयाँ रसीले रागसे बज रही हैं॥ ६॥

---

* बन्दन पाठकजीकी प्रतिमें भी यही पाठ है। ना० प्र० सभा एवं गौड़जीकी प्रतिमें 'सुरनर नाग' पाठ है। इसमें तीनों लोकोंके बासी आ गये और अर्थकी अड़चन भी नहीं है। जहाँ 'सुरनरनारि' पाठ है वहाँ अर्थ होगा देवता, मनुष्य और उनकी स्त्रियाँ। किसी-किसीने 'पुर नर नारि' पाठ दिया है अर्थात् नगरके स्त्री-पुरुष वा नगरके मनुष्योंकी स्त्रियाँ।

टिप्पणी—१ (क) *'सहित बशिष्ठ सोह नृप कैसे।'''* इति। यहाँ वैभवकी शोभा कहते हैं, इसीसे गुरुसहित इन्द्रकी उपमा दी। वैभवकी शोभा-कथनका भाव कि गुरुकी सेवासे वैभवकी प्राप्ति होती है, यथा—*'जे गुरु चरन रेनु सिर धरहीं। ते जनु सकल बिभव बस करहीं।'* (२। ३) इन्द्रकी शोभा बृहस्पतिजीसे है; वैसे ही राजाके वैभवकी शोभा वसिष्ठजीकी कृपासे है। श्रीवसिष्ठजीके साथ राजाके शोभित होनेकी बात विशेषसे समता देकर दिखानेसे यहाँ 'उदाहरण अलङ्कार' है। (ख) *'करि कुलरीति बेद बिधि'*—रथपर चढ़नेके पश्चात् कुलरीति और वेद-विधान कहनेसे पाया गया कि कोई साधारण रीति-रसम होगी, जो उन्होंने रथपर बैठे ही कर लिया। इसी तरह बारात लौटनेपर माताओंका वेद-विधि और कुलरीति करना कहा गया है, यथा—*'निगम नीति कुल रीति करि अरघ पाँवड़े देत।'''* (३४९) (ग) *'देखि सबहि सब भाँति बनाऊ'* इति। भरतजी सवारीके निकासमें हाथी, घोड़े और रथोंका वर्णन किया और यहाँ (राजाकी सवारीमें) भी। पर वहाँ जो *'बेसर ऊँट बृषभ बहु जाती। चले बस्तु भरि अगनित भाँती॥ कोटिन्ह काँवरि चले कहारा। बिबिध बस्तु को बरनै पारा॥ चले सकल सेवक समुदाई। निज निज साज समाज बनाई॥'* यह सब कहा था, उसका वर्णन यहाँ नहीं किया गया। यह सब *'देखि सबहि सब भाँति बनाऊ'* से ही सूचित कर दिया।

टिप्पणी—२ *'सुमिरि राम गुर आयेसु पाई'''* इति। (क) जैसे सबको श्रीरामदर्शनकी लालसा है—*'कबहि देखिबे नयन भरि राम लषन दोउ बीर'*, वैसे ही राजाके हृदयमें भी है, इसीसे श्रीरामजीका स्मरण किया कि चलकर देखेंगे (यह माधुर्यमें वात्सल्यभावका स्मरण है)। अथवा ऐश्वर्यभावसे स्मरण किया, यथा—*'लरिका श्रमित उनीद बस सयन करावहु जाइ। अस कहि गे बिश्राम गृह राम चरन चितु लाइ॥'* (३५५) [जैसे इस दोहेमें *'लरिका श्रमित'''* में माधुर्य और *'रामचरन चितु लाइ'* में ऐश्वर्य भाव है, वैसे ही यहाँ *'सुमिरि राम'* दोनों भावोंसे हो सकता है। जन्मके समय भी कहा गया है—*'मोरे गृह आवा प्रभु सोई।'* यात्रासमय श्रीरामस्मरण युक्त ही है। पुनः भाव कि इस समय श्रीरामजीका स्मरण हो आनेसे उतावली हुई कि कब पहुँचकर उनके दर्शन करें, अतः तुरत गुरुकी आज्ञा ले चलते हुए। पं० रामचरण मिश्रका मत है कि 'श्रीरामजीका स्मरण देवभावसे नहीं है किंतु वात्सल्यभावसे है। पुनः-पुनः चिन्तन करना स्मरण है। श्रीरामकी स्मरण-क्रिया ही गुरु-आज्ञाकी प्रवर्तक है। क्योंकि राजा प्रेमसे विह्वल हो गये थे।' (ख)—वसिष्ठजीने राजाको (रथमें बैठे ही स्वयं अथवा ब्राह्मणोंद्वारा) कुलरीति और वेदरीति (उनके रथपर ही) करायी और चलनेकी आज्ञा दी। (ग) *'संख बजाई'*—शंखवाद्य माङ्गलिक है, इसीसे मङ्गलसमयमें शङ्ख बजाकर चले।

टिप्पणी—३ *'हरषे बिबुध बिलोकि बराता'''* इति। (क) *'हरषे'*—देवता जब प्रसन्न होते हैं तब मंगल करते हैं, यही यहाँ दिखाते हैं कि देवता हर्षित हुए, इसीसे *'बरषहिं सुमन सुमंगल दाता'* 'सुन्दर मंगलदाता' फूलोंकी वर्षा करते हैं। पुनः, जब हर्षित हुए तब फूल बरसाये, यह कहकर जनाया कि जैसा हृदय है वैसा ही कृत्य करते हैं। हृदय हर्षसे फूला है, इसीसे फूल बरसाये। (इसीसे *'सुमन'* शब्द दिया, सुन्दर मनसे फूल बरसाये, मानो अपने मन ही बिछा दिये। यथा—*'हिय हरषहिं बरषहिं सुमन सुमुखि सुलोचन बृंद।'* (२२३) (ख) *'बिलोकि बराता। बरषहिं'''*—बारात देखकर फूल बरसाना कहकर जनाया कि बारातभरमें पुष्पोंकी वृष्टि मंगलदायक है, इसीसे देवता समय-समयपर पुष्पोंकी वर्षा करते हैं। (ग) जब और सब सवार निकले तब देवताओंने फूल नहीं बरसाये, जब राजा निकले तब वे हर्षित हुए और तभी फूल बरसाये। इसका कारण यह है कि राजा सबमें प्रधान हैं, प्रधानका चलना सबका चलना है, इसीसे प्रधानके चलनेपर फूलोंकी वृष्टि की, यह उनकी विशेष बुद्धिमानी है, (बिना राजाके पयानके बारातका पयान हो नहीं सकता था। अतः अब यात्रा जानकर) समयपर फूल बरसाये यह भी बुद्धिमानी है; इसीसे यहाँ *'बिबुध'* (विशेष बुद्धिमान्) नाम दिया। [इस उल्लेखसे जनाते हैं कि देवताओंकी निकासी भी साथ-ही-साथ हुई] (रा० च० मिश्र)

टिप्पणी—४ *'भयेउ कुलाहल हय गय गाजे।'''* इति। (क) पहले भी कुलाहल लिख आये हैं, यथा—*'गरजहिं गज घंटा धुनि घोरा।'''* इत्यादि। (३०१। १-२) अब यहाँ पुनः लिखनेमें आशय यह है कि जब चारों ओरसे हाथी, घोड़े और रथ चले तब भारी शोर हुआ। जब राजद्वारपर आकर सब इकट्ठा

हुए और नगाड़े बज चुके तब वह कुलाहल बंद हो गया। (राजाने जब कुलरीति और वेदरीति की तब कुलाहल बंद था।) अब जब राजा शङ्ख बजाकर चले तब पुन: सब चले और सब बाजे बजे, इसीसे कहा कि '*भयेउ कुलाहल*'। (ख) कुलाहल हुआ कहकर आगे उसका कारण, अर्थात् जिससे कुलाहल हुआ उसे कहते हैं—'*हय गय गाजे*' इत्यादि। हाथी-घोड़ा आदिके बोलनेके शब्द और आकाश और पृथ्वीपर बाजोंके शब्द सर्वत्र गूँज उठे। पूर्व यह सब कह आये हैं, यथा—'*गरजहिं गज घंटा धुनि घोरा। रथ रव बाजि हिंस चहुँ ओरा॥ निदरि घनहि घुर्म्मरहिं निसाना। निज पराइ कछु सुनिय न काना॥*' इसीसे यहाँ संक्षेपसे कहते हैं, कुलाहलका अर्थ यहाँ स्पष्ट किया है कि अपनी-परायी कुछ भी बात सुनायी नहीं देती।

टिप्पणी—५ '*सुर नर नारि सुमंगल गाईं।*''' इति। (क) पूर्व स्त्रियोंका गाना लिख आये हैं, यथा—'*गावहिं गीत मनोहर नाना।*' (३०१। ५), अब यहाँ पुन: स्त्रियोंका गान लिखते हैं। इसमें पुनरुक्ति नहीं है। क्योंकि ये वह स्त्रियाँ नहीं हैं जिनका गाना प्रथम लिखा गया। प्रथम जिनका गाना लिखा वे अटारियोंपरकी स्त्रियाँ हैं। यथा—'*चढ़ी अटारिन्ह देखहिं नारी। लिये आरती मंगल थारी॥ गावहिं गीत मनोहर बानी*' और यहाँ जो गा रही हैं, ये वे हैं जो बारातको बिदा करनेको पीछे-पीछे गाते चलती हैं। यह श्रीअवधप्रान्तकी चाल (रीति) है। इसीसे राजाका और बारातका चलना कहकर तब क्रमसे स्त्रियोंका गान कहा गया। बारातके पीछे स्त्रियाँ हैं। (नरनारियाँ नीचे गा रही हैं और सुरनारियाँ आकाशमें गा रही हैं। आगे भी बारातके ही प्रसङ्गमें देवाङ्गनाओंका गाना पाया जाता है, यथा—'*बरषि सुमन सुरसुंदरि गावहिं।*' (३०६। १) देवता पुष्पवृष्टि कर रहे हैं और देववधूटियाँ मंगल गाती हैं। दोनों अपनी सेवा विवाहमें लगा रहे हैं।) (ख) '*सरस राग बाजहिं सहनाईं*'—स्त्रियोंका गाना और शहनाईका बजना साथ-साथ लिखनेका भाव यह है कि स्त्रियोंकी जोड़में शहनाई बज रही है, स्त्रियोंका गाना सरस है और शहनाईका राग भी सरस है। [शहनाईमेंसे रसीले सुरीले राग निकल रहे हैं। पंजाबीजी लिखते हैं कि शहनाईका शब्द बड़ा तेज होता है, पर उसे ऐसा मृदु करके बजाते हैं कि सुस्वर-नारीके मङ्गलगानसे मिलकर वह बज रही है, अत: '*सरस राग बाजहिं*' कहा।]

घंट घंटि धुनि बरनि न जाहीं*। सरव† करहिं पाइक‡ फहराहीं॥ ७॥
करहिं बिदूषक कौतुक§ नाना। हास कुसल कल गान सुजाना॥ ८॥
दो०—तुरग नचावहिं कुँअर बर अकनि मृदंग निसान।
नागर नट चितवहिं चकित डगहिं न ताल बँधान॥ ३०२॥

शब्दार्थ—'**सरव**' (सरो)=नाना प्रकारकी कसरतोंके खेल।—विशेष नोटमें देखिये। **पाइक** (पायिक)=सेवक। विशेष नोटमें देखिये। **फहराना**= कूदना उछलना; हवामें रहकर उड़ना। विदूषक जो भाँति-भाँतिकी नकलें आदि करके अथवा हँसीकी बातें करके दूसरोंको हँसाता हो, जैसे भाँड़ आदि मसखरे। राजाओं, रईसोंके यहाँ दरबारमें मनोविनोदके लिये ऐसे मसखरे रहा करते थे। **हास** (हास्य)=हँसी लाने वा हँसानेकी क्रिया, मसखरी। **अकनि**=सुनकर। अकनना (सं० आकर्णन=सुनना)=कान लगाकर सुनना, चुपचाप सुनना, यथा—'*पुरजन आवत अकनि बराता। मुदित सकल पुलकावलि गाता॥*' (३४४। ३), '*अवनिप अकनि रामु पगु धारे।*' (२। ४४) **डगहिं**=चूकते। **ताल**=नाचने या गानेमें उसके काल और क्रियाका परिमाण, जिसे बीच-बीचमें हाथ-पर-हाथ मारकर सूचित करते हैं। ये दो प्रकारके हैं—मार्ग और देशी। मार्ग ६० और ताल १२० गिनाये गये हैं। संगीतमें ताल देनेके लिये तबले, मृदंग, ढोल और मंजीरे आदिका व्यवहार किया जाता है। तालके 'सम' का 'बंधान' नाम है। उदाहरण—'*उघटहिं छंद प्रबंध गीत पद राग तान बंधान।*

---

*जाईं—१७०४। †सरौ—१७०४, १७२१, १७६२। सरव—१६६१, छ०, को० रा०। ‡पायक—१७०४, को० रा०। §कउतुक—१६६१।

सुनि किन्नर गंधर्व सराहत बिथके हैं बिबुध बिमान॥' (गीतावली १। २। १५) **नट**=एक नीच जाति जो प्रायः गा-बजाकर और भाँति-भाँतिके खेल-तमाशे, कसरतें दिखाते, रस्सोंपर अनेक प्रकारसे चलते हैं।

अर्थ—घंटों और घंटियोंकी ध्वनिका वर्णन नहीं किया जा सकता। पायिक (सेवक लोग) 'सरो' करते हैं, अर्थात् कसरतें दिखाते चलते हैं और 'फहराते' हैं, अर्थात् कूदते-उछलते हुए जा रहे हैं [अथवा, हाथोंमें फरहरे उड़ रहे हैं (गौड़जी)]॥७॥ भाँड़ लोग बहुतेरे तमाशे करते हैं, वे हास्य (मसखरी) में बड़े निपुण हैं और सुन्दर गानेमें चतुर हैं॥८॥ सुन्दर राजकुमार मृदंग और निशानोंके शब्द सुनकर घोड़ोंको (इस प्रकार) नचाते हैं (कि) वे तालके बंधानसे डगते नहीं। चतुर नट चकित होकर (उनका नाचना) देख रहे हैं॥३०२॥

टिप्पणी—१ *'घंट घंटि धुनि'* अर्थात् हाथियोंके घंटों और रथोंकी घंटियोंकी ध्वनि। *'बरनि न जाहीं'* कहकर घोर ध्वनिका होना जनाया, जैसा पूर्व कह आये हैं—*'गरजहिं गज घंटा धुनि घोरा'*। फहराते हैं अर्थात् कूदते हैं।

नोट—१ *'घंट घंटि'' । सरव करहिं पाइक फहराहीं'*—इस चौपाईके उत्तरार्द्धका अर्थ किसीने निश्चितरूपसे नहीं लिखा। हिन्दी शब्दसागरमें भी 'सरव' शब्द हमको नहीं मिला। *'जाहीं'* और *'फहराहीं'* पाठ प्रायः सभी प्राचीन पुस्तकोंका कहा जाता है। ना० प्र० सभा और वन्दनपाठकजीकी प्रतियोंमें भी यही पाठ है। हाँ, श्रीसन्तसिंहजी पंजाबी, करुणासिंधुजी और बैजनाथजीकी प्रतियोंमें *'जाई'* और *'फहराई'* पाठ मिलता है।

बाबा हरिहरप्रसादजी—(१) **'सरव करहिं'**=दण्ड करते हैं, सरो करते हैं। **पायक**=सेवक। **'फराई'**=कूदते हैं, पटा, बाना आदि खेलते हैं। [पं० रामकुमारजीने भी यही अर्थ लिखा है] वा, (२) जो हाथियोंपर निशान लिये हैं 'सो जब सरो रीति खड़ा करते हैं तब हवासे उनका पायक अर्थात् पताका फहराता है'। वा (३)—'हाथियोंको जब पायक अर्थात् पीलवान रवसहित करते हैं अर्थात् जोरसे चलाते हैं, तब वे फहराहीं अर्थात् शुण्ड उठाकर बकारा लेते हैं अर्थात् फूत्कार छोड़ते हैं।'

पंजाबीजी—'**सरो**'=सम्मुख अर्थात् राजाके सम्मुख ध्वजा लेकर फहराते हैं। वा सरो नाम सरूवोंका है। सरूवोंके आकार मोरपंखके बनाकर भी पायक हाथमें रखते हैं और विवाहके समय आगे चलते हैं। अथवा सरोकरण नाम कूदने-फाँदनेका है। पायक कूदते जाते हैं और ध्वजाएँ उनके हाथोंमें फहराती हैं।' (पाँड़ेजी)

बैजनाथजी—सेवकोंके हाथोंमें सरौ (छड़ी) है जिसमें झण्डी फहराती है, वे आगे चले जा रहे हैं। मल्लोंका कूदना अथवा ताड़ आदिमें फहराना ठीक नहीं बन पड़ता।

बाबू श्यामसुन्दरदास—'नौकर लोग किलकारी मारते हुए हाथोंमें झण्डियाँ फहराते चले जाते थे'।

पं० रामचरण मिश्र—*'सरव पटेबाजी करत फरी गदा बहु भाँति। पायक प्यादेको कहत चले जात फहरात॥'* इत्यादि। (रामायणी रामबालकदासजी भी 'सरव' का अर्थ पटेबाजी इत्यादि करते हैं और कहते हैं कि पूरबमें 'सरों' पटेबाजी इत्यादिको कहते हैं, जैसा प्रायः जलूसों, राजाओं-रईसोंकी सवारियों, बारातों इत्यादिमें देखनेमें आता है।)

हिंदी शब्दसागरमें शब्दोंके अर्थ ये दिये हैं—पायक (सं० पादातिक, पायिक)=(१) धावन, दूत, हरकारा। यथा—*'हैं दससीस मनुज रघुनायक। जाके हनूमानसे पायक॥'*=(२) दास, सेवक, अनुचर।=(३) पैदल सिपाही। फहराना=(१) उड़ाना। कोई चीज इस प्रकार खुली छोड़ देना, जिसमें वह हवामें हिलने और उड़ने लगे। जैसे हवामें दुपट्टा फहराना, झण्डा फहराना। (२) क्रिया अकर्मक फहरना, वायुमें पसरना। हवामें रह-रहकर हिलना या उड़ना। और उदाहरणमें यही चौपाई दी है—*'सरव करहिं पायक फहराहीं।'*

प्रोफेसर लाला भगवानदीनजी कहते हैं कि पूरब गोरखपुर आदि देशोंमें 'सरो' करना 'परिश्रम, कसरत वा मेहनत' करनेके अर्थमें बोला जाता है। यह 'श्रम' का अपभ्रंश है। गदाका घुमाना, पटेबाजी आदि अनेक कसरतें जैसी नट, पहलवान आदिक करते हैं, वह सब इस शब्दमें सूचित कर दिये हैं। उनकी रायमें 'जाई' और 'फहराई' पाठ ठीक है। 'फहराई' का अर्थ है फरहरे हाथ, फुर्तीके साथ। अर्थात् पैदल

चलनेवाले सिपाही फुर्तीके साथ पैंतरेसे-पैंतरा मिलाकर चलते हैं और चलनेमें थोड़ी-थोड़ी दूरपर रुककर कसरत दिखाते हैं।

'पायक' का अर्थ पताका भी हो तो 'फहराहीं' पाठ लेनेसे अर्थ होगा—'सेवक दण्ड, मुद्गर, पटेबाजी आदि दिखाते हैं और झण्डियाँ फहराती हैं।' और 'फहराई' पाठका अर्थ दीनजीने ऊपर किया है।

वीरकविजी—झण्डियाँ फहराती हैं, उनमें लगे घुँघरू बोल रहे हैं।

विनायकी टीका—सेवकोंके हाथोंमें सीधी झण्डियाँ फहरा रही हैं।

गौड़जी—*'सरौं'''फहराहीं।'* यहाँ दीपदेहरीन्यायसे इस प्रकार अन्वय करना चाहिये—***'सरौं करहिं पायक, करहिं पायक फहराहीं'***=***पायक सरौं करहिं, करहिं पायक फहराहीं।'***=पैदल सिपाही लोग तरह-तरहके कसरतके खेल दिखाते चलते हैं। हाथोंमें फरहरे उड़ रहे हैं। सरौंका अर्थ कसरतके खेल हैं। इसका मूलरूप श्रम है, परंतु आजकल सरवरिया बोलीमें सरौं करना केवल दण्ड करनेके अर्थमें प्रयुक्त होता है। बैठक आदि उसमें शामिल नहीं हैं। पायक=(१) पैदल चलनेवाला हरकारा या सिपाही। (२) पताका या फरहरा।

मानसाङ्क—'पैदल चलनेवाले सेवकगण अथवा पट्टेबाज कसरतके खेल कर रहे हैं और फहरा रहे हैं (आकाशमें ऊँचे उछलते हुए जा रहे हैं)। (नंगे परमहंसजीने यही अर्थ किया है।)

बाबा हरीदासजी—***सरौ करहिं***=दण्ड करते, कला दिखाते वा कूदते हैं। ***पायक***=करतबी कूदनेवाले। ***फहराहीं***=उड़ते हैं।

टिप्पणी—२ ***'करहिं बिदूषक कौतुक नाना।''''*** इति। (क) यहाँ अच्छे विदूषकोंमें तीन गुण दिखाते हैं। जो अनेकों कौतुक (तमाशे) दिखावें, (गम्भीर पुरुषोंको भी) हँसा दें और गाना भी जानते हों, वही पूरे भाँड़ हैं। ये तीनोंमें विशेष हैं। अनेक कौतुक जानते हैं, हासमें कुशल हैं और गानमें सुजान हैं। कौतुक करना कहकर ***'हास कुसल कल गान सुजान'*** कहा। बीचमें ***'हास कुसल'*** पद देकर जनाया कि ऐसा कौतुक करते हैं कि हँसी आ जाती है और ऐसा सुन्दर गान करते हैं कि सुनकर हँसी आ जाती है। (ख) गानमें सुजान कहनेका भाव कि सबमें जानकार हैं और गानमें तो सु (सुष्ठु, उत्तम, परम)—जानकार हैं। ***'कल गान'*** कहकर जनाया कि स्वर बहुत सुन्दर है, मधुर है, गला बहुत अच्छा है और ***'सुजान'*** से गान-कलाके पूरे जानकार जनाया। कल और सुजान दोनों कहा, क्योंकि यदि गानके सब भेद जानता हो, उसमें पूरा सुजान हो, पर स्वर मधुर न हो, तो भी अच्छा नहीं लगता और स्वर मधुर हो पर गानमें सुजान न हो तो भी व्यर्थ ही है, जब दोनों बातें हों तभी गानकी सुन्दरता है।

टिप्पणी—३ ***'तुरग नचावहिं कुँअर'''*** इति। (क) राजाकी सवारी अब पुरके बाहर पहुँच गयी है, इसीसे ग्रन्थकार पूर्वपरका यहाँ सम्बन्ध मिलाते हैं। पूर्व लिखा था ***'फेरहिं चतुर तुरग गति नाना। हरषहिं सुनि सुनि पनव निसाना।'*** (२९९। २) उसीसे यहाँ मिलाते हैं—***'तुरग नचावहिं कुँअर'''।'*** पणव और नगाड़ोंके शब्द सुनकर वीरतासे घोड़ोंको फेर रहे थे और अब मृदंग-निशान सुनकर नचाते हैं। यहाँ ***'कुँअर बर'*** कहा और पूर्व ***'चतुर'*** कहा। इस तरह ***'बर'*** का भाव ***'चतुर'*** स्पष्ट किया। (ख)—'नागर नट' अर्थात् जो तालके बँधानको जानते हैं। अज्ञानी नटके चकित होकर देखनेमें कोई बड़ाईकी बात नहीं है। इसीसे ***'नागर नट'*** का चकित होना कहा। (ग) ***'चितवहिं चकित'***—आश्चर्य मानते हैं, क्योंकि यह काम आप नहीं कर सकते। ***'डगहिं न'*** अर्थात् चूकनेको कौन कहे, डगते भी नहीं। आश्चर्यसे देखते हैं कि मृदंगकी पड़नपर हमलोग नहीं नाच सकते और ये उसपर घोड़ोंको नचाते हैं। घोड़ोंके तालमें बँधकर नाचनेका आश्चर्य स्थायी भाव है।

बनै न बरनत बनी बराता। होहिं सगुन सुंदर सुभदाता॥ १॥
चारा चाषु बाम दिसि लेई। मनहुँ सकल मंगल कहि देई॥ २॥
दाहिन काग सुखेत सुहावा। नकुल दरसु सब काहूँ* पावा॥ ३॥

*काहुँ—१६६१।

शब्दार्थ—**बनी**=सजी। **सुभदाता**=मङ्गलदाता। **चाषु**=नीलकण्ठ।=पपीहा (मुहूर्तचिन्तामणिकी टीकामें श्रीसीताराम झाने यह अर्थ लिखा है)। **नकुल**=न्यौला। दरसु=दर्शन, यथा—'*तुम्हरे दरस आस सब पूजी।*' (२।१०७) '*दरस परस अरु मज्जन पाना।*'

अर्थ—बारात ऐसी सजी है कि उसका वर्णन नहीं करते बनता। सुन्दर मङ्गलके देनेवाले शकुन हो रहे हैं॥ १॥ नीलकण्ठ बायीं ओर चारा ले रहा है, मानो वह समस्त मङ्गलोंकी सूचना दे रहा है॥ २॥ दाहिनी ओर कौवा अच्छे खेतमें सोह रहा है। न्यौलेका दर्शन सब किसीने पाया॥ ३॥

टिप्पणी—१ '*बनै न बरनत*'' इति। (क) ग्रन्थकार सब कुछ वर्णन करनेमें जवाब देते हैं (अर्थात् हार मानते हैं) घोड़े, हाथी, रथ, वस्तु, आनन्द, शब्द (कुलाहल) और बारात सभीके वर्णनमें यही कहा कि '*नहिं जाइ बखाना।*' यथा—क्रमसे—'*नाना जाति न जाहिं बखाने*' '*कलित करिबरन्हि परी अँबारी। कहि न जाइ जेहि भाँति सँवारी॥*' '*दोउ रथ रुचिर भूप पहिं आने। नहिं सारद पहिं जाहिं बखाने॥*' '*कोटिन्ह काँवरि चले कहारा। बिबिध बस्तुको बरनै पारा॥*' '*अति आनंदु न जाइ बखाना*' '*घंट घंटि धुनि बरनि न जाहीं*' और '*बनै न बरनत बनी बराता*' तात्पर्य कि सब बातें अकथ्य हैं। (ख)—जब महाराजकी सवारी आ गयी तब शकुनोंका वर्णन करते हैं, जैसा आगे कहते हैं। (ग) यथामति बारातका वर्णन करके अब इति लगाते हैं। '*बनै न बरनत बनी बराता*' यह इति है।—'*हय गय रथ आनंदरव बस्तु बरात अपार।*' [(घ) '*सुंदर*' अपने शरीरसे और '*सुभदाता*' औरोंके लिये।]

पं० विजयानन्द त्रिपाठीजी—सगुनको सुन्दर कहनेका भाव यह है कि यात्रामें मुर्देका मिलना भी शुभ सगुन है, पर वह सुन्दर नहीं है। यहाँ बारह सगुन ग्रन्थकारने गिनाये और बारातमें भी बारह कार्य कहे। '*होत सगुन सुंदर सबहिं, जो जेहि कारज जात*' कहनेसे स्पष्ट है कि प्रत्येक कार्यमें सगुन हुए, बारातकी सामग्रीके बारहों अवयव हैं, अतः सबका एक साथ होना कहा।

टिप्पणी—२ '*चारा चाषु*' इति। शकुनपरक ग्रन्थोंमें लिखा है कि नीलकण्ठका दर्शन पराह्णमें शुभ है। ☞इससे सूचित हुआ कि बारात दोपहरके पश्चात् चली थी। '*चारा*''*लेई*' कहकर जनाया कि नीलकण्ठका बायीं ओर चारा चुगना मङ्गलदायक शकुन है। '*सकल मंगल कहि देई*'—इस कथनसे जनाया कि सब यह जानते हैं कि नीलकण्ठका वामदिशामें चारा चुगते दर्शन होनेसे समस्त मङ्गल होते हैं। पुनः '*कहि देई*' से जनाया कि उसका बोलना भी शकुन है। पुनः भाव कि जैसे (कोई बात) कहनेसे (उसका) निश्चय होता है वैसे ही चाषुके दर्शनसे सबको निश्चय हुआ कि हमको सब मङ्गल होंगे। सकल मङ्गल कहे देता है अर्थात् कहता (सूचित) करता है कि तुमको सब मङ्गल होंगे [पक्षीमें मनुष्य भाषा बोलनेकी शक्ति नहीं है। उसमें समस्त मङ्गलके कथनकी कल्पना करना असिद्ध आधार है। इस अहेतुको हेतु ठहराना 'असिद्ध विषयावस्तूत्प्रेक्षा अलङ्कार' है। (वीर)]

नोट—१ मुहूर्तचिन्तामणिमें चाषु, ससुत स्त्री, नकुल, दही, मीन, गऊका दर्शन यात्रासमय शुभ शकुन माना गया है। (यात्राप्रकरण श्लोक १००, १०१) कौवेका दक्षिण ओर दर्शन और मृगोंका प्रदक्षिणा करते हुए गमन शुभ कहा है, यथा—'**मृगाः प्रदक्षिणं यान्ति पश्य त्वां शुभसूचकाः।**' (अ० रा० १। ७। ४) '**काकऋक्षश्वानः स्युर्दक्षिणाः शुभाः।**' (मु० चिं० १०६)

टिप्पणी—३ '*दाहिन काग सुखेत सुहावा।*''''' इति। (क) वाम दिशाका शकुन कहकर अब दाहिनी दिशाका शकुन कहते हैं। (ख) '*सुखेत*' =सुन्दर स्थान। [*सुखेत* =सुन्दर खेत। अर्थात् हरे धानसे भरा हुआ।—(प्र० सं०)] सुखेत कहनेका भाव कि कौवा प्रायः बुरी निकम्मी जगहमें बैठता है, वह शकुन नहीं है। यदि वह सुन्दर स्थानपर बैठा हो और दाहिनी ओर हो तभी सुन्दर है और तभी उसका दर्शन शुभ है। '*सुखेत सुहावा*' कहकर जनाया कि कुखेतमें काँव-काँव करता हुआ काक '*असुहावा*' है—'*रटहिं कुभाँति कुखेत करारा*' यह अशुभ असुहावा है। (ग) '*नकुल दरस सब काहूँ पावा*' इति। '*चाषु*' और '*काग*' में वाम और दाहिनी दिशाका नियम किया। नेवलेके साथ दिशाका नाम न देकर जनाया कि इसका

दर्शन सब दिशाओंमें शुभ है। *'सब काहूँ पावा'* का भाव कि इसका दर्शन सबको नहीं होता, क्योंकि यह लोगोंको देखकर डरता है और तुरत भागकर बिलमें घुस जाता है, पर आज श्रीरामजीकी बारातके समय वह निर्भय विचर रहा है जिससे सबको दर्शन मिल जाय। [☞पं० विजयानन्द त्रिपाठीजीका टिप्पण शकुनोंके वर्णनके अन्तमें दो० ३०३ में दिया गया है]

सानुकूल बह त्रिबिध बयारी। सघट सबाल आव बर नारी॥ ४॥
लोवा फिरि फिरि दरसु देखावा। सुरभी सनमुख सिसुहि पियावा॥ ५॥
मृगमाला फिरि दाहिनि आई। मंगलगन जनु दीन्हि देखाई॥ ६॥

शब्दार्थ—सानुकूल=सम्मुख। (पं० रामकुमारजी) लोवा=लोमड़ी, लोखरी। **फिरि फिरि**=फिर-फिर, घूम-घूमकर। **सुरभी**=गऊ, गाय। **दरसु**=स्वरूप, यथा—*'भरत दरसु देखत खुलेउ मग लोगन्ह कर भाग।'* (२। २२३) **दरसु देखावा**=दर्शन दिया वा कराया। **मृगमाला**=हिरनोंका झुण्ड।

अर्थ—तीनों प्रकारकी हवा सानुकूल बह (चल) रही है, सुन्दर स्त्री घड़ा और बालकसहित आ रही है॥ ४॥ लोमड़ी (लोखरी) घूम-घूमकर पीछे फिर-फिरकर अपना दर्शन देती, गाय अपने बच्चेको सामने खड़ी दूध पिलाती॥ ५॥ हिरणोंके झुंड बायीं ओरसे घूमकर (परिक्रमा देते हुए) दाहिनी ओर आये, मानो मङ्गल-समूह दिखायी पड़े॥ ६॥

टिप्पणी—१ (क) *'सानुकूल बह त्रिबिध बयारी।'''* इति। *'सानुकूल'* कहनेका भाव कि एक तो तीनों प्रकारकी हवा चलना सगुन हुआ, दूसरे उनसे शरीरको सुख मिला। जैसी इच्छा थी वैसा ही हुआ, यही सानुकूलता है। [यात्रामें पीछेसे आती हुई पवन शुभ है अर्थात् पीठपर पवन लगे तो शकुन अतएव अनुकूल है और सामनेसे पवनका आना अपशकुन है, मानो वह कार्यको रोकता है और कहता है कि न जाओ। (प्र० सं०)] (ख) त्रिविध अर्थात् शीतल, मन्द और सुगन्धित। (ग) *'सघट सबाल आव बर नारी'* इति। 'बयारि' के तीन विशेषण दिये—शीतल, मन्द, सुगन्धित। इति। त्रिविध यथा—*'सीतल मंद सुगंध सुभाऊ। संतत बहइ मनोहर बाऊ॥'* (३। ४०) *'सीतल सुरभि पवन बह मंदा।'* (७। २३) और दूसरे चरणमें 'नारी' को भी तीन विशेषण दिये— 'सघट, सबाल, बर'। ऐसा करके जनाया कि दोनों बराबर (एक-से) हैं। दोनोंमें समानता है। बयारि शीतल है और 'नारी' सघट है, शीतल पदार्थ धारण किये हुए है। बयारि मन्द-मन्द चल रही है और 'नारी' सबाल है, बालकको गोदमें लिये हुए है, इससे तेज नहीं चल सकती, मन्द-मन्द चालसे चल रही है। बयारि सुगन्धित है, 'नारी' बर है अर्थात् अङ्गराग लगाये हुए है (अत: शरीरसे सुगन्ध आ रही है)। 'नारी' की समतामें कहना है, इसीसे 'बयारि' स्त्रीलिङ्ग शब्द दिया [दोनोंकी एक-सी क्रियाएँ देखकर दोनोंको एक ही अर्धालीमें रखा—(प्र० सं०)] शब्दमें भी पर-पुरुषका सङ्ग न कहा। सघट सबालके क्रमका भाव यह है कि (शरीरपर ये भी क्रमसे हैं) सिरपर घड़ा है, उसके नीचे कटि-(कमर-) में बालक है। पवन सम्मुख बहती है, स्त्री सम्मुख आती है। [(ख) *'बर'* विशेषणसे स्त्रीका सावित्री, सौभाग्यवती होना जनाया। *'सघट'* अर्थात् पवित्र सुन्दर घड़े या कलशमें पवित्र जल लिये हुए है। *'आव'* अर्थात् सामनेसे आ रही है और *'बर'* है अर्थात् षोडश शृङ्गार किये हुए है। इस तरह जनाया कि सौभाग्यवती स्त्रीका घड़ेमें जल भरे हुए और गोदमें बालक लिये हुए सामने आना शकुन है और इसके विरुद्ध विधवा स्त्री, खाली छूछा घड़ा अपशकुन हैं। आगे चली जाती हुई (पीठ दिये हुए) शकुन नहीं है। (प्र० सं०)]

टिप्पणी—२ *'लोवा फिरि फिरि दरसु देखावा'''* इति। (क) *'फिरि फिरि'* से सूचित करते हैं कि लोमड़ीका स्वभाव है कि वह भागती जाती है और खड़ी हो-होकर दर्शन देती है और *'सिसुहि पियावा'* से जनाया कि गऊ खड़ी हुई दूध पिला रही है। [इस तरह बताया कि लोमड़ीका भाग-भागकर दर्शन देना शुभ है और गऊका खड़ी होकर दूध पिलाना शुभ है। लोमड़ीकी चञ्चलता और

गऊकी स्थिरता शुभ है। आगे चलती है फिर पीछेकी ओर घूम पड़ती अर्थात् पीछे मुँह फेरकर देखने लगती, फिर आगे चलती फिर मुँह पीछे करके देखने लगती, इस तरह चल-चलकर दर्शन देना यह शकुन है। यही भाव *'फिरि फिरि'* का है। बारम्बार अर्थ जो बाबू श्यामसुन्दरदासने किया है वह अशुद्ध। *'फिरि फिरि'* पदसे यह भी जनाया है कि लोमड़ीका खड़ा रह जाना अपशकुन है और उसका एकदम भागते हुए जाना भी शकुन नहीं है। इतने गम्भीर भाव इस पदमें भरे हैं। इसी प्रकार *'सुरभी सनमुख सिसुहि पियावा'* से सूचित किया कि गाय यदि शान्त होकर बछड़ेको दूध पिलाती हो तो वह शकुन है, अन्यथा नहीं (प्र० सं०)]

टिप्पणी—३ *'मृगमाला फिरि दाहिनि आई।'''* इति। (क) (मृग पशुमात्र, विशेषतः वन्य पशुओंकी संज्ञा है) वनमें जितने साऊज (शिकार) हैं वे सब 'मृग' कहलाते हैं। केवल 'मृग' कहनेसे भ्रम होता कि किस मृगका दर्शन शुभ है, इस भ्रमके निवारणके लिये 'मृगमाला' कहा। अन्य कोई भी मृग (वन्य पशु) पंक्तिसे नहीं भागते, हिरन पंक्तिसे भागते हैं, (*'मृगमाला'* से हरिणहीका ग्रहण होगा, क्योंकि और पशु बिथरकर भागते हैं और हिरन झुण्डमें साथ-साथ मिलकर चलते हैं। मृग नौ प्रकारके कहे गये हैं—मसूर, रोहिप, न्यङ्कु, सम्बर, वभ्रुण, रुरु, शश, एण और हिरण)। (ख) *'फिरि'* का भाव कि पीछेसे दाहिनी ओर आयी, सम्मुखसे दाहिनी ओर आती तो *'फिरि'* शब्द न देते। [*'फिरि'* अर्थात् बायीं ओरसे सम्मुख होकर दाहिनी ओर मृगोंका झुण्ड आया, जैसे परिक्रमा की जाती है।—(प्र० सं०)] (ग) *'मंगलगन जनु दीन्हि देखाई'* इति। अर्थात् ऐसा जान पड़ता है कि मृगमालाने मङ्गलगण दिखा दिये अथवा मानो मङ्गलगण देख पड़े। [झुण्ड-के-झुण्ड साथ मिले ऐसे देख पड़ते हैं, मानो सब मूर्तिमान् मङ्गल शकुन एकत्र हो दिखायी देकर कह रहे हैं कि लो देखो हम आ गये। बैजनाथजी लिखते हैं कि *'मंगलगन'* का भाव यह है कि मृगमाला इस प्रकार दर्शन देकर सूचित कर रही है कि तुमको बहुत मङ्गल होंगे अर्थात् एक विवाहके लिये जाते हो वहाँ चारों पुत्रोंका विवाह होगा। (प्र० सं०)] (घ) लोमड़ीका आगे भागी जाती हुई और मृगमालाका आगे भागी आती हुई दर्शन होना शुभ कहा। (ङ) मृगमालाका दाहिनेसे घूमकर निकलना शकुन है पर वह शकुन दिखाता नहीं, यह कविकी कल्पनामात्र है, अतः यहाँ 'अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार' है।

छेमकरी कह क्षेम बिसेषी। स्यामा बाम सुतरु पर देखी॥ ७॥
सनमुख आयेउ दधि अरु मीना। कर पुस्तक दुइ बिप्र प्रबीना॥ ८॥
दो०—मंगलमय कल्यानमय अभिमत फल दातार।
जनु सब साँचे होन हित भए सगुन एक बार॥ ३०३॥

शब्दार्थ—**'छेमकरी'**—एक प्रकारकी चील है जिसका मुख श्वेत होता है और शरीर कुङ्कुमवर्ण अर्थात् लाल होता है। इसके नेत्र सुन्दर होते हैं। यह 'क्षेम क्षेम' बोलती है। इसे सगुन चिड़िया भी कहते हैं। इसके बोलने और दर्शनका फल सोचको मिटा देना है। यथा—*'छेमकरी बलि बोलि सुबानी'''ससिमुख कुंकुमबरनि सुलोचनि मोचनि सोचनि बेद बखानी। देवि! दया करि देहि दरस फल॥'* (गी० ६। २०) इसका मण्डलाकार मँड़राकर आकाशमें बोलना शुभ मङ्गलप्रद है। यथा—*'सुनि सनेहमय बचन निकट ह्वै मंजुल मंडल कै मड़रानी। सुभ मंगल आनंद गगन धुनि अकनि अकनि उर जरनि जुड़ानी॥'* (गी० ६। २०) [यह महाराष्ट्र देशमें बहुत पायी जाती है। (प० प० प्र०)] **छेम**=कल्याण। **'स्यामा'** (श्यामा)=प्रायः सवा या डेढ़ बालिश्त लम्बा एक प्रकारका पक्षी जिसका रङ्ग काला और पैर पीले हैं। यह प्रायः घने जङ्गलोंमें रहता है और पंजाब छोड़ सारे भारतमें मिलता है। इसका स्वर बहुत ही मधुर और कोमल होता है—(श० सा०)।=काले मुखवाली चील। (वै०)। **अभिमत**=वाञ्छित, मनमें चाही हुई।

अर्थ—क्षेमकरी विशेष कल्याण कह रही है। श्यामा (पक्षी) बायीं ओर सुन्दर वृक्षपर दिखायी

दी॥ ७॥ दही, मछली और दो विद्वान् ब्राह्मण हाथमें पुस्तक लिये हुए सामने आये॥ ८॥ मङ्गलमय, कल्याणमय, वाञ्छित फलके देनेवाले सब शकुन मानो सत्य होनेके लिये एक बार एक ही समयमें (प्रकट) हुए॥ ३०३॥

टिप्पणी—१ *'छेमकरी कह…'* इति। (क) *'कह'* पदसे सूचित किया कि उसका बोलना भी शुभ है और दर्शन भी। इसी प्रकार नीलकण्ठका भी बोलना और दर्शन दोनों शुभ हैं। इसीसे दोनों जगह *'कह'* शब्द देकर दोनोंका बोलना भी सूचित करते हैं। *'छेम बिसेषी'* कहकर क्षेमकरीको बड़ा भारी शकुन जनाया। क्षेमकरी विशेष शकुन है क्योंकि यह गङ्गा और गौरीके समान है। यथा—*'कुंकुम रंग सुअंग जितो, मुखचंद सो चंद सों होड़ परी है। बोलत बोल समृद्धि चुवै, अवलोकत सोच बिषाद हरी है॥ गौरी कि गंग बिहंगिनि बेष कि मंजुल मूरति मोद भरी है। पेखि सप्रेम पयान समय सब सोच बिमोचन छेमकरी है॥'* (क० उ० १८२) क्षेमकरीका क्षेम कहना, कारणके समान कार्यका वर्णन 'द्वितीय सम अलङ्कार' है। (ख) ['श्यामा'=वह पक्षी जो प्रात:काल कुछ रात रहे मधुर बोली बोला करता है। बैजनाथजी *'श्याम बाम…'* का भाव यह कहते हैं कि मानो वह कहती है कि राजकुमार वामसहित कुशलसे आवेंगे। *'सुतरु'*=उत्तम वृक्ष। इससे रसाल, पीपल, वट, पाकर इत्यादि वृक्ष सूचित किये। बहेड़ा, बबूर इत्यादि कुतरु माने गये हैं। *'देखी'* से जनाया कि इसका दर्शन शुभ शकुन है, इसीसे केवल देखना कहा। उसका बोलना नहीं कहा। *'सुतरु'* का भाव कि उत्तम वृक्षोंपर दर्शन होना शुभ है।]

टिप्पणी—२ *'सनमुख आयेउ दधि…'* इति। (क) *'सनमुख'* आदिमें रखकर दधि, मीन और विप्र सबके साथ जनाया। ☞इसी तरह पूर्वकी चौपाइयोंमें भी समझना चाहिये कि एक चरणमें जो कहा है उसे दूसरेमें भी लगा लेना चाहिये; जैसे कि *'दाहिन काग'* को प्रथम चरणमें शुभ कहा, वैसे ही *'नकुल दरसु'* जो उसके साथ दूसरे चरणमें है, उसे भी दाहिने शुभ समझना चाहिये। (परंतु पूर्व लिख आये हैं कि नेवलेके दर्शनमें दिशाका नियम नहीं है?) इत्यादि। जितने एक सङ्ग कहे गये हैं उनमेंसे जैसा एकको कहा है वैसा ही दूसरेको समझें। (ख) *'आयेउ दधि अरु मीना'* अर्थात् कोई उन दोनोंको लेकर सामने आया। यह लक्षणा है। *'आयेउ'* एक वचन है 'आयें' उसका बहुवचन है। यहाँ बहुवचन क्रिया चाहिये थी, क्योंकि दधि और मीन दो वस्तुएँ हैं। एकवचन क्रिया देकर व्यञ्जित किया कि एक ही मनुष्य दोनों वस्तुओंको लिये हुए आया। आनेवाला एक ही है, इसीसे एकवचन पद दिया। ☞इसीसे यह भी जनाया कि एक ही मनुष्य दोनोंको लेकर आवे तब विशेष शुभ है, दो मनुष्य एक-एक वस्तुको लिये हों तब नहीं। (मछली जीवित हो, जलमें पड़ी हो, तब शुभ है। मरी हुई मछलीका दर्शन शुभ नहीं है।) (ग) *'कर पुस्तक दुइ बिप्र'* इति। हाथमें पुस्तक होनेसे जनाया कि ब्राह्मणके हाथमें पुस्तकका दर्शन शुभ शकुन है। *'प्रबीना'*—प्रवीण अर्थात् सुजान हैं। *'दुइ'*, *'कर पुस्तक'* और 'प्रवीण' कहकर जनाया कि आपसमें कुछ शास्त्रकी चर्चा करते चले आ रहे हैं और पण्डित हैं, कुछ सुनकर (सुनी-सुनायी बातकी) चर्चा नहीं करते। (किंतु पोथीमें जो है उसकी चर्चा करते हैं।)

टिप्पणी—३ *'मंगलमय कल्यानमय…'* इति। (क) ऊपर चौपाइयोंमें जितने शकुनोंका वर्णन किया गया उनमेंसे केवल तीनको मङ्गलदाता कहते हैं (अर्थात् तीनहीके साथ 'मङ्गल' या उसका पर्याय शब्द आया है); यथा—*'चारा चाषु बाम दिसि लेई। मनहु सकल मंगल कहि देई॥'* (२) *'मृगमाला फिरि दाहिनि आई। मंगलगन जनु दीन्हि देखाई॥'* (६) *'छेमकरी कह छेम…।'* (७) अन्य शकुनोंके साथ यह शब्द नहीं दिया गया। ['तो क्या और सब मङ्गलदाता नहीं हैं?' इस सन्देहके निवारणार्थ उपक्रममें *'होहिं सगुन सुंदर सुभ दाता'* और यहाँ अन्तमें भी] सबको मङ्गलदाता कहते हैं—*'जनु सब साँचे…।'* (ख) मङ्गलमय, कल्याणमय स्वयं हैं (अपने स्वरूपसे हैं) और दूसरोंको *'अभिमत फल दातार'* हैं। शकुन बहुत हैं, इसीसे *'दातार'* बहुवचन पद दिया। [पुन:, मङ्गलमयसे धन, पुत्र, पुत्रवधू इत्यादि लाभके देनेवाले और कल्याणमयसे उन मङ्गलोंकी निर्विघ्न स्थिरता सूचित की। (मुं० रोशनलाल) अर्थात् योग और क्षेम, वस्तुकी प्राप्ति और उसकी रक्षा दोनोंके करनेवाले जनाया। अथवा वाञ्छित फल देते हैं, अत: कल्याणमय अर्थात् सुखदाता हैं और

सुखदाता होनेसे 'मङ्गलमय' हैं। (पं०) अथवा मङ्गलमय, कल्याणमय अभिमतके देनेवाले हैं। (रा० प्र०)] (ग) ये तीनों विशेषण सहेतुक हैं। यह नियम नहीं है कि अभिमत फलकी प्राप्ति सदा कल्याणकारक हो और यह भी जरूरी नहीं कि मङ्गलमय वस्तु कल्याणप्रद ही होगी। तीनोंका एक साथ होना परम दुर्लभ है। इसीसे कहा *'भए सगुन एक बार'* [सब शकुन मङ्गलमय तो थे ही, पर साथ ही सर्वश्रेयस्करी क्लेशहारिणी श्रीसीताजीको विवाह-विधिसे 'रामवल्लभा' बनवाकर 'सुर-नर-मुनि सबके भय' को दूर करनेवाले होंगे। दु:खरहित सुख ही अभिमत फल है। (प० प० प्र०)]

पं० विजयानन्द त्रिपाठीजी—*'चारा चाषु बाम दिसि लेई'* '' *'सगुन भए एक बार'* इति। भाव कि (१) ज्यों ही *'बाँधे बिरद बीर रन गाढ़े। निकसि भये पुर बाहर ठाढ़े॥'* तो देखते हैं कि नीलकण्ठ बायीं ओर चारा चुग रहा है। (२) इसी तरह ज्यों ही *'चढ़ि चढ़ि रथ बाहर नगर लागी जुरन बरात'* तो (वह बारात) देखती है कि सुखेतमें काग शोभित है। (३) *'चले मत्तगज घंट बिराजी'* तो *'नकुल दरस सब काहूँ पावा।'* (४) *'तेहि चढ़ि चले बिप्रबर बृंदा'* तो *'सानुकूल बह त्रिबिध बयारी।'* (५) *'चले जान चढ़ि जो जेहि लायक'* तो *'सघट सबाल आव बर नारी।'* (६) *'चले बस्तु भरि अगनित भाँती'* तो *'लोवा फिरि फिरि दरस दिखावा।'* (७) *'कोटिन्ह काँवर चले कहारा'* तो *'सुरभी सन्मुख सिसुहिं पियावा।'* (८) *'चले सकल सेवक समुदाई'* तो *'मृगमाला दाहिन दिसि आई।'* (९) *'तब सुमंत दुइ स्यंदन साजी'* तो *'छेमकरी कह छेम बिसेषी।'* (१०) *'दोउ रथ रुचिर भूप पहँ आने'* तो *'स्यामा बाम सुतरु पर देखी।'* (११) *'आपु चढ़े स्यंदन सुमिरि हर गुरु गौरि गनेस'* तो *'सन्मुख आयेउ दधि अरु मीना।'* और (१२) *'चले महीपति संख बजाई'* तो *'कर पुस्तक दुइ बिप्र प्रबीना।'*

इन सगुनोंमें भी तीन भेद किये। *'चारा चाषु बाम दिसि लेई'* से *'मंगलगन जनु दीन्हि देखाई'* तक आठ मङ्गलमय सगुन हैं। *'छेमकरी कह छेम बिसेषी'* यह एक कल्याणमय सगुन है। शेष तीन *'अभिमत दातार'* सगुन हैं।

नोट—१ *'जनु सब साँचे होन हित'* '' इति। भाव यह कि उन्होंने सोचा कि सगुणब्रह्मकी बारात है, इनको मङ्गल तो होना ही है चाहे हम न भी जायँ; पर आज हमारे न जानेसे भविष्यकालमें हमें कोई माङ्गलिक न मानेगा, लोग यही कहेंगे कि माङ्गलिक होता तो श्रीरामविवाहके समय अवश्य दिखायी दिया होता। सुतरां आगे अपनेको माङ्गलिक प्रमाणित करनेके लिये सब प्रकट हो गये। सगुन, यथा—**'भेरीमृदंगमृदुमर्दलशंखवीणा वेदध्वनिर्मधुरमंगलगीतवाद्याः। पुत्रान्विता च युवती सुरभिः सवत्सा धौताम्बरश्च रजकोऽभिमुखः प्रशस्तः॥'** (रत्नमाला। श्रीपति)

टिप्पणी—४ *'भए सगुन एक बार'* इति। *'एक बार'* कहनेका भाव कि ये सब शकुन एक ही समयमें किसीको नहीं होते; इसीसे उत्प्रेक्षा करते हैं कि मानो सब सच्चे होनेके लिये यहाँ एक ही समयमें हुए। [सब शकुन सच्चे होनेके लिये हुए हैं। सबका सच्चा होना भी आगे कहा है। यथा—*'सुनि अस ब्याहु सगुन सब नाचे। अब कीन्हे बिरंचि हम साँचे॥'* (३०४। ३) तब *'जनु'* पद क्यों दिया?' यह शंका पं० रामकुमारजीने उठाकर छोड़ दी है। मेरी समझमें समाधान इसका यह है कि अभी सच्चे नहीं हुए हैं, अभी तो शकुन हुए हैं, इसलिये यहाँ उत्प्रेक्षा की गयी। आगे जब मङ्गल, कल्याण और अभिमत फल मिलेगा तब इनकी सत्यता प्रकट होगी। *'जनु सब साँचे'* ..... ' यह कविका वचन है और *'बिरंचि कीन्हे हम साँचे'* यह शकुनोंका कथन है।]

नोट—२ अ० दीपककार इस दोहेका भाव यह लिखते हैं—*'राजराज साकेत ढिग बन मानसजाकूल। बिचरत खग रसिक तेइ भये सगुन सुख मूल।'* (९६) भाव यह है कि ऐसी भारी बारातमें मृगमाला और लोमड़ीका फिरना और सगुन जनाना कैसे बनेगा? लौकिक सगुन अलौकिक विवाहमें कैसे ठहरेंगे? अतएव यहाँ आशय यह है कि साकेतके उत्तर सरयूके दक्षिण जो प्रमोद, अशोक, शृङ्गार, पारिजात आदि बारह दिव्य वन हैं उनके खग-मृगादि ही सब साथमें बारातके आगे सगुन करते चले (अ० दी० च०)।

मंगल सगुन सुगम सब ताकें। सगुन ब्रह्म सुंदर सुत जाकें॥ १॥
राम सरिस बर दुलहिनि सीता। समधी दसरथु जनकु पुनीता॥ २॥
सुनि अस ब्याहु सगुन सब नाचे। अब कीन्हें बिरंचि हम साँचे॥ ३॥
येहि बिधि कीन्ह बरात पयाना। हय गय गाजहिं हने निसाना॥ ४॥

अर्थ—उसको सभी मङ्गल और शकुन सुलभ हुआ चाहें (अर्थात् इसमें कोई आश्चर्य नहीं है) कि जिसके सगुणब्रह्म ही सुन्दर पुत्र हैं॥ १॥ (जहाँ) श्रीरामचन्द्रजी-सरीखे दूलह, श्रीसीताजी-जैसी दुलहिनि और श्रीदशरथ-जनक-जैसे पवित्र (सुकृती) समधी हैं॥ २॥ ऐसा ब्याह सुनकर सभी शकुन नाचने लगे (अर्थात् आनन्दित हुए कि) ब्रह्माने हमें अब सच्चा किया॥ ३॥ इस प्रकार बारातने प्रस्थान किया (अर्थात् चली), घोड़े-हाथी गरजते हैं, डंकोंपर चोटें दी जा रही हैं॥ ४॥

टिप्पणी—१ *'मंगल सगुन सुगम सब…'* इति। (क) तात्पर्य कि जिसके लिये स्वयं ब्रह्म ही सगुण अर्थात् व्यक्त हो गया; उसको यदि समस्त शकुन सुलभ हो गये तो इसमें कौन बड़ी बात है (जो आश्चर्य किया जाय)? (ख) *'सुगम सब ताकें'* का भाव कि औरोंको एक ही समयमें समस्त शकुनोंका होना अगम्य है, पर श्रीदशरथजी महाराजको *'सुगम'* है यह कहकर आगे उसका कारण बताते हैं कि *'सगुन ब्रह्म सुंदर सुत जाकें'* अर्थात् 'सगुण' ब्रह्म उनके पुत्र हुए इसीसे *'सगुन'* सुगम हैं। (ग) *'मंगल सगुन सुगम'* कहकर जनाया कि कार्य और कारण दोनों सुगम हैं। *'सगुन'* कारण है; *'मंगल'* कार्य है; क्योंकि शकुन होनेसे मङ्गल होते हैं। पुनः, *'मंगल सगुन'* अर्थात् मङ्गल पहले और सगुन पीछे कहकर यह दिखाया कि इनको मङ्गल (क्योंकि श्रीरामजी मङ्गलभवन हैं) की प्राप्ति पहले हुई, शकुन पीछे हुए। पुनः, *'मंगल सगुन सुगम'* का भाव कि सगुणब्रह्मका आकर पुत्र होना अगम्य है, मङ्गल शकुनका होना सुगम है। (घ)—*'सुंदर सुत'* इति। शकुनोंको सुन्दर कह आये हैं, यथा—*'होहिं सगुन सुंदर सुभदाता।'* (३०३। १) उसीकी जोड़में सगुण ब्रह्मको *'सुंदर सुत'* कहा। *'सगुन ब्रह्म सुंदर सुत'* है तब *'सुंदर सगुन'* क्यों न सुगम हों? (ङ) (*'मंगल सगुन'* कहकर यह भी जनाया कि शकुन अमङ्गल भी होते हैं, इनको सब मङ्गल शकुन हुए।)

टिप्पणी—२ *'राम सरिस बर दुलहिनि सीता…'* इति। (क) [*'सरिस'* मुहावरा है, इसका अर्थ है 'सदृश, सरीखा, जैसा, ऐसा, सा'। इसका अन्वय दोनों चरणोंमें 'राम, सीता, दशरथ, जनक' सबके साथ होगा। *'राम सीता सरिस बर दुलहिनि', दशरथ जनक सरिस पुनीत समधी'*] सरिस, यथा—*'राम लषन तुम्ह सत्रुहन सरिस सुअन सुचि जासु।'* (२। १७३) वैसे ही यहाँ *'राम सरिस बर'। 'सरिस'* का भाव कि राम ऐसे *'बर'* हैं और सीता ऐसी *'दुलहिनि'* हैं। अथवा, श्रीसीताजीके सरिस (समान योग्य) श्रीरामजी 'वर' हैं और श्रीरामजीके सरिस श्रीसीताजी 'दुलहिनि' हैं। यथा-*'अनुरूप बर दुलहिनि परसपर लखि'*…। ३३५ छन्द।' [*'राम सरिस बर'*…' का भाव कि *'जिन्ह कर नाम लेत जग माहीं। सकल अमंगल मूल नसाहीं॥ तेइ सिय राम'* ही जब दूलह-दुलहिन बने हैं तब उनकी बारातमें मङ्गल-ही-मङ्गल क्यों न हों! (प्र० सं०)] (ख)—यह श्रीअयोध्या है, इसीसे यहाँ श्रीरामजीका नाम प्रथम कहा, पीछे सीताजीका। श्रीमिथिलाजी (लड़कीके पिताके घर) में श्रीसीताजीका नाम प्रथम लेते हैं, पीछे श्रीरामजीका; यथा—*'जेहि मंडप दुलहिनि बैदेही।'*…*'दूलहु रामरूप गुन सागर।'* (२८९। ४-५) (ग) *'समधी दसरथु जनकु पुनीता'* इति। श्रीराम-सीताजीको कहकर अब उसी क्रमसे दोनों पिताओंके नाम कहते हैं। इससे सूचित किया कि जैसे शकुन यहाँ हुए, वैसे ही शकुन जनकपुरके लोगोंको होते हैं जो जिस कामको जाता है। यथा—*'होत सगुन सुंदर सबहिं जो जेहि कारज जात।'* (२९९) यहाँ, तथा वहाँ। (घ) *'पुनीता'* का भाव कि इनकी तपस्यासे, इनके बड़े सुकृतोंसे श्रीराम-जानकीजी प्रकट हुए हैं, यथा—*'जनक सुकृत मूरति बैदेही। दसरथ सुकृत रामु धरे देही॥'* (३१०। १) [यहाँ श्रीरामजी पुत्र हुए और वहाँ श्रीसीताजी पुत्री हुईं। पंजाबीजी इन अर्धालियोंका यह भाव लिखते हैं कि 'जहाँ एक भी

धर्मात्मा होता है वहाँ उस एकहीके प्रभावसे सब कार्य सिद्ध होते हैं और यहाँ तो साक्षात् श्रीरामचन्द्रजी दूलह और श्रीजानकीजी दुलहिन एवं श्रीदशरथ-जनक ऐसे समधी हैं, इस तरह अनेकों उत्तम योग एकत्रित हैं, तब इनके कार्य तो सभी सुफल होने ही हैं, हम (सगुन) अपनी प्रधानता इस समय क्यों न करा लें।] पुनः, *'समधी दसरथु जनकु'* का भाव कि दोनों एक-दूसरेके सदृश हैं, यथा—*'सकल भाँति सम साजु समाजू। सम समधी देखे हम आजू॥'* (३२०। ६)

टिप्पणी—३ *'सुनि अस ब्याहु सगुन सब नाचे…'।* इति। (क) भाव कि बारातियोंसहित राजाके दर्शन करके सब शकुन कृतार्थ हुए। [बाराती उनको देखकर क्या कृतार्थ होंगे, बारातियोंको देख वे स्वयं कृतार्थ हुए। *'अब कीन्हे'* का भाव यह है कि अबतक ऐसा कोई अवसर न पड़ा था कि सब सगुन एकबारगी होते जिससे हम सबोंके मङ्गलकारक होनेकी परीक्षा एकबारगी हो जाती वह दिन आज आया। यह जानकर सब शकुन मारे आनन्दके बारातके सामने आकर नाचने लगे। यह बात देखनेकी है कि शकुनोंको देखकर बारातियोंका हर्षित होना अपनेको कृतार्थ समझना प्रसङ्गभरमें नहीं कहा है, क्योंकि उनके लिये यह कोई बड़ी बात नहीं है, पर शकुनोंको ऐसा संयोग मिलना बड़ी बात है, अतः वे सब कृतार्थ हो रहे हैं। (ख) सगुन सब जड़ हैं, उनका यह समझना कि अब विधाताने हमें सच्चा किया, इस खुशीमें नाचना असिद्ध आधार है। बिना वाचक पदके ऐसी कल्पना करना 'ललितोत्प्रेक्षा अलङ्कार' है। (वीरकवि)]

टिप्पणी—४ *'येहि बिधि कीन्ह बरात पयाना…'* इति। (क) पहले बारात जुटती रही, यथा—*'चढ़ि चढ़ि रथ बाहेर नगर लागी जुरन बरात।'* (२९९) जब महाराजकी सवारी आ गयी तब बारातने प्रस्थान किया। प्रथम राजाका प्रयाण कहा, यथा—*'सुमिरि राम गुर आयसु पाई। चले महीपति संख बजाई॥'* (३०२। ३) पीछे अब बारातका प्रस्थान करना कहते हैं। इससे जनाया कि राजाकी सवारी आगे है, बारात पीछे—इस प्रकार बारात चली। *'येहि बिधि'* का सम्बन्ध ऊपरके *'करि कुलरीति बेद बिधि राऊ।'* (३०२। १) से लेकर *'बनें न बरनत बनी बराता।'* (३०३। १) तकसे है। बीचमें शकुनोंका होना कहने लगे, अब फिर जहाँ छोड़ा था वहींसे उठाते हैं। *'एहि बिधि'* अर्थात् जैसा ऊपर कह आये, वैसे और शकुनोंके बीच। (ख) *'हय गय गाजहिं हने निसाना'* अर्थात् प्रस्थानके नगाड़े बजने लगे, चलतेमें घोड़ों और हाथियोंके शब्द हो रहे हैं।

इति श्रीरामबारातप्रस्थानवर्णनं समाप्तम्।

आवत जानि भानुकुल केतू। सरितन्हि जनक बँधाए सेतू॥५॥
बीच बीच बर बासु बनाए। सुरपुर सरिस संपदा छाए॥६॥
असन सयन बर बसन सुहाए। पावहिं सब निज निज मन भाए॥७॥
नित नूतन सुख लखि अनुकूले। सकल बरातिन्ह* मंदिर भूले॥८॥
दो०—आवत जानि बरात बर सुनि गहगहे निसान।
सजि गज रथ पदचर तुरग लेन चले अगवान॥३०४॥

शब्दार्थ—**बास**=ठहरने (विश्राम) के स्थान, पड़ाव। **असन**=भोजन। **सयन**=शय्या, सेज, यथा—*'मयन सयन सय सम सुखदाई।'* (२।१४०) **अनुकूल**=(इच्छा वा आवश्यकताओंके) मुआफिक, मनभावते। **अगवान**=अगवानी, कन्यापक्षके लोगोंका बारातकी अभ्यर्थना अर्थात् आगेसे जाकर लेनेके लिये जाना।=अगवानी लेनेवाले। **गहगहे**=बहुत जोरसे, घमाघम, बहुत अच्छी तरहसे।

अर्थ—सूर्यवंशके केतु (ध्वजा) श्रीदशरथ महाराजको आता हुआ जानकर राजा जनकने नदियोंमें पुल

---

* १६६१में 'बराति' है। सम्भवतः 'बराती' पाठका लेख प्रमादसे 'बराति' हो गया। अथवा, 'न्ह' छूट गया। 'बरातिन्ह' पाठ प्रायः सबमें है अतः वही हमने दिया है। आगे ३०५ (८) में 'बरातिन्ह' है।

बँधवा दिये॥ ५॥ बीच-बीचमें ठहरनेके लिये अच्छे-अच्छे निवास स्थान (पड़ाव) बनवाये, जिनमें देवलोकके समान ऐश्वर्य छाया पड़ा था (अर्थात् परिपूर्ण भरा था, मानो सम्पदाने मूर्तिमान् हो वहाँ छावनी डाली हो)॥ ६॥ सब बाराती सुहावने उत्तम भोजन, शय्या और वस्त्र अपने-अपने मनभावते पाते हैं॥ ७॥ अपनी पसन्दका नित्य नया सुख देख सब बाराती घरको भूल गये॥ ८॥ सुन्दर श्रेष्ठ बारातको आती जानकर, घमाघम नगाड़े सुनकर (अगवानोंने आनन्दित होकर बहुत अच्छी तरह) निशान, हाथी, रथ, पैदल और घोड़े सजाकर अगवान लोग अगवानी लेने चले॥ ३०४॥

टिप्पणी—१ *'आवत जानि भानुकुल केतू……'* इति। (क) *'आवत जानि'* का भाव कि चक्रवर्ती महाराजके जनकपुर आनेमें संदेह था (इसीसे तो श्रीजनकजीने कहा है कि *'अपराध छमिबो बोलि पठए बहुत हौं ढीठ्यों कई।'* (३२६) और इसीसे विश्वामित्रजीकी आज्ञासे दूत भेजा था), इसीसे आते जाना तब नदियोंमें पुल बधवाये। पुनः *'आवत जानि'* कहनेसे पाया गया कि जो दूत पत्रिका लेकर गये थे वे श्रीअयोध्याजीसे बिदा होकर श्रीजनकपुर आ गये थे और उन्होंने बारातकी तैयारीकी सूचना दी। (प० प० प्र० का मत है कि दूतोंसे समाचार मिलनेपर सेतु बँधवाये इत्यादि मानना असम्भव जान पड़ता है, अतः यह अनुमान करना अयुक्तिक न होगा कि विश्वामित्रने प्रथम ही कह दिया होगा कि दशरथजी आते हैं।) (ख)*'भानुकुलकेतू'* का भाव कि बहुत भारी राजा हैं। पुनः भाव कि जैसे भानु प्रकाशमान है, वैसे ही भानुकुल भी प्रकाशमान है; जैसे सूर्यका उदय पृथ्वीभरको स्वयं प्रकट हो जाता है, वैसे ही इनका आगमन सबको प्रकट हो गया। सब जान गये कि महाराज बारात लेकर आ रहे हैं। ('केतु' का भाव कि सूर्यकुलके सभी राजा तेजस्वी और प्रतापी हुए और ये तो उसकी ध्वजा, पताकारूप ही हैं, अतः इनका आगमन कौन न जानेगा?)। (ग) *'सरितन्ह'* बहुवचन है। इससे जनाया कि जनकपुरके मार्गमें बहुत नदियाँ पड़ती हैं। सबोंमें पुल बँधाये। (घ) *'भानुकुलकेतू'* आते हैं, यह जानकर नदियोंमें पुल बँधाना कहनेका भाव कि बड़े चक्रवर्ती राजा हैं, अतः उनकी बारात भी बहुत भारी है, इससे नदियोंमें भारी-भारी पुल बँधवाये। (ङ) बहुत शीघ्र सब नदियोंमें पुल बँध गये—यह सब श्रीजानकीजीकी कृपासे। यहाँ *'जनक बँधाए'* कहकर सूचित किया कि यह सब प्रबन्ध (पुलोंका बनवाना, बीच-बीचमें ठहरनेके स्थान, भोजन-शयन आदि) श्रीजनक महाराजने अपने घरके द्रव्यसे, अपने वैभव-पराक्रमसे किया, सिद्धियोंद्वारा नहीं। यदि सिद्धियोंद्वारा प्रबन्ध होता तो उनके स्मरणका उल्लेख अवश्य होता। इनके स्मरणकी रीति ग्रन्थभरमें दर्शित की गयी है। यथा—*'हृदय सुमिरि सब सिद्धि बोलाईं। भूप पहुनई करन पठाईं॥ सिधि सब सिय आयसु अकनि गईं जहाँ जनवास।'* (३०६) *'सुनि रिधि सिधि अनिमादिक आईं।'* (२। २१३) बारातके आते-आते पुल बँध गये, यह राजा जनकका पुरुषार्थ है। यदि सिद्धियोंसे काम लेते तो बारातके लौटते समय सीधा क्यों भेजते? यथा—*'जहँ जहँ आवत बसे बराती। तहँ तहँ सिद्ध चला बहु भाँती॥ बिबिध भाँति मेवा पकवाना। भोजन साजु न जाइ बखाना॥ भरि भरि बसहु अपार कहारा। पठई जनक अनेक सुसारा॥'* (१। ३३३)

नोट—१ ☞इससे ज्ञात होता है कि उस समय या तो ऐसे पुल तैयार रहते थे कि सुगमतासे जहाँ चाहे वहाँ तुरत उसे ले जाकर बाँध दें। अथवा ऐसे इन्जीनियर और कारीगर थे कि तीन-चार दिनमें पुल तैयार कर देते थे।

टिप्पणी—२ *'असन सयन'''* इति। (क) अशन, शयन, वस्त्र सब क्रमसे कहे। भाव कि ठहरनेके स्थान मिलनेपर फिर भोजन मिला, भोजनोत्तर शय्या मिली और सेजपर ओढ़ने-बिछानेके वस्त्र मिले। (ख) *'बर'* कहकर जनाया कि बहुत भारी मूल्यके हैं और *'सुहाए'* से बनावटमें सुन्दर जनाया। (ग) *'निज निज मन भाए'*—बारातमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, सेवक, नट आदि सभी जातिके लोग हैं, अतः *'निज निज मन भाए'* कहकर जनाया कि ऋषियों-मुनियों-ब्राह्मणोंको जैसे भाते हैं वैसे उनको मिले। इसी प्रकार राजा, राजकुमार, रघुवंशी इत्यादि सबको उनके रुचिके अनुकूल मन-भावता मिला। *'मन भाए'* कहकर

यह भी जनाया कि मनमें इच्छा करते ही सेवक लोग प्राप्त कर देते हैं। यथा—'*दासी दास साजु सब लीन्हें। जोगवत रहहिं मनहि मनु दीन्हें॥*'(२। २१४। ६) (जैसा भरद्वाजाश्रमपर भरत पहुनईमें कहा है।)

टिप्पणी—३ '*नित नूतन सुख लखि अनुकूले।*''''' इति। (क) '*नित नूतन*' का भाव कि सब निवासस्थान श्रेष्ठ हैं, सब दिव्य सम्पदासे भरपूर हैं। सब बराबरके हैं, इसीसे किसी स्थानमें अधिक पहुनाई नहीं कहते, नित्य नवीन कहते हैं; तात्पर्य यह है कि सब स्थानोंमें अन्य-ही-अन्य प्रकारके सुख मिले। (जैसी एक पड़ावपर भोजन, शयन, निवासस्थान, वस्त्रादि सब आवश्यकीय सामग्री मिलती थी, उससे नवीन दूसरे पड़ावपर मिलती थी, इत्यादि।) (ख) '*अनुकूले*' अर्थात् मन-भावते। जैसी मनमें इच्छा है वैसी ही मिलना अनुकूलता है। सुख बहुत हैं और सब प्रकारके हैं, इसीसे '*अनुकूले*' बहुवचन कहा। (ग) '*सकल बरातिन्ह मंदिर भूले*' इति। मनुष्यको बाहर जब कोई दुःख मिलता है तब उसे घरकी याद बहुत आती है और जब घरका-सा सुख बाहर मिलता है, बाहर भी अच्छी सेवा मिलती है तब घर भूल जाता है। इसीसे सुमित्राजीका उपदेश लक्ष्मणजीको हुआ कि ऐसी सेवा करना कि श्रीरामजी घरकी सुध भूल जायँ, यथा—'*उपदेसु यहु जेहिं तात तुम्हरे राम सिय सुख पावहीं। पितु मातु प्रिय परिवार पुर सुख सुरति बन बिसरावहीं॥*'(२। ७५) अवधवासियोंका सुख-संपदा-समाज बहुत दिव्य था, यथा—*अवधपुरी बासिन्ह कर सुख संपदा समाज। सहस सेष नहिं कहि सकहिं जहँ नृप राम बिराज॥*' (७। २६) वैसा ही सुख सर्वत्र मिला, अतः घर भूल गये। घर भूलना कहकर जनाया कि घरसे भी अधिक सेवा यहाँ की गयी। जो सुख घरमें मिलता था वह सब यहाँ मिलता गया।

प० प० प्र०—कविने रामपुरीको जनकपुरसे अधिक मनोहर कहा है, यह '*पहुँचे दूत राम पुर पावन। हरषे नगर बिलोकि सुहावन॥*' (२९०। १) से सिद्ध है; तब बारातियोंके निज-निज घर भूलनेका क्या कारण? यहाँ '*मंदिर*' का अर्थ निज घर नहीं है जैसा पूर्व परशुरामकृत स्तुति तथा २८७। ४ में लिखा गया है। यदि घर अभिप्रेत होता, तो यहाँ भी निज-निज शब्द कवि लिख देते जैसे '*निज निज मन भाए*', '*निज निज बास बिलोकि बराती*' में लिखा है। यहाँ यह भाव है कि बाराती प्रवासके परिश्रमसे श्रान्त होकर उन वासोंमें प्रवेश करते थे, वहाँ सभी पदार्थ '*निज निज मन भाए*' मिलनेसे उनको सुख होता था, उस समय '*कबहिं देखिबे नयन भरि राम लषन दोउ बीर*' यह भावना उनके हृदयसे जाती रहती थी जिस हृदयमें श्रीरामजीका सतत चिंतन रहता है वह रामजीका मन्दिर हो जाता है, यथा—'*तिन्हके मन मंदिर बसहु सिय रघुनंदन दोउ।*' (२। १२९) बारातियोंको अनपेक्षित सुख मिलनेसे उनके हृदयका मन्दिरत्व जाता रहता था, यह भाव दरसानेके लिये '*मंदिर*' शब्द दिया गया।

नोट—२ '*आवत जानि बरात बर*''''' इति। 'अच्छी बारातको आती हुई जानकर और निशानोंका शब्द सुनकर प्रायः सभी टीकाकारोंने यही अर्थ किया है। परंतु पं० रामकुमारजी अर्थ करते हैं कि 'श्रेष्ठ बारात आती जानकर सुनकर नगाड़े जोरसे बजे। हाथी, रथ, पैदल, घोड़े सजकर अगवानी लेने चले।' वे लिखते हैं कि 'अगवानोंने नगाड़े बजाये, बारातियोंका नगाड़े बजाना आगे कहेंगे, यथा—'*देखि बनाव सहित अगवाना। मुदित बरातिन्ह हने निसाना॥*' (३०५। ८) बाबू श्यामसुन्दरदासने भी ऐसा ही अर्थ किया है अर्थात् 'इस तरह सजी हुई बारातको आती देख-सुनकर इधर भी डंके बजे'। परन्तु 'गहगहे कहीं ग्रन्थमें मेरे स्मरणमें '*बजाए*' या '*बजे*' के अर्थमें नहीं आया है, जहाँ बजना या बजाना कहा है वहाँ साथमें '*बाजे*' क्रिया भी आयी है, यथा—'*अरु बाजे गहगहे निसाना।*' (१५४। ४), '*बाजे नभ गहगहे निसाना।*', (२६२। ४) '*अति गहगहे बाजने बाजे।*'(२८६। १) इत्यादि। '*गहगहे*' क्रिया-विशेषण है, उसका अर्थ है—'बहुत प्रसन्नतासे; बड़ी जोरसे; घमाघम'। यथा—'*हरषि हने गहगहे निसाना।*' (२९६। १) '*चलीं गान करत निसान बाजे गहगहे, लहलहे लोयन सनेह सरसई है।*' (गीतावली १। ९४) प्रथम संस्करणमें हमने भी वही अर्थ दिया था जो अन्य सभी टीकाकारोंने दिया था। परन्तु इस संस्करणमें हमने '*गहगहे निसान*' को देहली-दीपकन्यायसे दोनों तरफ लेकर अर्थ किया है। '*सुनि गहगहे निसान*' '*गहगहे निसान सजि*'''। '*सजि*' भी दीप-देहली

है। बारात जब निकट आती है तब बारातमें अब भी बाजे जोरसे बजानेकी रीति है। *'गहगहे'* का अर्थ 'आनंदित होकर' और 'बहुत अच्छी तरह' भी है। प्रज्ञानानन्दजी पं० रामकुमारजीके अर्थसे सहमत हैं।

टिप्पणी—४ (क) *'आवत जानि'"'* का भाव कि किसी दूतको भेजकर राजाने समाचार लिया कि कैसी बारात है। दूतके द्वारा जाना कि बारात *'बर'*, अर्थात् श्रेष्ठ है। *'सुनि'* से दूतका कहना स्पष्ट है। पूर्व जो कहा था कि *'आवत जानि भानुकुलकेतू'* वहाँ केवल यह जानना कहा गया कि बारात आवेगी, और यहाँ *'आवत जानि बरात बर'* कहकर बारातका भारी, सुन्दर और श्रेष्ठ होनेकी बात जानना कही। (पुन: पहली बार श्रीजनकमहाराजका जानना कहा था और इस बार अगवानोंका जानना, सुनना कहा जिन्हें अगवानीमें जाना है।) *'बारात बर सुनि गहगहे निसान सजि'"'* का भाव कि बारात श्रेष्ठ सुनकर अगवानी भी वैसी ही श्रेष्ठ सजी गयी। *'गज रथ पदचर तुरग'* कहकर चतुरंगिणी सेनाका सजना कहा। बारात बरको सुनकर अगवानी सजी गयी। इससे जनाया कि बारात इतनी दूर थी कि उतनेमें चतुरंगिणी सेना सज ली गयी। बारात बहुत श्रेष्ठ है, यह सुनकर सब बहुत प्रसन्न हुए; इसीसे बड़े जोरसे नगाड़े बजाये और चतुरंगिणी सेना सजी। चतुरंगिणी सेना सजनेके लिये ये निशान बजाये गये। यथा—*'सजहु बरात बजाइ निसाना।'*

कनक कलस भरि* कोपर थारा। भाजन ललित अनेक प्रकारा॥ १॥
भरे सुधा सम सब पकवाने। भाँति भाँति नहिं जाहिं बखाने†॥ २॥
फल अनेक बर बस्तु सुहाई। हरषि भेंट हित भूप पठाई॥ ३॥
भूषन बसन महामनि नाना। खग मृग हय गय बहु बिधि जाना॥ ४॥
मंगल सगुन सुगंध सुहाए। बहुत भाँति महिपाल पठाए॥ ५॥

शब्दार्थ—**कोपर**=पीतल वा अन्य किसी धातुका बड़ा थाल जिनमें एक ओर उसे सरलतासे उठानेके लिये कुण्डा लगा रहता है।—(श० सा०) बुँदेलखण्डमें **'कोपर'** नामके बर्तन होते हैं।=परात। मानसतत्त्व-विवरणकार लिखते हैं कि दक्षिणमें कोपर कटोरेको कहते हैं। **'थारा'** (थाल)—पीतल या काँसेका छिछला बड़ा बर्तन। **भाजन**=पात्र। **ललित**=सुन्दर, अर्थात् देखते ही मनको हर लेनेवाले। **पकवान** (पक्वान्न)= घीमें तले, भूने, पकाये हुए खानेके पदार्थ। **महामनि**=बड़े बहुमूल्य रत्न। **मंगल सगुन**—कुछ ऐसे शकुनोंका वर्णन दो० (३०३।८) आदिमें है।

अर्थ—(मंगल जल, मिर्चवानी शर्बत आदिसे) भरकर सोनेके कलश और भाँति-भाँतिके सब अमृतसमान पकवानोंसे कि जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता, भरे हुए परात, थाल आदि अनेक प्रकारके सुन्दर पात्र॥ १-२॥ अनेकों बढ़िया-बढ़िया फल तथा और भी सुन्दर वस्तुएँ राजा जनकने हर्षपूर्वक भेंटके लिये भेजीं॥ ३॥ अनेकों भूषण, वस्त्र और महामणि तथा पक्षी, मृग, घोड़े, हाथी आदि बहुत प्रकारकी सवारियाँ॥ ४॥ बहुत प्रकारके सुन्दर मंगलद्रव्य, मंगल शकुनके पदार्थ और (अतर, गुलाब, केवड़ा, हिना आदि) सुगन्धित द्रव्य राजाने भेजे॥ ५॥

टिप्पणी—१ (क) *'कनक'* कलश, कोपर, थार और भाजन सबका विशेषण है, सब सुवर्णके हैं। *'भरि'* कलशके साथ है, कलश जल आदि भरनेके लिये और कोपर, थाल और अनेक प्रकारके पात्र कटोरा आदि व्यंजनादि रखनेके लिये हैं। *'ललित'* का भाव कि बिना कोई पदार्थ उनमें रखे हुए

* कल कोपर=१७२१, १७६२, छ०। कोपर भरि—१७०४। भरि कोपर—१६६१, को० रा०।

†भाँति भाँति नहिं जाहिं बखाने—१७२१, १७०४, १७६२, छ०, को० रा०। १६६१ में हरताल दिया है और ऊपरसे कागज चपका है। कागजपर 'नाना' पाठ लिखा है। हाशियेपर सम्भवत: गोस्वामीजीके हाथका 'ति' के पहले 'भली भा' लिखा है परन्तु 'भली' पर भी कागज चपका है, इससे स्पष्ट नहीं है। १६६१ में 'भाँति नहिं' है। 'नहिं' पाठसे मात्रा बढ़ जाती है। 'नाना भाँति न जाहिं बखाने' होना चाहिये। 'भाँति भाँति' के साथ 'नहिं' ठीक बैठ जाता है। अत: हमने 'भाँति भाँति नहिं' पाठ ही लिया है जो अन्य सबोंमें है।

छूछे भी ऐसे सुन्दर हैं कि देखकर मन प्रसन्न हो जाता है। (ख) *'भरे सुधा सम सब पकवाने'* इति। मार्गमें पड़ावोंपर बारातियोंको सुरलोकके समान पदार्थ दिये थे, यथा—*'बीच बीच बर बास सुहाए। सुरपुर सरिस संपदा छाए॥'* (३०४। ६) और जनवासेमें सुरलोकके पदार्थ दिये गये हैं, यथा—*'निज निज बास बिलोकि बराती। सुर सुख सकल सुलभ सब भाँती॥'* (३०७। १) इसीसे अगवानीमेंके भेंटके पदार्थोंको *'सुधा सम'* कहा, सुधा सुरलोकका पदार्थ है, इस तरह *'सुधा सम'* कहकर इन सब पक्वान्नोंको सुरपुर-पदार्थ-सरिस बताया। (ग) पक्वान्न भेंटमें देनेका भाव कि यह सबके खाने लायक है, दूसरे बारात अभी आयी है, उसके जलपानके लिये ये सब दिये। आयी हुई बारातको मिर्चवान दिया जाता है। ये सब पदार्थ मिर्चवानकी जगहपर दिये गये। (घ) *'भाँति भाँति'* इति। पक्वान्न भी भाँति-भाँतिके हैं और भाजन भी अनेक प्रकारके कहे गये, सब पक्वान्नसे भरे हैं—यह कहकर जनाया कि जो पक्वान्न जिस पात्रमें भरने योग्य है वह उसमें भरपूर रखा है। भिन्न-भिन्न पक्वान्न भिन्न-भिन्न पात्रोंमें भरे हैं, एक पात्रमें एक ही भाँतिका है। *'भाँति-भाँति'* का भाव कि *'बिंजन बिबिध नाम को जाना'*, अर्थात् बहुत प्रकारके हैं उनके नाम कौन जानता है जो कहे। पुनः *'भाँति-भाँति'*, यथा—*'चारि भाँति भोजन बिधि गाई। एक एक बिधि बरनि न जाई॥ छरस रुचिर बिंजन बहु जाती। एक एक रस अगनित भाँती॥'* (१। ३२९) (ङ) *'नहिं जाहिं बखाने'* भाव कि एक भाँतिका तो वर्णन हो ही नहीं सकता तब अनेक भाँतिका वर्णन कैसे हो सके? (जेवनारके समय भी ऐसा ही कहा है।) [*'भरे सुधा सम''बखाने'* से जनाया कि मार्गमें जो सुखका सामान दिया गया, उससे ये कम या न्यून नहीं हैं। (प्र० सं०)]

टिप्पणी—२ (क) *'फल अनेक''* इति। पक्वान्न और फल भेजे, इससे सूचित किया कि पक्वान्न भी फलके समान पवित्र हैं। (फल सबके कामके हैं और विशेषकर फलाहारियोंके लिये। पक्वान्नमें भी फलाहारी सामान है। भोजनके अन्तमें फलका खाना सबके लिये विधि है। क्योंकि यह गुणकारी है।) *'बर बस्तु'* अर्थात् बहुमूल्यकी हैं, *'सुहाई'* अर्थात् बनावट सुन्दर है। *'हरषि पठाई'* का भाव कि ये पक्वान्न, फल और वस्तुएँ ऐसी उत्तम और श्रेष्ठ हैं कि राजा जनक इन्हें देखकर प्रसन्न हो गये (उन्होंने इन सबोंको चक्रवर्तीजीकी भेंटके योग्य समझा। देखकर ठीक अपने मनोनुकूल जानकर प्रसन्न होकर उन्हें भेजा। यहाँ फलको प्रथम कहा, क्योंकि फल माङ्गलिक वस्तु है)। (ख)—*'भूषन बसन''* इति। भूषण, वस्त्र और महामणि पहननेके लिये हैं; पक्षी और मृग देखनेके लिये और घोड़े, हाथी और रथ आदि सवारीके लिये हैं। *'नाना'* पदका सम्बन्ध भूषण, वसन और महामणि (तथा आगेके खग, मृग, हय, गय, जान) सबसे है। *'बहु बिधि'* का सम्बन्ध भी सबसे है। [सब बहुत प्रकारके बहुत जातिके हैं और सभी अनेक हैं।—(ख)—जैसे मयूर, शुक, सारिका, कोकिल, चकोर, कबूतर, रयमुनिया, लाल, श्यामा, नीलकण्ठ आदि। मृग अर्थात् हिरन (अनेक जातिके। ३०३। ६ में देखिये), साबर, रोज, चिकारा, चीतर, गूँड़, गैंडा, अरना, स्याही, झाँखा, बारहसिंघा आदि। *'जान'* —रथ, तामझाम, पालकी, नालकी आदि किसीके नाम न देना भी कविकी चतुरता है। जितने भी प्रकार हो गये या हैं वे सब लिये जा सकते हैं।]

टिप्पणी—३ *'मंगल सगुन सुगंध सुहाए''* इति। (क) *'मंगल सगुन'* जैसे कि सवत्सा गऊ, जीवित मछली, घृत और दही इत्यादि। [सुन्दरियाँ दीपयुक्त भरे कलश, सोनेके थालोंमें मधुपर्क, दधि, दूर्वा, गोरोचन, लावा, पुष्प, तुलसीदल, अक्षत, हल्दीमें रँगा हुआ चावल इत्यादि लिये हुए शीशपर रखे हुए हैं इत्यादि। *'सुगंध'*—चन्दन, केसर, कस्तूरी, कपूर, अगर, धूप आदि बालिकाएँ लिये हुए हैं। (वै०)] (ख)—*'बहुत भाँति'* इति। सब वस्तुएँ बहुत-बहुत भाँतिकी हैं, इसीसे ग्रन्थकार सब जगह बहुत भाँति लिखते हैं, यथा—*'कनक कलस''भाजन ललित अनेक प्रकारा।'* पक्वान्न भी *'भाँति भाँति नहिं जाहिं बखाने।'* *'फल अनेक बर बस्तु सुहाई।'* *'भूषन बसन महामनि नाना। खग मृग हय गय बहु बिधि जाना॥'* और मंगल आदि भी *'बहुत भाँति'* के हैं। (ग)—ऊपर भी कहा था कि *'हरषि भेंट हित भूप पठाई'* और यहाँ फिर कहते हैं कि *'बहुत भाँति महिपाल पठाए।'* बार-बार लिखकर जनाया कि राजाने सब भेंटकी सामग्री अपनी

आँखों देख-देखकर, अपनी पसन्दसे भेजी है। [मंगल शकुन जान-बूझकर पहलेसे ही आगे भेजे जानेकी रीतिका कारण अत्यन्त स्नेह है। अत्यन्त स्नेहमें अपशकुनका सन्देह हो जाना स्वाभाविक है। यथा—'*अधिक प्रीति मन भा संदेहा।*' इसीसे मंगल शकुन प्रथम भेजे जाते हैं कि बारातका मंगल हो। आजकलके सुशिक्षित कहलानेवाले समाजमें यह रीति बहिष्कृत होती जाती है। (प० प० प्र०)]

दधि चिउरा उपहार अपारा। भरि भरि काँवरि चले कहारा॥ ६॥
अगवानन्ह जब दीखि बराता। उर आनंदु पुलक भर गाता॥ ७॥
देखि बनाव सहित अगवाना। मुदित बरातिन्ह* हने निसाना॥ ८॥

दो०—हरषि परसपर मिलन हित कछुक चले बगमेल।
जनु आनंद समुद्र दुइ मिलत बिहाइ सुबेल॥ ३०५॥

शब्दार्थ—**चिउरा** (चिउड़ा, च्यूड़ा)=एक प्रकारका चर्वण जो हरे भिगोये या उबाले हुए धानको कूटनेसे बनता है। **उपहार**=भेंट, नजर। यथा—'*धरि धरि सुंदर बेष चले हरषित हिये। चँवर चौर उपहार हार मनिगन लिये॥*' (पार्वतीमङ्गल ५३), '*दीह दीह दिग्गजन के केशव मनहुँ कुमार। दीन्हे राजा दशरथहि दिगपालन उपहार।*' (केशव) '*आए गोप भेंट लै लै के भूषण बसन सोहाए। नाना बिधि उपहार दूध दधि आगे धरि सिर नाए।*' (सूर) श० सा० में भी यही अर्थ है।=भोजनके पश्चात् जो आहार किया जाय (पं०, वै०, रा० प्र०)। **सुबेल**=सुन्दर बेला। वेला=मर्यादा, समुद्रका किनारा। (श० सा०)

अर्थ—दही, च्यूड़ा तथा और भी भेंटकी अगणित वस्तुएँ बहँगियोंमें भर-भरकर कहार ले चले॥ ६॥ अगवानियोंने जब बारात देखी तब उनके हृदय आनन्दसे भर गये और शरीरमें पुलकावली छा गयी॥ ७॥ (इधर) अगवानोंको बना-ठना, सजा-धजा देख बारातियोंने भी प्रसन्न होकर नगाड़े पीटे (बजाये)॥ ८॥ प्रसन्न होकर एक-दूसरेसे मिलनेके लिये दोनों ओरसे कुछ-कुछ लोग (अर्थात् जनाती और बाराती दोनों) बागोंको ढीली किये और मिलाये हुए दौड़कर चले, मानो दो आनन्दसमुद्र मर्यादा छोड़कर मिल रहे हैं॥ ३०५॥

टिप्पणी—१ (क) '*दधि चिउरा उपहार*...' इति। दही-चिउरा भेंटमें भेजना मिथिला देशकी रीति है। उपहारका अर्थ भेंट है, ग्रन्थकार प्रथम ही लिख आये हैं कि '*हरषि भेंट हित भूप पठाई।*' भेंटकी सब वस्तुओंको गिनाकर तब अन्तमें फिर लिखा '*उपहार अपारा*' तात्पर्य कि जितनी वस्तुएँ हम गिना आये, इतनी ही न जानिये, वे अपार हैं। (ख) '*उर आनंद पुलक भर गाता*' अर्थात् बाहर और भीतर आनन्दसे परिपूर्ण हो गये। तात्पर्य यह कि उन्होंने देखा कि बारात बड़ी ही सुन्दर है। देवता भी इसे देखकर प्रसन्न हुए, ऐसी सुन्दर है, यथा—'*हरषे बिबुध बिलोकि बराता*' (३०२। ४)। (ग) '*अगवानन्ह जब दीखि बराता।*...' इति। अगवानी लोग अगवानी लेकर गये हैं, इसीसे प्रथम इन्हींका देखना लिखा और पीछे बरातियोंका लिखा—'*देखि बनाव सहित*...।' इससे जनाया कि बारात दूर थी, अब निकट आनेपर दोनोंने परस्पर एक-दूसरेको देखा। बारात देखकर अगवानोंको आनन्द हुआ और अगवानोंको देखकर '*मुदित बरातिन्ह*...' अर्थात् बाराती आनन्दित हुए। इससे जनाया कि बारातियोंकी जैसी शोभा है, वैसी ही शोभा अगवानोंकी है। ('*हने निसाना*' यह आनन्दके कारण हुआ) मिथिलावासी पहले ही बजा चुके, अब बाराती बजाते हैं। ['*मुदित*' और '*हरषि*' की पुनरुक्तिसे जनाया कि दोनों परस्पर मिलनेको आतुर थे, इससे दोनोंको अपार आनन्द हुआ। (प० प० प्र०)]

टिप्पणी—२ '*कछुक चले बगमेल।*...' इति। दोनों ओरकी सेना समुद्र है। दोनोंमें आनन्द भर रहा है, इसीसे दोनोंको आनन्द-समुद्र कहा। परस्पर मिलन हित कहकर जनाया कि दोनों ओरके सवार दौड़े, दोनों सेनाएँ खड़ी हैं, यही दो समुद्र हैं। बीचमें मैदान है, यही सुबेल है। दोनों ओरके सवारोंका मिलना यही मानो

* बराती—१७२१, १७६२, छ०। बरातिन्ह—१६६१, १७०४, को० रा०।

समुद्रोंका मिलान है। '*कछुक*' कहनेका भाव कि अगवानीमें मिलनेकी यह रीति है कि सवार इधरके और कुछ उधरके दौड़कर बीचमें मिलते हैं, दोनों ओरकी सेना खड़ी रहती है। समुद्रमें तरंग उठती है। दोनों ओरके सवारोंका दौड़ना तरंगका उठना है। '*बगमेल*' दौड़का नाम है। यथा—'*आइ गये बगमेल धरहु धरहु धावहु सुभट।*' (३। १८), '*बिरह बिकल बलहीन मोहि जानेसि निपट अकेल। सहित बिपिन मधुकर खग मदन कीन्ह बगमेल।*' (३। ३७), तथा यहाँ '*मिलन हित कछुक चले बगमेल।*' ['जनु' इससे कहा कि समुद्र तो ज्यों-का-त्यों खड़ा है, केवल तरंगें मिल रही हैं। यहाँ दोनों समाजरूप समुद्र आनन्दसे भरे हैं। '*सुबेल बिहाई*' का भाव यह कि '*कछुक चले बगमेल*' रूप लहरसे जो सफररूप सुबेल हुआ सो दोनों तरफसे दौड़ते-दौड़ते मिल गया। (प्र० सं०)]

'*कछुक चले बगमेल।*...'

'*बगमेल*' के अर्थ अनेक प्रकारसे टीकाकारोंने किये हैं। रामायणीजी और दीनजी इस अर्थसे सहमत हैं जो ऊपर दिया गया है। शब्दसागरमें '*बगमेल*' का अर्थ यों लिखा है—संज्ञा पु० (हिं० बाग=मेल)—(१) दूसरेके घोड़ेके साथ बाग मिलाकर चलना, पाँति बाँधकर चलना, बराबर-बराबर चलना। उ०—'*जो गज मेलि हौद सँग लागे। तो बगमेल करहु सँग लागे।*'—जायसी। (२) बराबरी, समानता, तुलना। पुनः '*बगमेल*'=क्रि० वि० (क्रिया-विशेषण) पंक्तिबद्ध, बाग मिलाये हुए, साथ-साथ। उ०—(क) '*आइ गये बगमेल धरहु धरहु धावहु सुभट। जथा बिलोकि अकेल बालरबिहि घेरत दनुज।*'—तुलसी। (ख) '*हरषि परसपर मिलन हित कछुक चले बगमेल*...।'

पं० महावीरप्रसाद मालवीय लिखते हैं कि 'बगमेल' शब्दका अर्थ किसीने घोड़ोंकी बाग ढीली करके सवारोंका चलना कहा है। किसीने धावा मारना और किसीने पंक्ति जोड़कर चलनेका अर्थ किया है, परंतु ये सब कल्पित अर्थ हैं। अरण्यकाण्डमें '*आइ गए बगमेल*' और '*मदन कीन्ह बगमेल*' यह शब्द दो स्थानोंमें आया है। इसका अर्थ है—'नगचीनगचा, बिलकुल समीपमें आ जाना, अत्यन्त निकट पहुँचना' विज्ञजन विचार लें, यहाँ धावा मारने या बाग मिलानेसे तात्पर्य नहीं है।

प्रोफे० दीनजी—बारात जब जनवासेसे चलकर कन्याके द्वारके पास पहुँचती है तब इधरसे अगवानीके लिये लोग चलते हैं। दोनों जब एक-दूसरेके समीप पहुँचते हैं तब कुछ रुककर दोनों ओरसे लोग कुछ-कुछ आगे बढ़ते हैं और अगवानी समधीके पास पहुँचकर उनका सत्कार करके उनको साथ ले चलते हैं—यह रीति है। वैसी ही इस समय भी समझना चाहिये। जब जनकपुरके पास बारात पहुँची तब अगवानी बारात लानेको गये हैं। कुछ ये चले, कुछ वे चले, अतः यहाँ '*बगमेल*' का दूसरा अर्थ जो कोषमें दिया है वही गृहीत है अर्थात् बाग मिलाकर चाल मिलाये हुए धीरे-धीरे दोनों चले, इस तरह आकर मिल गये, जैसे दो समुद्र मिलें। '*बिहाइ सुबेल*' का भाव यह है कि समुद्रकी मर्यादा बँधी है, उससे अधिक वह कभी नहीं बढ़ता, और जनाती-बरातीके लिये तो कोई हद मुकर्रर नहीं कि वे इसके आगे न बढ़ें। अतः समुद्रोंका मर्यादा छोड़कर बढ़ना कहा, क्योंकि बिना इसके इनका मिलाप हो ही नहीं सकता।

पाँड़ेजी—'*बगमेल*' अर्थात् घोड़ेकी बाग ढीलीकर छोड़ा। यहाँ दोनों ओरके दल रथों और हाथियोंके समूह आनन्दके समुद्रके समान हैं। उनमेंसे जो निकल-निकलकर मिलते हैं सोई लहरें हैं और वह लहरें ऐसी मिलती हैं मानो समुद्र अपनी सीमाको छोड़कर मिलते हैं।'

बाबू श्यामसुन्दरदासने पाँड़ेजीका भाव अपने शब्दोंमें दिया है और फिर दूसरा भाव यह लिखा है कि—'अथवा दो समुद्र सुबेल अर्थात् मर्यादाके पर्वतोंको तोड़कर मिलते हैं। परस्परका संकोच ही मर्यादाका पर्वत है।

गौड़जी—*बगमेल* =जिस प्रकार बगले मिलकर वा पाँती बनाकर चलते हैं। पाँती टेढ़ी-मेढ़ी भी हो जाती है, पर बिगड़ती नहीं। इसी तरह यहाँ भी आगेकी पंक्तियाँ किनारे-किनारेपर अधिक आगे बढ़कर पिछली पंक्तियोंको आगे बढ़नेका मौका देती हैं। अर्धचन्द्राकार पंक्ति बराबरसे मिलनेको आ जाती है।

यह '**कछुक**' के लिये ही संभव है। जुलूसमें पंक्ति जिस मर्यादासे चल रही थी, आनन्दके उमङ्गमें उस मर्यादाके पहाड़की, जो बीचमें था, दोनों दलरूपी समुद्रोंने जरा भी परवा न की।

बैजनाथजी—**बगमेल** =बाग मिलाकर अथवा वेगसे।

श्रीनंगे परमहंसजी—हर्षके मारे बाग छोड़कर दौड़ चले।

प० प० प्र०—हमें मानसके आधारपर ही मानसान्तर्गत शब्दोंका अर्थ करना चाहिये। '*बगमेल*' का अर्थ 'दौड़ते-दौड़ते अति त्वरासे' होगा। दोनों ओर शीघ्र मिलनेकी आतुरता थी, अतः उनका त्वरासे चलना स्वाभाविक ही है 'बेशिस्त' नहीं दौड़े, 'शिस्तबद्ध' पर त्वरासे चले।

बरषि सुमन सुर सुंदरि* गावहिं। मुदित देव दुंदुभी बजावहिं॥ १॥
बस्तु सकल राखी नृप आगें। बिनय कीन्हि तिन्ह अति अनुरागें॥ २॥
प्रेम समेत राय सबु लीन्हा। भइ बकसीस जाचकन्हि दीन्हा॥ ३॥
करि पूजा मान्यता बड़ाई। जनवासे कहुँ चले लवाई॥ ४॥
बसन बिचित्र पाँवड़े परहीं। देखि धनदु धन मदु परिहरहीं॥ ५॥

शब्दार्थ—**सुर सुंदरि**=देववधूटियाँ, अप्सराएँ। **बकसीस**=यह फारसी बख़शिश शब्द है, दान—इनाम जो खुशीमें दिया जाता है। **मान्यता**=आदर, सम्मान। **पाँवड़ा**=वह वस्त्र जो आदरके लिये किसीके मार्गमें बिछाया जाता है। **धनद**=कुबेर।

अर्थ—देवाङ्गनाएँ फूल बरसा-बरसाकर गा रही हैं। देवता आनन्दित हो नगाड़े बजा रहे हैं॥ १॥ (अगवानोंने सब वस्तुएँ श्रीदशरथमहाराजके आगे रखीं (फिर) उन्होंने अत्यन्त अनुरागसे विनती की॥ २॥ महाराजने प्रेमसहित सब ले लीं (फिर) बख़शिश होने लगी और वे सब याचकोंको दे दी गयीं॥ ३॥ पूजा, आदर-सत्कार और स्तुति करके (अगवान लोग बारातको) जनवासेमें लिवा ले चले॥ ४॥ रङ्ग-बिरङ्गके विलक्षण-विलक्षण (वस्त्र) पाँवड़े पड़ते जाते हैं जिन्हें देखकर कुबेरजी धनका अभिमान छोड़ देते हैं॥ ५॥

टिप्पणी—१ '*बरषि सुमन सुर सुंदरि*....' इति। (क) सुरसुन्दरियोंका गाना और देवताओंका नगाड़ा बजना एक पंक्तिमें कहकर जनाया कि देवाङ्गनाओंके गानके मेलमें देवता नगाड़ियोंको मधुर-मधुर बजा रहे हैं। (ख) कहीं देवता दुंदुभिमात्र बजाते हैं और देवाङ्गनाएँ फूल बरसाकर गाती हैं जैसे यहाँ तथा '*हरषि सुरन्ह दुंदुभी बजाई। बरसि प्रसून अपछरा गाई॥*' में, कहीं देवता आगे होते हैं जैसे '*हरषि सुरन्ह*....' में, और कहीं देवाङ्गनाएँ आगे होती हैं, जैसे यहाँ। इससे जनाया कि दोनोंका हर्ष समान है। (ग) '*सुर सुंदरि गावहिं*' कहनेका भाव कि अगवानीमें स्त्रियोंके आनेकी चाल-रीति-रसम नहीं है, इसीसे यहाँ मनुष्योंकी स्त्रियाँ नहीं हैं, देववधूटियाँ हैं और वह भी आकाशमें। श्रीअयोध्याजीमें बारातके प्रयाणसमय देवताओं और मनुष्यों दोनोंकी स्त्रियोंका गाना कहा गया था, क्योंकि बारातके प्रस्थानके समय वैसी रीति है, यथा—'*सुरनरनारि सुमंगल गाई।*' (३०२। ६) देखिये। (घ) बारातियोंका आगमन सुन अगवानोंने और अगवानोंको देखकर बारातियोंने नगाड़े बजाये—(३०५। ८) देखिये। दोनोंको देखकर देवताओंने बजाये।

टिप्पणी—२ '*बस्तु सकल राखी नृप आगें।*....' इति। (क) नृपके आगे धरनेका भाव कि ये सब वस्तुएँ उन्हींके भेंटके लिये आयी हैं, यथा—'*हरषि भेंट हित भूप पठाई*'। [बारातमें समधी ही मुख्य है, जो कुछ लड़कीवाला भेजता है, वह उसीके आगे रखा जाता है। भेंट अगवानीमें समधीहीको दी जाती है]। (ख) '*बिनय कीन्हि*'—देकर विनती करना उचित है, यथा—'*दाइज दियो बहु भाँति पुनि कर जोरि हिमभूधर कह्यो। का देउँ पूरन काम संकर चरन पंकज गहि रह्यो*''॥' (१। १०१) विनती की कि यह जनक महाराजने आपको भेंट भेजी है और विनय किया है कि हम आपको कुछ भेंट देने योग्य नहीं

* सुंदरी—१६६१। 'सु' पर अर्धचन्द्र बिंदु पढ़नेसे यह पाठ भी बैठ जाता है।

हैं। *'अति अनुरागें'* अर्थात् बड़े प्रेमसे विनती की कि आप कृपा करके यह सब भेंट स्वीकार करके हमें कृतार्थ करें। बड़े लोग भाव चाहते हैं, इसीसे वस्तु देकर बड़े प्रेमसे विनती की। यथा—*'""करिअ छोह लखि नेहु। हमहिं कृतारथ करन लगि फल तृन अंकुर लेहु॥'* (२। २५०)

टिप्पणी—३ *'प्रेम समेत राय सबु लीन्हा।""'* इति। (क) भाव कि राजा चक्रवर्ती हैं, वे किसीके प्रतिग्राही नहीं बनते, महामणि आदि बहुमूल्यकी वस्तु भेंटमें ले सकते हैं, चिउड़ा आदि नहीं ले सकते थे। परंतु इन्होंने अत्यन्त अनुरागसे विनती की, इसीसे उन्होंने प्रेमसमेत सब वस्तुएँ ले लीं। *'प्रेम समेत'* लेकर श्रीजनकजीका मान रखा। (ख) *'भइ बकसीस'* —बखशिश नौकरोंको दी जाती है। बखशिश प्रथम कहकर जनाया कि जो वस्तुएँ बखशिशके योग्य थीं वह सेवकोंको पहले दी गयीं, फिर जो याचकोंके योग्य थीं वह याचकोंको दी गयीं। याचकोंको देना कहकर जनाया कि दोनों ओरके लोगोंके साथ याचक थे। [दोनों राजा उदारतामें समान हैं। पर जब श्रीरामजी राज्यपर बैठे तब तो *'जाचक सकल अजाचक कीन्हें'* यह है रामराज्यकी विशेषता। (प० प० प्र०)]

नोट—१ अ० दी० में *'बस्तु सकल राखी""जाचकन्हि दीन्हा'* के भावपर यह दोहा है—*'दानी मानी मुकुटमणि मणि आदिक जब लीन्ह। निर्मम नृप कहि गर्व उत उर लखि तेहि तिन्ह कीन्ह॥'* (९७) आशय यह है कि अगवानोंने विनय करते हुए कहा था कि हमारे महाराज मिथिलेश तो सदासे निर्मम हैं, परंतु यह सब सम्पत्ति उन्होंने आपके लिये सञ्चित की थी, अतः आप इसे स्वीकार करें। चक्रवर्तीजीने सोचा कि मेरे ग्रहण करनेमें मेरी ममता ज्ञात होती है और अगवानोंको अपने राजाके निर्ममत्वका गर्व है, साथ ही यदि मैं भेंटको ग्रहण नहीं करता तो जनकजीका अपमान होगा। अतएव उन्होंने उसे ग्रहण करके श्रीरामजीपर निछावर कर-करके याचकोंको दे डाला। (अ० दी० च०)

नोट—२ *'करि पूजा मान्यता""'*—पूजा-मान्यता बड़ाईमें भेद यह है कि पूजामें कुछ चीज भोग इत्यादि पूजक देवताको निवेदन करता है। मान्यता अर्थात् अपनेसे उसको ऊँचे दर्जेका समझना और बड़ाई, प्रशंसा, स्तुति।

टिप्पणी—४ *'बसन बिचित्र पाँवड़े परहीं""'* इति। (क) *'बिचित्र'* कहनेका भाव कि जितने कपड़े बिछाते हैं, उतने ही रंगके वे हैं, उतने ही प्रकारका उनका बनाव है और उतने ही प्रकारकी मणियाँ उनमें लगी हैं (अर्थात् सब तरह-तरहके हैं, एक-से-एक बढ़िया है, इत्यादि)। (ख)—*'पाँवड़े परहीं'* बहुवचन है। भाव यह कि लोग बहुत हैं, इसीसे बहुत पाँवड़े पड़ते हैं। जहाँपर अगवानीवाले बारातसे मिले, वहींपर सब सवारीसे उतर पड़े, अतएव वहींसे पाँवड़े पड़ने लगे। *'परहीं'* से यह भी जनाया कि जो पाँवड़े बिछाये जाते हैं, वे वैसे ही पड़े रहते हैं, उठाये नहीं जाते, ऐसा नहीं है कि वही वस्त्र उठाकर फिर आगे बिछाया जाय। [पाँवड़े पड़े रहे तो लिया किसने? *'नाऊ बारी भाटनट रामनिछावरि लेहिं'*, इन्होंने लिया। (प० प० प्र०) (जो इसके अधिकारी उस समय होंगे उन्होंने लिया होगा। कविने सब काल और देशके लिये जगह छोड़ दी है। अपने-अपने देशकी रीत्यनुसार लोग लगा लें)] (ग) *'देखि'* कहकर जनाया कि देवताओंके साथ कुबेरजी भी हैं, इसीसे वे देख रहे हैं। (घ) *'धनदु धन मदु परिहरहीं'* इति। कुबेरजी धनी हैं (देवताओंके कोषाध्यक्ष हैं, धन-सम्पत्तिके अधिष्ठातृ देवता हैं) इसीसे उनका धन-मद त्यागना कहा। पुनः, धनीको धनका मद रहता है, चाहे वह देवता ही क्यों न हो। यथा—*'श्री मद बक्र न कीन्ह केहि""।'* धनका मद छोड़ देते हैं, यह कहकर जनाया कि पाँवड़ेवाले वस्त्र बहुत मूल्यके हैं, उनका मूल्य देखकर कुबेरजीका मद छूट जाता है। तात्पर्य कि इन वस्त्रोंके बराबर (जितनी इनकी लागत है उतना भी) धन उनके पास नहीं है। (ङ) *'धनद'*=धन देनेवाला, जो सबको धन देता है। यह शब्द देकर जनाया कि कुबेरजी धनी भी हैं और दाता भी। पाँवड़ोंको देखकर दोनों बातोंका मद वे छोड़ देते हैं। मूल्य देखकर धनका और जनक महाराजका दातव्य देखकर अपने दातव्यका मद छोड़ देते हैं, वे विचारने लगते हैं कि इतने अमूल्य वस्त्र तो इन्होंने पैरों तले डाल दिये, आगे अब न जाने और कितना धन इनके पास है, अभी तो दहेज आदि शेष ही है। (पाँवड़े उपमेयकी अपेक्षा

कुबेर-धन उपमानकी हीनता प्रदर्शित करना 'व्यतिरेक अलङ्कार' है। इसी तरह श्रीदशरथजीके धनके सम्बन्धमें कुबेरका लज्जित होना कहा गया है। यथा—'*दसरथ धन सुनि धनद लजाई।*' (२। ३२४। ६) भेद केवल यह है कि यहाँ पाँवड़ोंको देखकर लजा रहे हैं और वहाँ धनको सुनकर ही लज्जित हो गये, देखनेपर न जाने क्या दशा हो जाती।)

अति सुंदर दीन्हेउ जनवासा। जहँ सब कहुँ सब भाँति सुपासा॥ ६॥
जानीं सिय बरात पुर आई। कछु निज महिमा प्रगटि जनाई॥ ७॥
हृदय सुमिरि सब सिद्धि बोलाई। भूप पहुनई करन पठाई॥ ८॥
दो०—सिधि सब सिय आयसु अकनि गईं जहाँ जनवास।
लिये संपदा सकल सुख सुरपुर भोग बिलास॥ ३०६॥

शब्दार्थ—**जनवास**=वह स्थान जहाँ कन्यापक्षकी ओरसे बारातियोंके ठहरनेका प्रबन्ध होता है। सुपास= सुख, सुभीता, सुविधा, आराम। **पहुनई** (पहुनाई)=आये हुए व्यक्तियोंको भोजन-पान आदिसे सत्कार; मेहमानदारी; आतिथ्यसत्कार।

अर्थ—(अगवानोंने बारातको) अत्यन्त सुन्दर जनवासा दिया जहाँ सबको सब प्रकारका सुपास था॥ ६॥ बारात नगरमें आ गयी, यह जानकर श्रीसीताजीने अपनी कुछ महिमा प्रकट दिखायी॥ ७॥ हृदयमें स्मरणकर सब सिद्धियोंको बुलाकर (श्रीसीताजीने उनको) राजा (दशरथ) की पहुनायी करनेके लिये भेजा॥ ८॥ श्रीसीताजीकी आज्ञा सुनकर सब सिद्धियाँ सब सम्पदा, सुख और देवलोकका भोग-विलास लिये हुए वहाँ गयीं जहाँ जनवासा था॥ ३०६॥

टिप्पणी—१ (क) '*अति सुंदर*' कहकर जनाया कि पूर्व जो बीच-बीचमें पड़ावके स्थान थे वे सुन्दर थे, यथा—'*बीच बीच बर बासु सुहाए। सुरपुर सरिस संपदा छाए॥*' (३०४। ६) और अब जनकपुर पहुँचनेपर जो स्थान दिया गया वह 'अति' सुन्दर है। '*सब भाँति सुपासा*'—क्योंकि सिद्धियोंने सब सुपासका सामान नगरमें बारातके आते ही पहलेसे ही कर रखा है। जैसा आगे स्पष्ट है—'*सिधि सब*…।' सब सुपासका कारण आगे लिखते हैं। (ख) '*जानी सिय बरात पुर आई।*…'—सिद्धियोंको श्रीसीताजीने कब भेजा, यह यहाँ बताते हैं। बारात पुरमें आयी तभी भेजा, जनवासा उसके पीछे दिया गया। (ग) '*कछु निज महिमा*' इति। भाव कि उनकी महिमा अपार है, यथा—'*तव प्रभाव जग बिदित न केहीं॥ लोकप होहिं बिलोकत तोरें। तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरें॥*' (२। १०३। ५-६) अपार महिमामेंसे किञ्चित् ही प्रकट कर दिखायी। तात्पर्य कि बारातियोंकी पहुनायी करना इनके लिये कुछ नहीं है। (कोई बड़ी बात नहीं) सिद्धियोंका प्रकट करना यह 'कुछ' ही महिमा है।

नोट—१ श्रीभरद्वाजजीने श्रीभरतजीकी पहुनायी की, उससे मिलान कीजिये। भरतजी ऐसे अतिथि पाहुनके आनेसे मुनिको बड़ा सोच हुआ, यथा—'*मुनिहि सोच पाहुन बड़ नेवता। तसि पूजा चाहिअ जस देवता॥*' तब '*सुनि रिधि सिधि अनिमादिक आईं। आयसु होइ सो करहिं गोसाईं*…' (२। २१३। ७-८) और यहाँ श्रीसीताजीको किञ्चित चिन्ता न हुई, क्योंकि ये ईश्वरी हैं, सब सिद्धियाँ हाथ जोड़े आपका रुख जोहती रहती हैं। वहाँ मुनिको चिन्तित देख उनकी चिन्ता एवं आवाहन सुनकर सिद्धियाँ आयीं और यहाँ केवल स्मरणमात्रसे। श्रीसीताजी स्वामिनी हैं, सिद्धियाँ उनकी दासी हैं। वहाँ '*सुनि*' शब्दसे वचन कहकर बुलाना पाया जाता है और यहाँ वचनसे बुलाना नहीं है किन्तु स्मरण है। श्रीप्रज्ञानानन्द स्वामीका मत है कि '*सुनि*' शब्दसे भरद्वाजजीकी मानसिक चिन्ता सुनकर आना जनाया है। श्रीजानकीजीके बुलानेपर आयीं और मुनिने तो स्मरण भी न किया; केवल चिन्तित हुए इतनेसे ही आयीं यह विशेषता है; क्योंकि '*राम तें अधिक राम कर दासा।*' पाँड़ेजीका मत है कि महिमा किसी औरने तो जानी नहीं, केवल श्रीरामजीने

जानी। इसलिये *'प्रगटि जनाया'* से 'श्रीरघुनाथजीको प्रगटि जनाया' यह अर्थ समझना चाहिये। [महिमा तो सबको देख पड़ी, पर यह किसीको न ज्ञात हुआ कि यह महिमा, यह प्रभाव श्रीसीताजीका है, यथा—*'बिभव भेद कछु कोउ न जाना। सकल जनक कर करहिं बखाना॥'* (३०७। २) यही मुख्य कारण *'कछु'* महिमा प्रकट करनेका है। नहीं तो सब इनका ऐश्वर्य जान पाते। कन्या अपने पिताकी बड़ाई सदा चाहती है, इसीसे कुछ ही महिमा दिखायी जिसमें लोग इसे जनक महाराजकी ही महिमा समझें और ऐसा ही हुआ भी]

प्रोफे० दीनजी कहते हैं कि *'प्रगटि जनाई'* का भाव यह है कि ऐसी वस्तुएँ पैदा कर दीं कि जो त्रुटि थी वह रहने न पावे।

टिप्पणी—२ (क) *'भूप पहुनई करन'*—यहाँ केवल राजाकी पहुनायी करना कहा, क्योंकि राजाकी पहुनायीसे सबकी पहुनायी है। (समधी ही प्रधान हैं। उनकी पहुनायी कहनेसे उनके सारी बारातकी पहुनायी सूचित कर दी) *'पठाईं'* अर्थात् जनवासमें भेजा। इसीसे आगे कहते हैं *'गईं जहाँ जनवास'*। वहाँ भेजनेका भाव यह है कि जबतक विवाह नहीं होता तबतक राजाकी पहुनायी घरके भीतर नहीं हो सकती (जबतक सम्बन्ध न हो जायगा तबतक चक्रवर्ती महाराज जनक महाराजके महलमें न जायेंगे, यह रीति है)।

टिप्पणी—३ *'सिधि सब सिय आयसु अकनि'''* इति। (क) श्रीसीताजीने *'सब'* सिद्धियोंको—*'हृदय सुमिरि सब सिद्धि बोलाईं'*, इसीसे यहाँ *'सिधि सब'* का सुनना कहा। (ख) *'अकनि'* का भाव कि श्रीसीताजीने हृदयमें स्मरण किया था, जब ये आयीं तब उनको प्रत्यक्ष आज्ञा दी, इसीसे *'आयसु अकनि'* कहा। (ग) *'लिये संपदा सकल सुख'* इति। देहलीदीपकन्यायसे *'सकल'* दोनों ओर है। *'सकल संपदा'* और *'सकल सुख'*। पुनः भाव कि जैसे भजनका सुख, वैराग्यका सुख और ज्ञानका सुख वैसे ही यहाँ 'सम्पदाका सुख' कहा। सिद्धियाँ सम्पदाका सुख लेकर गयीं। *'सकल संपदा'* से नवों निधियाँ सूचित कीं। सकल सुखका वर्णन भरद्वाज-आश्रममें किया गया है, यथा—*'सुख समाजु नहिं जाइ बखानी। देखत बिरति बिसारहिं ज्ञानी॥ आसन सयन सुबसन बिताना। बन बाटिका बिहग मृग नाना॥ सुरभि फूल फल अमिअ समाना। बिमल जलासय बिबिध बिधाना॥ असन पान सुचि अमिअ अमीसे। लखि अभिलाषु सुरेस सचीके॥ रितु बसंत बह त्रिबिध बयारी।'* (२। २१५। १२—७) (घ) *'सुरपुर भोग बिलास'* इति। *'सुरपुर'* देहली-दीपक है। सुख सुरपुरके और *'भोग बिलास'* भी स्वर्गके। भोग, यथा—*'स्रक चंदन बनितादिक भोगा।'* (२। २१५) भोग अष्ट प्रकारके कहे हैं—माला, सुगन्ध, वनिता, वस्त्र, गीत-वाद्य, ताम्बूल, भोजन, शय्या और आभूषण। यथा—'**स्रग्गन्धो वनिता वस्त्रं गीतताम्बूलभोजनम्। भूषणं वाहनं चेति भोगस्त्वष्टविधः स्मृताः॥**'—(८४। ७-८) भाग २ (क) देखिये। (भरद्वाजजीकी पहुनायीमें सुरतरु, सुरधेनु भी हैं। यहाँ ये नहीं हैं क्योंकि इनके होनेसे मर्म खुल जाता कि यह जनक-महिमा नहीं है। तथापि सुरतरु और सुरधेनुका फल सबको प्राप्त है, जो चित्तमें आता है वह तुरंत परिचारक सामनेके लिये हुए प्रकट हो जाते हैं। ☞मार्गकी पहुनायीमें *'सुरपुर सरिस संपदा छाए।'* (३०४। ६) थे और यहाँ *'सुरपुर भोग बिलास'* यह विशेषता है)।

निज निज बास बिलोकि बराती। सुर सुख सकल सुलभ सब भाँती॥ १॥
बिभव भेद कछु कोउ न जाना। सकल जनक कर करहिं बखाना॥ २॥
सिय महिमा रघुनायक जानी। हरषे हृदय हेतु पहिचानी॥ ३॥

अर्थ—बारातियोंने अपने-अपने ठहरनेके स्थानोंको देखकर (कि) सब देवताओंका सुख सब प्रकार वहाँ प्राप्त है॥ १॥ (इस) ऐश्वर्यका कुछ भी भेद किसीने न जाना, सब राजा जनककी बड़ाई कर रहे हैं॥ २॥ श्रीसीताजीकी महिमा है, यह जानकर और उनके हृदयका प्रेम पहचानकर श्रीरघुनाथजी प्रसन्न हुए॥ ३॥

टिप्पणी—१ (क) *'निज निज बास बिलोकि'* से जनाया कि समस्त बारातियोंको (उनके आश्रम पूजा, सेवा, कार्य इत्यादिके योग्य तथा उनके सेवक वाहनादिके अनुकूल इत्यादि सब प्रकारका सुपास

जहाँ है ऐसे) पृथक्-पृथक् वास दिये गये। तात्पर्य कि संकीर्ण वास (स्थान) नहीं है। (सबको पर्याप्त जगह मिली ऐसा नहीं कि किसीको तंगी वा कोताही हो।) (ख) *'सुरसुख सकल सुलभ'*—भाव कि सिद्धियाँ सब सुरपुरके भोग लिये हैं, जैसा दोहेमें कह आये, इसीसे सबको देवसुख प्राप्त है। *'सुलभ'* का भाव कि जो सब प्रकार दुर्लभ है वही यहाँ सबको सब प्रकार सुलभ हो गया। अर्थात् सेवक सब पदार्थ लिये खड़े हैं। यथा—*'दासी दास साज सब लीन्हे। जोगवत रहहिं मनहिं मनु दीन्हे॥'* (२। २१४। ६) (भरद्वाजाश्रममें) (ग) श्रीजनकजीने जो बीच-बीचमें बारातके टिकानेके स्थान बनाये थे उनमें *'सुरपुर सरिस संपदा छाए'* होना कहा। जो भेंट अगवानोंके द्वारा भेजी गयी उसमें भी *'भरे सुधा सम सब पकवाने'* कहा और आगे जेवनारके समय घरमें जो बारातियोंको भोजन दिया गया उसे भी *'सुधा सरिस'* कहा गया है। यथा—*'भाँति अनेक परे पकवाने। सुधा सरिस नहिं जाहिं बखाने॥'* (३२९। २) और यहाँ *'सुर सुख सकल'* कहते हैं, 'सुरपुरके पदार्थोंके सरिस' ऐसा नहीं कहते। अर्थात् *'सरिस'* अथवा उसका पर्यायी *'सम'* आदि कोई वाचक-पद नहीं दिया गया। भेदका तात्पर्य यह है कि बीचके पड़ावोंका, अगवानोंद्वारा भेंटमें भेजा हुआ और घरका भोजन मनुष्योंका दिया है, यह सब श्रीजानकीजीकी विभूति है और जनवासोंके समस्त पदार्थ सिद्धियोंके दिये हुए हैं, इससे वे साक्षात् सुरपुरके भोग-विलास हैं, यथा—*'लिये संपदा सकल सुख सुरपुर भोग बिलास॥'* (३०६) यह श्रीसीताजीकी 'कुछ' महिमा है।

टिप्पणी—२ (क) *'बिभव भेद कछु कोउ न जाना।'* इति। (किसीने क्यों न जाना? उत्तर यह है कि यह श्रीसीताजीकी महिमा है कि कोई न जान पाया क्योंकि यदि) कोई भेद जान जाता तो फिर जनकमहाराजकी बड़ाई न होती (और श्रीसीताजीका ऐश्वर्य खुल जाता। स्मरण रहे कि श्रीरामजीका ऐश्वर्य तो कहीं-कहीं खुल भी गया, पर इन्होंने अपना ऐश्वर्य कहीं खुलने नहीं दिया। आदिसे अन्ततक नरनाट्यका पूरा निर्वाह आपके चरितमें है)। *'कोउ न जाना'*—अर्थात् जनकजी, कामदार, सेवक आदि, समस्त जनाती और बराती कोई भी न जान पाये। जनकजीने समझा कि हमारे कामदार प्रबन्धकोंने जनवासेको सब पदार्थोंसे पूर्ण भर रखा है। कामदारने जाना कि दूसरे कामदारने यह सब प्रबन्ध किया, अगवानोंने भी यही जाना कि महाराजके कामदारोंने यह सब प्रबन्ध किया है और बारातियोंने जाना कि यह सब प्रबन्ध राजा जनकके सेवकोंने किया है। (ख) *'सकल जनक कर करहिं बखाना'*—यहाँ *'सकल'* से बारातियोंकी ही प्रशंसा करना सुसङ्गत होगा। बाराती यह बड़ाई करते हैं कि क्यों न हो, राजा जनक योगेश्वर ही ठहरे; वे क्या नहीं कर सकते? यह वैभव, यह सुख-भोग-विलास तो स्वर्गमें ही सुना करते थे, आज वही यहाँ प्रत्यक्ष देख रहे हैं, यह योगेश्वरजीकी महिमा है।

टिप्पणी—३ *'सिय महिमा रघुनायक जानी।…'* इति। (क) 'ऊपर' कहा था कि *'जानी सिय बरात पुर आई। कछु निज महिमा प्रगटि जनाई॥'* (उस महिमाको किसीने न जाना, इससे श्रीरामजीका भी न जानना समझा जाता, इसके निराकरणार्थ कहते हैं कि और किसीने न जाना। (एकमात्र) श्रीरामजीने जाना। इसी प्रकार श्रीचित्रकूटमें भी कहा है, यथा—*'सीय सासु प्रति बेष बनाई। सादर करइ सरिस सेवकाई॥ लखा न मरमु राम बिनु काहूँ। माया सब सिय माया माहूँ॥'* (२। २५२। ३-४) (ख) *'हरषे हृदय'* से सूचित हुआ कि श्रीजानकीजीने श्रीरामजीकी प्रसन्नताके लिये ही यह सेवा की, इसीसे यहाँ उनका प्रसन्न होना कहा। (ग) हेतु=प्रेम, स्नेह। यथा—*'हरषे हेतु हेरि हर ही को।'* (१९। ७) *'चले संग हिमवंत तब पहुँचावन अति हेतु।'* (१०२) *'भाइन्ह सहित उबटि अन्हवाए। छरस असन अति हेतु जेंवाए॥'* (३३६। ३) 'हेतु' का दूसरा अर्थ 'कारण' प्रसिद्ध ही है। मुं० रोशनलालजीने 'कारण' अर्थ किया है। वे लिखते हैं कि इस महिमाके दिखानेका हेतु यह है कि 'जैसे श्रीरघुनाथजीने धनुष तोड़कर जनकपुरवासियोंको सुख दिया, वैसे ही श्रीसीताजीने अपनी ऋद्धि-सिद्धियोंसे बारातियोंका आदर-सत्कार किया; यह देख श्रीरामजी प्रसन्न हुए। बैजनाथजीने भी यही लिखा है—'श्रीरघुनाथजीने विभव प्रकट करनेका कारण पहचाना कि जिस भाँति प्रभुने धनुर्भङ्गादिमें ऐश्वर्य प्रकटकर जनकपुरवासियोंको आनन्द दिया वैसे ही हम अपने ऐश्वर्यसे

अवधवासियोंका सत्कारकर उनको आनन्द दें। (ऐसा विचार मनमें रखकर उन्होंने महिमा दिखायी है) यह हेतु पहचानकर प्रभु हर्षित हुए। अथवा, हमारे कुलको प्रकाशित करनेकी यह 'सूचनिका' है, यह जानकर हर्ष हुआ। बाबा हरिहरप्रसादने 'प्रेम' अर्थ करते हुए लिखा है कि 'प्रीति पहचाना कि हमारी प्रसन्नताके लिये हमारे परिवारोंका सत्कार किया है।' प्रो० दीनजी लिखते हैं कि भाव यह है कि हमपर इतना प्रेम है कि जो जनक न कर सके वह इन्होंने कर दिखाया। हृदयमें हर्षित हुए जिसमें दूसरा कोई न जाने।

पितु आगमनु सुनत दोउ भाई। हृदय न अति आनंदु अमाई॥ ४॥
सकुचन्ह कहि न सकत गुरु पाहीं। पितु दरसन लालचु मनमाहीं॥ ५॥
बिश्वामित्र बिनय बड़ि देखी। उपजा उर संतोषु बिसेषी॥ ६॥
हरषि बंधु दोउ हृदय लगाए। पुलक अंग अंबक जल छाए॥ ७॥
चले जहाँ दसरथु जनवासे। मनहुँ सरोवर तकेउ पिआसे॥ ८॥
दो०—भूप बिलोके जबहि मुनि आवत सुतन्ह समेत।
उठेउ* हरषि सुखसिंधु महुँ चले थाह सी लेत॥ ३०७॥

अर्थ—पिताका आगमन (आनेका समाचार) सुनकर दोनों भाइयोंके हृदयमें अत्यन्त आनन्द नहीं अमाता॥ ४॥ संकोचवश वे गुरु (विश्वामित्रजी) से कह नहीं सकते। मनमें पिताके दर्शनोंकी बड़ी लालसा है॥ ५॥ दोनों भाइयोंकी बड़ी भारी नम्रता देखकर विश्वामित्रजीके हृदयमें बहुत सन्तोष उत्पन्न हुआ॥ ६॥ उन्होंने प्रसन्न होकर दोनों भाइयोंको हृदयसे लगाया। उनका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रोंमें जल भर आया॥ ७॥ वे जनवासेको चले जहाँ श्रीदशरथजी थे, मानो तालाब प्यासेको ताककर उसकी ओर चला॥ ८॥ ज्यों ही राजाने पुत्रोंसहित मुनिको आते हुए देखा, वे आनन्दित हो उठ खड़े हुए और सुख-समुद्रमें थाह-सी लेते हुए चले॥ ३०७॥

टिप्पणी—१ (क) *'अति आनंदु'* का भाव कि श्रीजानकीजीका स्नेह पहचानकर आनन्द हुआ था—*'हरषे हृदय हेतु पहिचानी'* और पिताका आगमन सुनकर आनन्दमें और आनन्द हुआ, इसीसे *'अति आनंदु'* कहा। *'हृदय न अति आनंदु अमाई'* का भाव कि हृदयमें आनन्द समाता है पर यहाँ *'अति आनंदु'* हुआ इससे अमाता नहीं। (ख) *'अमाना'* पद सूचित करता है कि भीतर ही कोई वस्तु भरी है जो इतनी बड़ी है कि उसमें अँटती नहीं, और 'समाना' पद यह जनाता है कि बाहरसे कोई वस्तु भीतर ठूँसी जाती है वह उसमें नहीं अँट सकती। इस भेदसे *'अमाई'* पाठ उत्तम जान पड़ता है। (ग) *'न अति आनंदु अमाई'* से जनाया कि वह अति आनन्द मुखके द्वारा निकलना चाहता है, अर्थात् पिताके दर्शनकी बात गुरुसे कहना चाहते हैं पर कह नहीं सकते। कहनेमें संकोच होता है कि कहीं गुरुजी यह न समझें कि इनको पिता हमसे अधिक प्रिय हैं। अथवा मनमें यह न आये कि अपने ब्याहकी बारात देखना चाहते हैं, इस लज्जासे संकोच है इसीसे पिताके दर्शनकी लालसा वा आज्ञा माँगनेकी बात मुखसे निकल नहीं सकी। यथा—*'गिरा अलिनि मुख पंकज रोकी। प्रगट न लाज निसा अवलोकी॥'* (१।२५९) यही भाव *'सकुचन्ह कहि न सकत'''* का है।

टिप्पणी—२ (क) *'बिश्वामित्र बिनय बड़ि देखी'*—भाव कि दोनों भाइयोंने अपना मनोरथ अपनी नम्रतासे सूचित कर दिया, मुखसे नहीं कहा, इसीसे *'देखी'* कहा। [*'देखी'* अर्थात् मुखकी चेष्टा और अत्यन्त नम्रताद्वारा लख लिया। *'बिनय'* अर्थात् विशेष नम्रता यह है कि पिताके पास भी जानेके लिये हमारी

* उठे—१७२१, १७६२, छ०। उठेउ—१६६१, १७०४, को० रा०।

आज्ञाकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। पुनः, विनय (=विशेष नीति) यह कि माता-पितासे हमको अधिक समझते हैं। (जहाँ भगवान्‌से भी अधिक गुरुको मानना यह भागवतधर्म-नीति है, वहाँ पिताको अधिक मानना अनीति ही होगी। प० प० प्र०) *'बड़ी बिनय'* है, अतः 'विशेष सन्तोष' हुआ अर्थात् धन्य है कि इतना संकोच रखते हैं)।] (ख)—*'हरषि बंधु दोउ हृदय लगाये।'''* इति। आनन्दसे पुलक होता है। यथा—*'उर आनंद पुलक भर गाता।'* (३०५। ७) और ये दोनों भाई तो आनन्दकी मूर्ति ही हैं (इतना ही नहीं, ये तो *'आनँद हू के आनँददाता'* हैं)। अतः जब मुनिने इन्हें हृदयमें लगाया (अर्थात् उस मूर्तिमान् आनन्दका स्पर्श हुआ) तब उनका शरीर पुलकित हो गया। इसी तरह नगर-दर्शनके समय इस आनन्दमूर्तिके अङ्गस्पर्शसे जनकपुरके बालकोंको पुलकावली हुई थी, यथा—*'सब सिसु येहि मिस प्रेम बस परसि मनोहर गात। तनु पुलकहिं अति हरषु हिय॥'''* (२२४) [हृदयसे लगानेके और भाव कि हृदयसे न जाइयेगा। (रा० प्र०) हृदयमें लगाना वात्सल्यभाव दरसाता है। (ग) *'अंबक जल छाए'*—प्रेमके कारण नेत्रोंमें आँसू भर आये कि रात-दिन इनका दर्शन होता था; वह अब और लोगोंमें बँट गया। (रा० प्र०)]

नोट—१ *'मनहु सरोवर तकेउ पिआसे'* इति। प्यासा कुएँके पास जाता है यह लोकोक्ति है और ऐसा होता भी है। श्रीदशरथजी और अवधवासी श्रीरामदर्शन-जलके प्यासे हैं; यथा—*'कबहिं देखिबे नयन भरि रामु लषनु दोउ बीर।'* (३००) श्रीरामलक्ष्मणजीसहित विश्वामित्रजी सरोवर हैं। इनका स्वयं सबको दर्शन देने जाना मानो सरोवरका प्यासेके पास जाना है। सरोवर प्यासेके पास कभी नहीं जाता, यह कविकी कल्पनामात्र 'अनुक्त-विषयावस्तूत्प्रेक्षा अलङ्कार' है। (वीरकवि) बाबा हरिहरप्रसादने इसका अर्थ यह भी किया है कि—'मानो प्यासेने तालाब देखा। पितु अङ्ग सरोवर, रूप-दर्शन-जल-प्यासे दोनों भाई, यथा—*'पितु दरसन लालच मन माहीं।'* पर इस अर्थमें वह चोखाई नहीं रह जाती (इस अर्थमें 'उक्तविषयावस्तूत्प्रेक्षा' होगी)। पण्डित रामचरण मिश्र कहते हैं कि 'यहाँ अनुलोम उपमा लगानेसे पूर्णकाम प्रभुओंमें न्यूनता पायी जाती है; अतः उपमाकी विलोम घटनासे यह अर्थ होता है कि जहाँ जनवासेमें दशरथ थे, वहाँ मानो प्यासोंको तककर सरोवर ही चल दिये। यहाँ सरोवररूप विश्वामित्र मुनिके सङ्ग राम-लक्ष्मणजी हैं। यह अभूतोपमा है।' प्रज्ञानानन्द स्वामीजीका मत है कि 'विश्वामित्रजी सरोवर हैं, श्रीराम-लक्ष्मणजी सुधा-मधुर जल हैं। अथवा श्रीरामजी सरोवर हैं, भक्तवत्सलता जल है।' *'कबहिं देखिबे'''* 'यह तो सभी बारातियोंकी लालसा थी और दशरथजीकी तो यह दशा थी कि *'जियै मीन बरु बारि बिहीना। मनि बिनु फनिक जियै दुख दीना॥ जीवन मोर राम बिनु नाहीं।'* इसीसे इनके लिये *'मृतक सरीर प्रान जनु भेंटे'* आगे कहा है और बारातियोंके सम्बन्धमें *'रामहिं देखि बरात जुड़ानी'* मात्र कहा है।'

टिप्पणी—३ *'भूप बिलोके जबहि मुनि'''* इति। (क) महात्माओंको आगेसे जाकर लेना चाहिये, यथा—*'मुनि आगमन सुना जब राजा। मिलन गयउ लै बिप्र समाजा॥'* (२०५। १), *'चले मिलन मुनिनायकहि मुदित राउ येहि भाँति।'* (२१४); इसीसे राजा आगे चलकर मिले। (ख) पहले सरोवरका आगमन कहा—*'मनहु सरोवर तकेउ'''*, अब यहाँ प्यासेको सरोवरकी प्राप्ति कहते हैं—*'भूप बिलोके'''।'* जब दोनों भाइयोंको देखा तब सुखका समुद्र हो गया। [(ग)—*'उठे हरषि सुखसिंधु महुँ चले'''* इति। दोनों भाई सुखके सागर हैं, यथा—*'तदपि अधिक सुख सागर रामा।'* उनको देखकर राजाके हृदयमें सुखसमुद्र उमड़ा। अर्थात् प्रेम और आनन्दका सुख इतना बढ़ा कि चलनेकी शक्ति न रह गयी, शरीर शिथिल हो गया, चला न गया; छड़ीके सहारे धीरे-धीरे चलने लगे, मानो थाह लेते हुए चल रहे हैं, यथा—*'मोद प्रमोद बिबस सब माता। चलहिं न चरन सिथिल भये गाता॥'* (३४६। १) [अथवा प्रज्ञानानन्द स्वामीजीके मतानुसार ऐसी दशामें छड़ीके सहारे भी चलना असम्भव है, किसी पुरुषके सहारे जाना सुलभ होता है। उसका हाथ पकड़कर या कंधेपर हाथ रखकर चले होंगे। यथा—*'चले सखा कर सों कर जोरे। सिथिल सरीर सनेह न थोरे॥'* (२। १९८)] थाह लेना यों होता है कि थोड़ा चले, फिर ठहर गये, फिर पैर सँभालकर बढ़ाया, फिर रुके। राजाकी यह दशा मारे आनन्दके हो रही थी, वे बेसुध हो जाते थे। *'पैरत थके थाह जनु पाई'* से मिलान करो। *'सुतन्ह समेत'* से जनाया कि मुनि आगे हैं दोनों भाई पीछे हैं।]

मुनिहि दंडवत कीन्ह महीसा। बार बार पद रज धरि सीसा॥ १॥
कौसिक राउ लिये उर लाई। कहि असीस पूछी कुसलाई॥ २॥
पुनि दंडवत करत दोउ भाई। देखि नृपति उर सुखु न समाई॥ ३॥
सुत हिय लाइ दुसह दुख मेटे। मृतक सरीर प्रान जनु भेटे॥ ४॥

अर्थ—राजाने मुनिको दण्डवत् प्रणाम किया और बारंबार उनके चरणोंकी रज सिरपर धारण की॥ १॥ कौशिक मुनिने राजाको (उठाकर) हृदयसे लगा लिया और आशीर्वाद देकर कुशल-समाचार पूछा॥ २॥ फिर दोनों भाइयोंको दण्डवत् प्रणाम करते देख राजाके हृदयमें सुख नहीं समाता॥ ३॥ पुत्रोंको हृदयसे लगाकर उन्होंने अपने दुःसह (जो सहा नहीं जाता था) दुःखको मिटाया। (ऐसा जान पड़ता था) मानो मरे हुए शरीरको प्राणोंसे भेंट हुई॥ ४॥

टिप्पणी—१ (क) *'बार बार पदरज धरि सीसा'* इति। *'बार बार'* रजको शिरोधार्य करना कृतज्ञता जनाता है, राजा उपकार मानकर ऐसा करते हैं। पुनः भाव कि राजा पदरजका प्रभाव जानते हैं कि इसे शिरोधार्य करनेसे समस्त विभव वशमें हो जाता है, यथा—*'जे गुरचरन रेनु सिर धरहीं। ते जनु सकल बिभव बस करहीं॥ मोहि सम यहु अनुभयउ न दूजें। सब पायउँ रज पावनि पूजें॥'* (२। ३) [*जे गुर चरन रेनु सिर धरहीं। ते जनु सकल बिभव बस करहीं॥* ....*'सब पायउँ रज पावनि पूजें'* मानो ऐसा कहते हुए अपनी कृतज्ञता जनाते हुए बारंबार पदरजको मस्तकपर लगाते हैं। (ख) *'कौसिक राउ लिये उर लाई'* यहाँ राजासे मिलनेमें विश्वामित्रजीको राजपुत्र कहा, कौशिक नाम दिया (अर्थात् राजा कुशिकके पुत्र) क्योंकि राजा मुनिको अपना पितृत्व सौंप चुके थे, यथा—*'मेरे प्रान नाथ सुत दोऊ। तुम्ह मुनि पिता आन नहिं कोऊ।'* (२०८। १०) इस समयतक मुनि राजाके बदले पिता थे, अतः वे मानो राजा ही हैं। *'लिये उर लाई'* कहकर जनाया कि वह पितृभाव इस बहाने अब मुनि राजाको लौटा रहे हैं। स्मरण रहे कि पूर्व जब मुनि श्रीराम-लक्ष्मणजीको माँगने आये थे, तब मुनिने राजाको हृदयमें नहीं लगाया था, क्योंकि उस समय मुनिभाव था।—(प्र० सं०)] (ग)—राजाने बड़े प्रेमसे बारंबार चरणरजको शिरोधार्य किया, अतः *'पद रज धरि सीसा'* के बदलेमें विश्वामित्रजीने *'राउ लिये उर लाई'* राजाको हृदयसे लगा लिया। राजाने 'दण्डवत्' की, उसके बदलेमें मुनिने आशीर्वाद दिया—*'कहि असीस'*। और *'पूछी कुसलाई'* कुशल-प्रश्न जो किया वह अपनी ओरसे। [कुशल-प्रश्नका उत्तर यहाँ नहीं है, क्योंकि राजाका शरीर शिथिल है, कण्ठ गद्गद है।]

प० प० प्र०—*'जन मन मंजु मुकुर मल हरनी', 'किए तिलक गुनगन बस करनी', 'समन सकल भव रुज परिवारू' 'मंजुल मंगल मोद प्रसूती'* इत्यादि गुण गुरुपदरजके जो कहे गये हैं, वे सब यहाँ चरितार्थ हुए। राजाके हृदयमें श्रीराम-लक्ष्मणके विषयमें चिन्तारूपी मल था वह दूर हुआ। *'गुनसागर नागर बर बीरा'* दोनों पुत्र अपने पास आ गये। वियोगरूपी रोग मिटा। विवाहरूपी मंगल-कार्यसे मंगल मोद प्राप्त होगा ही। इत्यादि।

टिप्पणी—२ *'पुनि दंडवत करत दोउ भाई। देखि'''* इति। (क) *'पुनि'* अर्थात् जब राजा और मुनिकी भेंट-मिलाप हो चुकी, तब राजाने मुनिको दण्डवत् की, इसीसे श्रीरामजीने राजाको दण्डवत् की। श्रीरामजीने विचार किया कि राजाने मुनिको साष्टाङ्ग दण्डवत् की, यदि हम राजाको दण्डवत् नहीं करते तो 'अभाव' होता है, इसीसे दण्डवत् की। (नहीं तो अन्यत्र) सर्वत्र चरणमें माथा नवाना ही पाया जाता है, यथा—*'प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा॥'* (१। २०५। ७) *'सचिव सँभारि राउ बैठारे। चरन परत नृप रामु निहारे॥'* (२। ४४), *'नाइ सीसु पद अति अनुरागा। उठि रघुबीर बिदा तब माँगा॥'* (२। ७७) *'राम तुरत मुनि बेषु बनाई। चले जनक जननिहि सिरु नाई॥'* (२। ७९) [यहाँ साष्टाङ्ग दण्डवत् करके अधिक प्रेमकी सूचना दे रहे हैं। श्रीरामजी प्रेमभावमें भक्तोंको अपनेसे बढ़ने नहीं देते, उनसे बढ़े-चढ़े